हि. ५६८

रांगेय राघव

साहित्य

घरौंदा

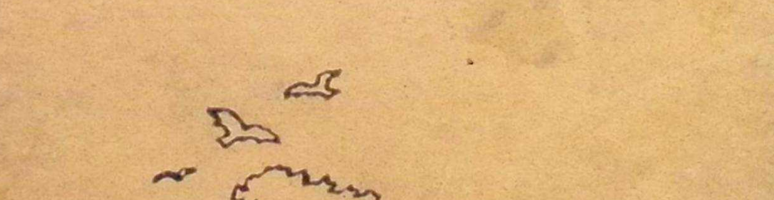

हि. ५६८

[illegible]

घरौंदा

29428

मूल्य : चालीस रुपए (40·00)

संस्करण 1987 © डॉ० सुलोचना रांगेय राघव

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006 द्वारा प्रकाशित
GHARONDA (Novel), by Dr. Rangey Raghav

घरौंदा

रांगेय राघव

काठमाण्डू स्थित भारतीय राजदूतावास
को सौजन्य द्वारा सप्रेम भेंट
(नेपाल)
With the Compliments of the
Embassy of India in Nepal
Kathmandu

राजपाल एण्ड सन्ज़

डा० रांगेय राघव

17 जनवरी, 1923 को जन्म आगरा में। मूल नाम टी० एन० वी० आचार्य (तिरूमम्लै नम्बाकम् वीर राघव आचार्य)। कुल से दाक्षिणातत्य लेकिन ढाई शतक से पूर्वज वैर (भरतपुर) के निवासी और वैर, बारोनी गांवों के जागीरदार। घर की बोली बृज, तमिल।

शिक्षा आगरा में। सेंट जॉन्स कालेज से 1944 में स्नातकोत्तर और 1948 में आगरा विश्वविद्यालय से गुरू गोरखनाथ पर पी-एच० डी०। हिंदी, अंग्रेजी, बृज और संस्कृत पर असाधारण अधिकार।

13 वर्ष की आयु में लेखनारंभ। 23-24 वर्ष की आयु में ही अभूतपूर्व चर्चा के विषय। 1942 में अकालग्रस्त बंगाल की यात्रा के बाद लिखे रिपोर्ताज 'तूफानों के बीच' लिखकर हिंदी में रिपोर्ताज विधा को जन्म देने वालों में अग्रणी।

साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला, संगीत और पुरातत्व में विशेष रुचि। साहित्य की प्राय: सभी विधाओं में सिद्धहस्त। मात्र 39 वर्ष की आयु में साहित्य को कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, रिपोर्ताज के अतिरिक्त आलोचना, सभ्यता और संस्कृति पर शोध व व्याख्या के क्षेत्रों को 150 से भी अधिक पुस्तकों से समृद्ध किया। अपनी अद्‌भुत प्रतिभा, असाधारण ज्ञान और लेखन क्षमता के लिए सर्वमान्य अद्वितीय लेखक।

संस्कृत रचनाओं का हिंदी, अंग्रेजी में अनुवाद। विदेशी साहित्य का हिंदी में अनुवाद। देशी-विदेशी साहित्य का पुनर्लेखन।

7 मई, 1956 को सुलोचना जी से विवाह। 8 फरवरी, 1960 को पुत्री-सीमन्तिनी का जन्म। अधिकांश जीवन आगरा, वैर और जयपुर में व्यतीत। आजीवन स्वतंत्र लेखन।

हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार (1951), डालमिया पुरस्कार (1954), उत्तरप्रदेश सरकार पुरस्कार (1957 व 1959), राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार (1961) तथा मरणोपरान्त (1966) महात्मा गांधी पुरस्कार से सम्मानित।

अनेकों कृतियां अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित और प्रशंसित।

लम्बी बीमारी के बाद 12 सितम्बर, 1962 को बम्बई में देहान्त।

घरौंदा

घरौंदा

गर्मी की धूल-भरी सांझ, जिसमें थमी लू की भभक पसीने का खुमार झलका रही है, एक वहुत हल्की लाली में झपका खाने लगी है। सड़क। चौराहा पास है, जिसपर लाल पगड़ीवाला कोई अफसर अपने जीवन की थकान को जेठ के तड़पते अजगर-सा फुंकार और अकुलाहट-भरा पाकर भी अपने काम से कम तनख्वाह की तबाही-भरी तसल्ली और सन्तोष में गाड़ी—प्रगति—और चल संसार को हाथ दिखा रहा है, आदमियों को ठीक राह पर चला रहा है। उसके सिर पर दिन में ही बिजली का लट्टू जल रहा है, क्योंकि शहर की चुंगी की शाम आजकल भी छः ही बजे हो जाती है, जैसी कि शिमले में अक्सर होती होगी। लट्टू में न चमक है न रोशनी, मगर वह जल रहा है, क्योंकि वह सफेद की जगह पीला नज़र आ रहा है। धूल का अकस्मात् उठता गुबार, सुदूर पश्चिम के वाहन—जो पूंजीवाद की उपज होकर उसे मदद दे रहे हैं— उन्हें सलामी बजा देता है। मक्खियां धीरे-धीरे कम होने लगी हैं। कुछ गरीबी के कलेवे, बहुत-से अमीरी के तरसते पुतले और बीच के रुपये के लालची। यह सड़क है, हर जमाने में नई तरह से बनाई गई और हर नये ज़माने ने उसे कच्चा करार दिया।

यूनिवर्सिटी का एक हिस्सा। कालेज अपने सिर पर सूली लिए खड़ा है। इधर-उधर बहुत-सी चीज़ें हैं। और यह रेखा है, जिसे सिर्फ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे रेस्टोरेंट, अधकचरे रेस्टूरां और बेपढ़े-लिखे यानी हिन्दुस्तानी होटल कह अपना नाम देकर पुकारने की तृष्णा दिखाते हैं। एक बुरे दांतोंवाला बनिया—टुटपुंजिया—एक किनारे एक रंग उड़ी कुर्सी पर बैठकर सामने मेज पर अपनी छोटी पूंजी को बढ़ाने की कोशिश कर रहा है। उसका लड़का अपने से कम इज़्ज़त पानेवाली बहिन से खेल रहा है, मचल रहा है, और बनिया जो मास्टर कहलाता है, कभी उसे प्यार से देखता है और कभी अपने नौकर पर शुबहे-भरी नज़र डालकर अपनी लम्बी कलम को छोटी दवात में तिरछा गिराकर निब में स्याही भरने की कोशिश करने लगता है।

यहां चहल-पहल है। दिन में सूरज की रोशनी, रात में बिजली की। लड़के, गुज़रती लड़कियां। शोरगुल। गधे, गाय, भैंस, कभी-कदाच ऊंट भी, लॉरी, तांगे, इक्के, मोटर, साइकिल और गुलाम आदमियों की आज़ादी की अजीब लगनेवाली मुर्दादिल आरामपसन्द शोखी!

सिगरेट का पैकेट, बीड़ी के बंडल से सटा पड़ा है। सिगरेट को पैसे का नाज है,

बीड़ी को अपने पीनेवाले की मेहनत का।

सिगरेट कहती है—मैं कितनी गोरी हूं, सुन्दर ! सुन्दर !

बीड़ी कहती है—मैं आती आंधी के रंग की हूं, मैं फौजों की वर्दी हूं ! और तू ?

सिगरेट बड़बड़ाती है—अरी मेरा रंग रुपये का-सा है, तेरा ?

बीड़ी भुनभुनाती है—सिगरेट चांदी की पन्नी से उझककर देखती है।

'अरे,' कोई कहता है—'दो डबल का बीड़ी का बंडल तो देना।'

तभी कोई हल्के से मगर घमण्ड से कहता है—'प्लेयर्स नेवीकट एक पैकेट ! और एक चवन्नी की हल्की खन्न की आवाज़।

पहले सिगरेट; फिर बीड़ी, और जैसे दो पैसे का बण्डल एक अहसान-सा हुआ है।

मास्टर सिर उठाकर देखता है। लड़का इस वक्त या तो बर्फ कूट रहा है या किसी के लिए पान लगा रहा है।

काम का वक्त है, फुर्सत का नहीं। दुनिया इतनी आसान नहीं जितनी समझी जाती है। अपना-अपना रहना, कमाना, खाना, पीना, चैन की तरफ बढ़ाते हैं और ऊपर ईश्वर है, सो तो है ही, उसे कौन मना कर रहा है।

अब कुछ दिन बाद फिर लड़कों की भीड़-भब्भड़ होगी और कुछ दिन उस शोर-गुल की ताज़गी में पूर्व और पश्चिम मिलकर नये उत्साह से मध्यमवर्ग की कसौटी पर जमने की ज़्यादा से ज़्यादा कोशिश करेंगे। कोई सूट में होगा और कोई निकर और खुले कॉलर की कमीज़ पहनकर सूटवालों का मज़ाक उड़ाएगा कि कमबख्त अंग्रेजों की नकल कर अपने को ख्वाहमख्वाह तंग करते हैं। कभी अंग्रेज़ भी गर्मी में टाई बांधते हैं और अपनी पूर्वी चाल पर उसे गर्व से मुस्कराना भी पड़ेगा।—तब साइकिलवाला बगल की दुकान से बिल लाएगा—नाम अंग्रेज़ी में लिखा, जिसमें दो हिज्जे की गलतियां होंगी, बीच में हिन्दी, जो किसी मिडिल पास की लिखावट की पसलियों पर चोट करती-सी होगी, और नीचे बहुत बार लिख-लिखकर आदी हो गए हाथ के दस्तखत।

'कहो भाई मनोहर, अच्छे तो हो ?' लड़का कहने लगा।

'क्यों नहीं बाबू जी, आपकी दुआ है। अब तो आप जल्दी से पास-आस करके कलट्टर बन जाइए, तो मैं आप ही के साथ चलूंगा।'

'जमाना तंग है,' कोई बुड्ढा कहेगा जो बुढ़ापे की बनिस्बत अपनी जवानी के दिनों की यादगारों में बहुत मशगूल होगा। ज़माना हमेशा से तंग है, मगर उनकी नज़र में नई पीढ़ी हमेशा बदकिस्मत और नया ज़माना हमेशा बद से बदतर होता जा रहा है। वे सोलह वर्ष की उम्र तक हां और ना का फर्क नहीं जानते थे, सो आजकल के लड़के अपने हाथों ही अपनी ज़िन्दगी बरबाद करने लगते हैं।

'नौकरी तो आपको मिल के रहेगी,' पास का दर्ज़ी, जो फुर्सत में खड़ा है, कहता है।

'अजी बस मैं तो चला,' कहता है रशीद कि, चलनेवालों का अपने साथ—इस गरीब विद्यार्थी के साथ एक झुंड बन जाता है—वे लोग जिनकी बातें ज़रूर चलती हैं,

मगर पेट भूखा रहकर भी पैर कभी चलने की तकलीफ नहीं करते। उनकी बेकारी पर विद्यार्थी की नौकरी है, जो कहलाती है अफसरी ! ठीक है, जब तक कालेज में हैं, तब तक तो ऐश है ही। आगे जिसने पैदा किया है वह खाने को देगा।

फिर एकाध बात, मगर बिल चुकाने का कहीं नाम नहीं आता, और न साइकिल-वाले को फिक्र है; क्योंकि तीन रुपये के हिसाब से एक रुपया और साढ़े तीन आने के सिवाय बाकी सब एकतरफा ब्याज है।

हर शुरू का एक आखीर होता है, आज़ाद और चेतन इस आखीर को आदि ही मानते हैं। मगर गुलाम दिमाग और गुलाम सूरत को इन बातों से कोई मतलब नहीं। यह कालेज है, कालेज, कालेज। लड़के, लड़कियां, प्रोफेसर, अक्लमन्दी, बेवकूफी और मुहब्बत के अपनेपन में नफरत का आलम सब पर छाया हुआ। मास्टर के पास वक्त नहीं है। कभी फुर्सत में वह दांतों को हंसी में भद्दी तरह से मढ़कर कहता है—जी हुकुम, मिज़ाज तो अच्छे हैं, और अचानक ही उसकी आंखें अपनी हिसाब की कापी में से कुछ खोजने लगती हैं। उसकी तकदीर है कि ज़िन्दगी में वह अपने को अभागा समझे और साथ ही जैसा कि आदमी को 'अक्सर देखा गया है,' ज़मीन पर खड़े मकान की तरह होना चाहिए, वैसे वह है, यानी कि उसे अपने से काम और अपना घर पालने से—और जो लड़के उसके यहां आते हैं, और ज़रूरत से ज़्यादा रुपये दे जाते हैं वे आवारा हैं, फिज़ूलखर्च हैं, और उनके लिए मास्टर की एक उदास हंसी काफी है···

कुछ ही लड़के आजकल भटक पड़ते हैं। उनके पास एक यादों की दुनिया है, वह खुशनुमा दिन, जब वे ऊनी कपड़े पहन सकते थे, जब लड़कियां फर के हल्के कोट कन्धों पर टांग सकती थीं, तब जाड़े थे, कालेज की मौजें थीं, मज़ाकों की तड़प थी और तभी अचानक इम्तहान ने आकर उनके सपनों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। साल-भर के चुनाव, खेल-कूद, प्यार-मुहब्बत और भूलें सब पर इम्तहान उंगली रख-रखकर उनके दिमाग में उनके नम्बर काटने लगा। अब महसूस हुआ कि जो कुछ है वह लियाकत के लिए नहीं, इसी दिन के लिए है। सारी ज़िन्दगी कयामत के लिए है और जैसे खुदा की याद और हूरों की रहमत कयामत से बचाने को है, वैसे ही 'प्रोस्पेक्ट्स' और इम्तहान के हल किए छपे जवाब इस अंधेरे में रोशनी दिखाने को हैं। एक नफरत-सी भर रही है। वे अलग-अलग होने लगे। आदाबे अर्ज़ ! आदाबे अर्ज़ ! ! कहिए मिज़ाज तो अच्छे हैं। दुआ है आपकी, वरना खाकसार किस काबिल है और मिल्टन की 'पैरेडाइज़ लॉस्ट' में जितनी ताकत है, उतनी उसकी रीजेण्ट में नहीं। ट्रिगनोमेट्री भी क्या बला है ? वायलेट रेज में अगर एक स्पर्म और एक ओवम छोड़ दिया जाए, भाई वैल्स ने बड़ी मदद दी। जी नहीं वन शिलिंग फोर पेंस पर सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास की पूरी स्पीच पढ़िए, आप अब स्कूल में नहीं हैं। बेकन, मिल, लाक, स्मिथ, शोपेनहार, कांट, ऐरिस्टोटल, राधाकृष्णन्, सर बोस और ऐसे ही किताबी लोगों ने मुंहज़बानी राजनीति और बेकार की बातों की जगह ले ली है। गैलीलियो को कभी कहीं सुख है।

मगर मास्टर को तो कोई इम्तहान नहीं देना था, तब भी और कुछ लड़के तब उसकी अच्छी बेइम्तहानी तकदीर पर हसद करते थे; 'हां !' मास्टर कहता था—'अरे सांवल'—जो उसका नौकर था—'चाय के लिए केटली चढ़ाए ही रख। सर्दार

होस्टल से बाबू नम्बर 13, 14, 22 इसी वक्त आते हैं न ! आते ही होंगे । फिर आध घंटे बाद कपूर होस्टेल से नम्बर 17, 23, 29 और मुस्लिम होस्टल से···भाई, यही कुछ आखिरी दिन हैं, फिर तो बाज़ार मंदा ही है, समझे ! 'सो जा बेटा, सो जा' कहके वह पलंग पर पड़े बच्चे को थपथपा जाता है, 'सांवल, देख पान तैयार रहें और मुझे तो कल से ज़बर्दस्त वसूली करनी है, कितने ही तो भागने की फिक्र में होंगे···'

मास्टर के एक बीवी होगी, जिसका नशा भी ज़रूर ढल गया होगा, क्योंकि वह जवान है और उसके अभी से दो बच्चे हैं, मगर कायदे से तो एक बच्चा है—वही लड़का, और होने को तो सभी हैं—वह भी परमात्मा की ही देन है···

2

जुलाई का महीना डग भरकर आ गया । होस्टलों में लड़के-लड़कियां ऐसे आ टिके जैसे सुबह की भटकी चिड़ियां शाम को घर की याद करके लौटती हैं, मगर रात में ही शिकारी के जाल में फंस जाती हैं । चिड़ियों को लासे का जो शौक होता है । ज़िन्दगी कितनी व्याकुल और चंचल है । नगरी में हलचल-सी भर उठी है । यह एक नया मुसाफिर है, जिसे जीने के बाद मरना है, जिसके अरमानों की थाती को जुटकर भी लुट जाना है ।

कालेज के दफ्तर के बाहर-भीतर भीड़ इकट्ठी थी । वह क्लर्क जो दफ्तरी से बढ़कर कुछ नहीं, काम की ज़िम्मेदारी से सेक्रेटरी की इज़्ज़त पा रहा है । पितृपक्ष में कौआ भी श्राद्ध के लिए ज़रूरी हो जाता है ।

'आपने फाइल नम्बर 41 देखी, मिस्टर शुक्ला ?'

'जी हां ।'

फिर दोनों काम करने लगे । भीड़ की उत्सुक आंखें ।

'देखिए,' सेक्रेटरी कहता है, 'इस काउंटर का मतलब है कि इसके उधर ही आप लोग ठहरें ।'

'अभी स्कूल से नये ही आए हैं ।'

फिर पुरानों की हंसी । मगर लड़कों को कोई बेइज़्ज़ती चुभ नहीं रही है । मकतब और पाठशाला से ही जिनके कान खिंचने शुरू हुए हैं, वे अब बड़े होकर काज़ी बन ज़रूर गए हैं दुम छोड़कर, मगर पहले तो गधे ही थे । और कहते हैं, मतलब गधे को बाप बनवाता है । यह आपस का समझौता है ।

एक मिनट को सेफ खुलता है । दस, बीस, तीस,···अस्सी···सौ, रखिए शुक्ला जी सेफ में ! इधर नौकर को दम मारने की फुर्सत नहीं है । अभी वह सेक्रेटरी के लिए घर पर सब्ज़ी खरीदकर रख आया और फिर पिन लेने डेढ़ मील बाज़ार भागा और अभी साढ़े आठ ही बजे हैं ।

'आपको कालिज मुबारक हो,' एक सेक्रेटरी की दो सौ रुपये की घमण्डी आत्मा

बोलती है, 'अब आप साहब के पास ऊपर ले जाइए, फार्म 'डी' पर दस्तखत करा लीजिए, हां, फीस लीजिए शुक्ला बाबू !'

'जी लाइए जल्दी बाबू सा'ब।'

काउंटर पैन पर रुपये खन-खन बज उठते हैं। बाहर की भीड़ में यह कोई नहीं सुनता। फिर फोन की घण्टी···ट्रि···ट्रि···

'हलो ! कहिए ! मैं हूं सेक्रेटरी मिशन कालेज। हां प्रिंसिपल साहब हैं। अच्छा-अच्छा। ओह ! कौन, कैप्टेन राय बोल रहे हैं ! मैं अभी सब फार्म तैयार करा देता हूं। आपकी कौन लड़की ? मिस लीला ! वेल ! वेल ! ! आप मोटर में जल्दी तशरीफ लाइए। बड़ी तकलीफ की आपने···ह ह ह थैंक्स···ह ह ह···

और तो सब आराम कर रहे हैं। तकलीफ सिर्फ कैप्टेन राय ने की है, सिर्फ उन्होंने ही।

'आप लोग ज़रा आफिस से बाहर तशरीफ ले जाइए। थैंक्स !'

सबसे पीछे का लड़का सबसे पहले निकल आया फिर धीरे-धीरे सब निकल चले और आखीर में कोई रेज़गारी गिनता भी निकल आया।

सेक्रेटरी कहने लगे—'मिस्टर शुक्ला, बड़ी परेशानी है। देखिए न, आखिरी वक्त पर इत्तला दी है, कैप्टेन राय ने। अब बतलाइए क्या करें ?

असिस्टेंट शुक्ला ऐसे नज़र उठाकर देखने लगा कि क्या करें ! हमारे-तुम्हारे किए क्या होगा ? हमारे सत्तर, और तुम्हारे दो सौ से एक कैप्टेन ने साढ़े सात सौ बहुत ज्यादा होते हैं। मगर वह कुछ बोला नहीं। सेक्रेटरी पसीना पोंछने लगा। बोला—'इस साल पौने तीन सौ लड़कों की टक्कर में एक सौ बीस लड़कियां ! बहुत हो गया साहब ! पारसाल सिर्फ अठहत्तर थीं, उससे पहले सत्तावन।'

जैसे जब से लड़कियां आने लगीं तब से इनकी ज़बान पर एक-एक घाव होता गया और आज एक सौ बीस घाव पूरे हो गए। घण्टी बजती है। नौकर घुसता है।

'लड़कों को बुलाओ,' सुनकर वह बाहर आकर कहता है—'आइएगा बाबू लोग।' और लड़के जो दुम दबाकर कुत्तों की तरह बाहर निकल आए थे और बाहर जाकर जिनकी दुम खड़ी हो गई थीं, अब फिर दुम दबाकर आफिस में घुसने लगे।

उसी वक्त एक लड़का—बाईस-तेईस वर्ष का—एक खम्भे के पीछे से निकलकर डोम के नीचे खड़े होकर इधर-उधर झांकने लगा। वह एक पजामा पहने था और एक सादी कमीज़। जेब में बारह आने का जापानी फाउण्टेनपेन है और एक ट्वील का अधमैला रूमाल। सिर के बाल धूल-भरे, मगर कढ़े हुए और पैरों में सस्ती चप्पल। माथे पर पसीने की बूंदें छा रही हैं और कांखों में लाल-लाल-सा पसीना बह रहा है। उसके हाथ में एक फार्म है और वह इधर-उधर झांक रहा है। एक लड़का, जिसको आफिस में भी घुसने का अभी मौका नहीं मिला है, उससे पूछने लगा—'आपका एडमीशन हो गया ?'

लड़का कहने लगा—'अभी तो नहीं, आपको मालूम है, वाइस प्रिंसिपल का आफिस कहां है ?'

'मुझे नहीं मालूम,' सच्चा जवाब है, क्योंकि वह खुद नहीं जानता। 'आपका

फार्म देखूं ?' लेकर पढ़ने लगता है—'भगवतीप्रसाद, इण्टरमीजियेट, फर्स्ट क्लास, डिस्टिंक्शन—इंगलिश, कैमिस्ट्री, मैथमेटिक्स। ओह ! गुड ! आपको तो चाहे जहां ले लिया जाएगा। क्यों, वाइस प्रिंसिपल को क्या करिएगा ? इण्टर आपने कहां से किया ?'

'चंदौसी से। काम है ज़रा।' और वह हटकर दफ्तर के एक नौकर से पूछने लगा। उत्तर मिला—'गैलरी के दाईं तरफ।'

मगर यह गैलरी क्या है ? कहां है ? वह सोच ही रहा था कि किसी पुराने घोड़े ने हिनहिनाकर उसके कंधे पर हाथ रखकर पूछा—'कहो बरखुर्दार ! काहे में भर्ती होने आए हो ? तुम्हें तो तुम्हारी हुलिया देखकर ले लिया जाएगा। प्रिंसिपल, प्रोफेसर और तो क्या नौकर तक सब शौकीन हैं'—और वह ठठाकर हंस पड़ा। भगवती-प्रसाद की हुलिया की तारीफ ! वह सिर्फ गरीब है।

'बिचकते हो यार ! फार्म तो दो।' और पढ़कर कहता है, 'नाम करोगे उस्ताद ! बलिया भी गए हो कभी ? तब लो हाथ मिलाओ। भूलोगे तो नहीं, वरना हम रो देंगे।'

'वाइस प्रिंसिपल का कमरा कहां है, बता दीजिए।'

'अच्छा साहब, यहां से इस सीढ़ी पर चढ़िए, फिर दायें मुड़िए, फिर बायें, फिर उत्तर, फिर दक्खिन···'

मगर कहनेवाले का ध्यान बंट गया; लड़कियां नई और पुरानी आ रही थीं, वह देखने लगा। जब वे चली गईं तो मुड़कर कहने लगा—'ज़मींदार हो कि लम्बर-दार ? अरे यार, ठहरे कहां हो ?'

तब भगवती कह उठा, 'यहीं एक जगह है।'

'कोई खतरनाक है !'

'नहीं जी, एक धरमशाला है, और यह स्वर वास्तव में ऐसा बजना चाहिए था जैसे कि महल पर से शहज़ादी के पान की पीक थूकते समय किसी नीचे चलते राहगीर पर गिर पड़ी हो और वह चीख रहा हो, 'मैं गरीब हूं। अब कपड़े बदलने को भी तो नहीं हैं।'

'और मिलना किसलिए है ?'

'प्रिंसिपल साहब ने कहा है कि वाइस प्रिंसिपल बर्सर हैं, वही सब कुछ करते हैं, तुम फीस माफ करवाने उन्हीं के पास जाओ। मैं ईसाई नहीं हूं, वरना एक थर्ड क्लास की पूरी फीस माफ है, क्योंकि वह ईसाई है।' लड़के के स्वर में एक व्यथा झलक उठी, जैसे ईसा मसीह की किसी ने गर्दन उमेठ दी हो।

'अच्छा तो दोस्त, जाओ, मिल आओ। आओ तुम्हें पहुंचा दूं।'

इतने में कैप्टेन राय अपनी नई मर्सीडीज़ गाड़ी में आ पहुंचे और संग में उतरी उनकी लड़की—लीला राय।

'ठहरो दोस्त' कहकर लड़का भगवती से अलग हो गया। वह एक सुन्दर, स्वस्थ युवक था। रेशमी कमीज़ और गहरा खाकी सूट, काला जूता पहने था। सर के बाल कढ़े हुए। अचानक उसके हाथ में जेब से सिगरेट केस निकल आया। अपने-आप सिगरेट मुंह से लगी और धुआं गुबार बनकर, एक चक्कर, दो चक्कर, तीसरा आधा उठा, और

एक धुंधली रेखा बादलों की तरह सरक उठी। उसकी आंखों में एक नज़र थी, बड़ी तड़पीली। उसने देखा—मिस लीला राय! एक पतली-दुबली मगर मांसल लड़की, सफेद साड़ी पहने और पल्ला ऐसे ओढ़े कि उसकी डेढ़ छाती के गोल नज़र आ रहे थे; चाइनीज डिज़ाइन की चप्पल और भकभका रंग और सिर के कंधों तक कटे बालों के बीच में से उसका तोते का-सा मुंह। बड़ी सुन्दर थी। उसने देखा, कैप्टेन राय जो अपनी वर्दी में उससे बातें कर रहे थे। उसने देखा, मर्सीडीज़ बेन्सका स्टीयरिंग व्हील और उसकी निकोटीन से पीली पड़ी उंगलियां अपने-आप उसके होंठों पर पहुंच गईं और होंठों में तड़पकर ऐसे धुआं छोड़ा, जैसे जंकशन पर आकर रेल आराम की सांस छोड़ रही हो।

मगर भगवती को कोई मतलब नहीं, उसने लीला को देखा, ऊपर का भगवती अपनी दरिद्रता से सिकुड़ गया, मगर अन्दर का भगवती एक टीस से भर उठा। एक लौ-सी झल्ल बनकर उठी, उमड़ी, मगर किसी ने मरोड़कर उसे उसके कपड़ों-सा बना दिया।

बाहर धूप थी। डोम के नीचे बाहर की बनिस्बत बहुत अच्छी ठण्डी हवा चल रही थी।

लड़का धीरे-धीरे लौट आया, जैसे जंग हार गया था, मगर उसने मुड़कर देखा कि लीला सबको देख रही थी और सबमें एक वह भी था। हार-जीत नहीं, अब एक भावना की एकपक्षीय सुलह हो गयी थी। उसने भगवती के कंधे पर हाथ रखकर बहुत पुराने दोस्त की तरह कहा—'क्या फिदा हो गए, उस्ताद!"

भगवती चौंक उठा। वह झेंप गया। शराफत के पैर टटोलते हुए कहा—'जी नहीं, मैं तो…'

लड़का बोला—'अमां! बनते क्यों हो? आओ, वाइस प्रिंसिपल के पास हो आएं, नये आए हो न, तभी एकदम चकाचौंध-सी लगती है। जानते हो, ये कौन हैं? ये हैं लीला राय। इनकी बड़ी शोहरत थी कि कालेज में आनेवाली हैं। गज़ब का गाती हैं रेडियो पर। कैप्टेन की लड़की है। ऊंची चीज़ है। है न पटाखा!'

भगवती कुछ भी जवाब नहीं दे सका। संकोच ने उसका गला अवरुद्ध कर दिया। वर्सर का दफ़्तर आया।

लड़के ने कहा—'घुस जाओ सीधे। ताका-झांकी मत करो। मैं जा रहा हूं।'

सहसा भगवती ने पूछा—'आपका शुभ नाम?'

'शुभ ही तो नहीं है कमबख्त, वरना क्या हम इतने साल बाद भी यहीं होते! वैसे कहने को सब कामेश्वर कहते हैं।'

भगवती मुस्करा दिया। दोनों ने एक-दूसरे की ओर हंसती हुई आंखों से देखा और हाथ मिलाये। कामेश्वर चला गया। भगवती ठिठककर उसे देखता रह गया।

3

भगवती ने कमरे में घुसकर देखा, हर चीज़ कीमती थी। फर्श पर बिछा कालीन, उस-पर सोफा सेट और बड़े-बडे शीशे के गोल गमले, जिनमें ताड़पत्रों का झुरमुट-सा अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता था।

कामेश्वर ने भगवती के कंधों पर हाथ रखकर उसे बिठाते हुए कहा—'क्यों, पसन्द नहीं आया ? क्या देख रहे हो ऐसे ?'

भगवती ने कुछ कहा नहीं। वह इस वैभव को देखकर मन ही मन सकपका गया था। उसकी भावना में एक बार यह बात भी उठी कि जो कुछ है अत्यन्त सुन्दर है, कहीं उसके छूने से कुछ खराब न हो जाए। उसे याद आया अपने गांव का घर। वह कच्चा है, ऊपर छान है, भीतर मां है। मां को सदा से ही उसने विधवा देखा है, जिसने प्रारम्भ में उसे चक्की पीस-पीसकर पाला है। उसके बाद वह ज़मींदार के यहां काम करने लगी, थोड़े दिन बाद उसे गांव की पाठशाला में दाखिल करवा दिया गया। भगवती की प्रतिभा देखकर पंडितजी बड़े प्रसन्न हुए। वह अपने पोपले मुंह से सर्वत्र उसकी प्रशंसा करने लगे। मिडिल में वह अव्वल आया। वज़ीफे से उसने हाई स्कूल पास किया और फिर फर्स्ट आया। ज़मींदार साहब ने तब उसे बीस रुपये महीना देकर चंदौसी भेज दिया। वज़ीफे की मदद भी मिली। इंटर भी पास किया। मां प्राय: अधेड़ हो चली थी, किन्तु उसका यौवन फिर भी सुगठित लगता था, जैसे अकाल वैधव्य के कारण जो सोता बहा नहीं, उसी संचय से वह झाइँ मारनेवाली घूंसे की चोट-सा यौवन अभी भी जाग रहा था। गांव में सब अजीब-अजीब बातें कहते। किन्तु ज़मींदार बड़े आदमी थे। सरकार ने उन्हें 'सर' की पदवी दी थी और विद्यानुरागियों को देखकर उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी। एकमात्र पुत्र को उन्होंने पढ़ने को विलायत तक भेज दिया था। आज तो भगवती को फिर बोर्ड का वज़ीफा जो मिल रहा था, वह कालेज से भी मिल गया। फिर कोई हाथ बढ़ाने का मौका नहीं आया। भगवती यह दुनिया और वह दुनिया मिलाने में ऐसा तल्लीन हो गया कि उसे क्षण-भर कुछ भी ध्यान नहीं रहा। सामने ही एक नृत्यावस्था में मग्न नारी की संगमर्मर की मूर्ति थी। उसकी ओर ऐसे निर्निमेष देखते हुए लक्षित कर कामेश्वर ने कहा—'क्यों, मालूम देता है, नृत्य में बहुत दिल-चस्पी लेते हो!' और एकाएक उठ खड़ा हुआ। उसने भगवती का हाथ पकड़ लिया और कहा—'चलो मेरे साथ। तुम्हें एक कलाकार से मिलाऊं।'

भगवती ने कहा—'कहां ?'

'चलो भी!'—कहकर वह उसे घसीटकर ले चला। भगवती उसके पीछे-पीछे चलने लगा। कामेश्वर रेशम की सुर्ख कमीज़ पहने था। लाल रेशम की झलमल से उसके गालों पर लाली झलक रही थी। उसके वह सूखे-से मुलायम बाल और गति में एक उन्माद, भगवती ने यह सब देखकर अपने-आपको कुछ हीन-सा अनुभव किया। वह एक साफ पूरी बांहों की कमीज़, एक साफ पजामा और चप्पल पहने था। उसके बाल रूखे थे, किन्तु फिर भी उसमें धीरता थी, जिससे कामेश्वर उसके प्रति सारे बंधन छोड़-कर अनुरक्त हो गया। कहां वह एम० ए० का विद्यार्थी, कहां यह थर्ड ईयर में! किन्तु

कामेश्वर चाहता था, वह इस लड़के की झिझक छुड़ा दे, उसे अपनों में मिला ले। उसके कमरे में जाकर एक ही दृष्टि में वह समझ गया था कि भगवती की आर्थिक दशा अच्छी नहीं।

कामेश्वर ने दो कमरे पार करके तीसरे एक छोटे-से कमरे में ले जाकर उसका हाथ छोड़ दिया और आवेश में बोल उठा—'इंदिरा! here you are, आज मैं एक नई चिड़िया लाया हूं।'

भगवती सहम गया। एक लड़की पलंग पर औंधी पड़ी कुछ पढ़ रही थी। अपने पांव उसने उठा लिए थे और झुला रही थी। वह गहरे हरे रंग की रेशमी साड़ी पहने थी और उसके पांवों का गोरा रंग चिलमिला रहा था। भगवती ने देखा, वे पांव वास्तव में मुलायम ही नहीं, बड़ी गठन भी थी उनकी। बालों की लटें मुख पर बल खा रही थीं। उसने अपना बच्चों का-सा मुंह उठाया और टेढ़ी नज़र से भगवती की ओर देखा। मुस्कराई और उठकर बैठ गई तथा हाथ जोड़े। भगवती से कहा, 'बैठिए।'

कामेश्वर ने उसे कुर्सी पर धक्का देते हुए कहा—'ये हैं भगवती! है न लड़कियों का-सा नाम! थर्ड ईयर में आए हैं। फर्स्ट क्लास। डिस्टिंक्शन इन इंगलिश, कैमिस्ट्री एण्ड मैथेमेटिक्स।'

लड़की ने एक बार गर्व से भगवती की ओर पानी-भरी झलमल आंखों से देखा, जैसे उससे मिलकर उसका आदर हुआ है। उसने स्नेह से ऐसे सिर हिलाया, जैसे धन्य हो।

'कैसे आ जाता है आप लोगों का फर्स्ट क्लास!' उसने अचरज से कहा—'हमें तो यह भी नहीं मालूम कि सेकण्ड क्लास कैसे आता है।' वह मुस्कराई और कामेश्वर की तरफ देखकर—'और भैया तो थर्ड क्लास के लिए भी वर्ज़िश करते हैं,' वह खिलखिलाकर हंस पड़ी। कामेश्वर ने दो कदम पीछे हटकर दोनों हाथ उठाते हुए कहा—'आत्मसमर्पण! आत्मसमर्पण!!'

'तो कितने दिन छिपा सकोगे? अब यह तुम्हारे मित्र हो गए हैं तो क्या इन्हें पता नहीं चलेगा?'

कामेश्वर ने कुर्सी खींचकर उसपर बैठते हुए कहा—'यह हमारे घर में सबके दोस्त हो सकते हैं। यह इनमें खास बात है। ममी तो वैसे भी पढ़ाई-लिखाई की सुनकर खुश हो जाएंगी। तुम्हारी ही बात थी। सो तुम्हारे लिए भी एक बात सूझ पड़ी है। भगवती को नृत्य का बहुत शौक है।'

इन्दिरा ने बात काटकर पूछा—'नाचते भी हैं?'

भगवती शर्मा गया। उसने कहा—'जी नहीं।' इन्दिरा अपनी शोखी पर अपने आप हंसी। उसकी सूरत कामेश्वर से बिल्कुल मिलती-जुलती थी। कोई भी कह सकता था कि वह उसकी सगी बहिन थी। किन्तु फिर भी उनमें एक विचित्र भेद था। कामेश्वर की सूरत पर पौरुष था, इन्दिरा की सूरत पर स्त्रीत्व और यह एक ऐसा छायाभेद था कि कभी-कभी उनकी सूरतें बिल्कुल अलग-अलग मालूम पड़ती थीं।

कामेश्वर ने फिर कहा—'नाचते हैं या नहीं, यह तो तुम परख लेना, लेकिन शौक इन्हें जरूर है।'

'क्यों ? तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?' इन्दिरा ने पूछा—'मुमकिन है, नृत्य पर किताबें पढ़ने-भर का शौक हो।'

भगवती की झिझक हट गई। उसने कहा—'जी नहीं, किताबें नहीं पढ़ता। कोई नाचे तो देखता हूं।'

इसी समय नौकर ने आकर कहा—'माताजी बुला रही हैं।'

कामेश्वर ने कहा—'अच्छा, जाओ इन्दिरा !'

नौकर ने हंसकर कहा—'फिर टाल दिया बाबूजी ? बीबीजी का नहीं, आपको बुलाया है, आपको।'

'अरे मुझे ?'—वह ऐसे उठा जैसे लाचार हो। इन्दिरा खिलखिलाकर हंसी। कामेश्वर ने कहा—'अच्छा देखो। इन्हें बिठाए रखना। जल्दी ही आता हूं।' और मुड़कर भगवती से कहा—'घबराना मत। अभी आता हूं। समझे ?'

वह चला गया। कमरे में इन्दिरा और भगवती रह गए। कुछ देर तक भगवती को ढूंढ़ने पर भी बातचीत का कोई सिलसिला नहीं मिला। इन्दिरा क्षण-भर उसकी ओर देखती रही। फिर बोली—'आपका पूरा नाम क्या है ?'

'भगवतीप्रसाद।' उसने संकोच से कहा।

इन्दिरा ने फिर कहा—'तो आपको नृत्य से दिलचस्पी कैसे हो गई ?'

'मुझे नहीं मालूम।'—भगवती ने अजीब उत्तर दिया।

'आपको नहीं मालूम ?'—वह हंसी—'कमाल करते हैं आप ! कल आप कहेंगे कि मैं अपना नाम भी नहीं जानता।'—भगवती मुस्कराया। इन्दिरा उसकी कुर्सी की ओर झुककर बोली—'आपने किस-किसका नृत्य देखा है ?'

भगवती फिर पशोपेश में पड़ गया। उसने आज तक किसी का भी नृत्य व्यक्तिगत रूप से नहीं देखा था। अधिकांश गांव में सामूहिक नृत्य देखे थे; काछियों के, धोबियों के, मैना और जाटों के। किन्तु यह वह कैसे कहता ! उसके मुंह से अपने-आप निकल गया—'देखा तो उदयशंकर तक का है, लेकिन शान्तिनिकेतन के सीखे हुए लोगों के नृत्य मुझे अधिक पसन्द हैं।'

'शान्तिनिकेतन !' इन्दिरा ने उत्साह से कहा—'तब तो आप बहुत जानते हैं। बताइए न, आपने देखा होगा।' वह उठी और उसने कमल की तरह उंगलियां खोलकर हाथ उठाकर कहा—'यह शान्तिनिकेतन की अपनी छाप है, ऐसी और कहां मिलेगी ? भारत में इस नृत्यकला के पुनर्जागरण में बहुत बड़ा हाथ उन्हीं का है। यह देखिए न···'

दायां पैर आगे रखकर जो उसने खड़े-खड़े अंगचालन किया, भगवती विभोर होकर देखता रह गया। वह दौड़कर गई। आलमारी खोलकर घुंघरू निकाले और बैठकर घुटनों तक साड़ी हटाकर पांव में बांध लिए। फिर भूमि पर से उठकर खड़ी हो गई और नृत्य करने लगी। भगवती देखता रहा। नाचते-नाचते वह थक गई और पलंग पर भरे-भरे श्वास लेती फिरकन में ही आ लेटी। उसका वक्षस्थल फूल रहा था, गिर रहा था। भगवती ने देखा, उसकी नशीली आंखें उसी के मुख पर केन्द्रित हो रही थीं। अधलेटी-सी अवस्था में भगवती को लगा, प्रथम बार, कि नारी में कितना बल होता है। वह पुरुष-यौवन के पत्थरों के बांध को तोड़ देने के लिए क्यों व्याकुल हो जाती है ?

उसने कहा—'आप गजब करती हैं। आप जब नाच रही थीं, मुझे लग रहा था, साक्षात् मेनका मेरे सामने नृत्य कर रही है।'

कुहनी टेककर हथेली पर ठोड़ी रखते हुए इन्दिरा ने पूछा—'मेनका कौन? वह भी तो एक नर्तकी है?'

'जी नहीं'—भगवती ने कहा—'वह एक अप्सरा थी,' उस समय उसे मालूम हुआ कि अंग्रेज़ी सभ्यता की छाया में पली वह लड़की भारत के प्राचीन के बारे में कितना कम जानती है। उसे झुंझलाहट हुई। यह जो पुनर्जागरण का अतीत के प्रति मोह है, इसीलिए कि अब यूरोपियन इन सबकी प्रशंसा करने लगे हैं, और अंग्रेज़ी में गीता पढ़ना एक फैशन हो गया है। आखिर क्या करें ये लोग? ये तो तहेदिल से चाहते हैं, मगर वह कमबख्त अंग्रेज़ ही हैं जो इन्हें सब कुछ पालकर भी अपने में मिलाते नहीं। इसलिए ये भी लाचार होकर देश की दुहाई देते हैं, वह देश, जिसको आज़ाद होना चाहिए ताकि यह भी स्वतन्त्र होकर बालरूम में नृत्य कर सकें, इंग्लैंड जाएं तो स्वतन्त्र होने के नाते इनका भी अन्य राष्ट्रों के नागरिकों की भांति सम्मान हो।

'अप्सरा?' इन्दिरा ने आंखें फाड़कर कहा।—'अप्सराएं इन्द्र के पास होती थीं। अच्छा, आपका मतलब Nymphs से है। तो बताइए न! मेनका की कहानी सुनाइए। मैं तो इन कहानियों के बारे में कुछ जानती ही नहीं। सच, डैडी ने हमेशा से अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ाया। मुझे तो शर्म लगती है कि मैं इन बातों को नहीं जानती। सुनाइए न!'

भगवती फिर घिर गया। यह तो एक नई बला लग गई। उसने इधर-उधर देखा, बात करने के लिए और कुछ था भी नहीं। कहा—'विश्वामित्र थे न?'

इन्दिरा को यह मालूम नहीं था। उसने कहा—'अच्छा!' अर्थात् फिर। भगवती क्षुब्ध हुआ।

'तो एक बार वह तप करने बैठे। उनके तप से ब्रह्मांड डोल उठा। इन्द्र डर गया। उसने नवीन यौवन की अमरता से गर्वित मेनका को उनका तप खण्डित करने के लिए भेजा। जिस समय विश्वामित्र ध्यान में मग्न थे, मेनका उनके सामने जाकर नृत्य करने लगी। उसके नूपुर बजने लगे, चारों ओर फूल खिलने लगे, किन्तु विश्वामित्र के नयन नहीं खुले। अप्सरा का आंचल उड़ गया, वह समस्त शक्ति से नृत्य करने लगी। उसके नूपुरों की झंकार से स्वर्ग तक मुखरित हो उठा। नन्दन-कानन में गानेवाले गंधर्व स्वर्ण के चषकों को लेकर भूले से बैठे रहे। अप्सरा का मादक यौवन सहस्रदल पद्म की भांति खुल गया। उसकी समस्त रूपराशि भारवाही गंध की भांति आकाश और पृथ्वी के बीच मलयानिल के वाहन पर बैठकर झूम उठी। धीरे से विश्वजित् महामेधावी विश्वामित्र के नयन खुले। दोनों के नयन चार हुए'···

'शाबाश···!' कामेश्वर ने कमरे में घुसते हुए कहा—'मैंने तो समझा था कि दोनों बुद्धुओं की तरह अलग-अलग मुंह फुलाकर बैठे होंगे, परन्तु यहां तो पूरी कथा चल रही है। क्यों इन्दिरा, वीरेश्वर और समर, न जाने कौन-कौन आए, तू उनमें से किसी से भी नहीं खुली। भगवती सचमुच मेधावी हैं।'

भगवती चौंका। इन्दिरा—'वे सब बनते बहुत हैं।'

'हां, तो सुनाओ भगवती, कहे जाओ। मैं तो बड़ा इच्छुक हूं कि कोई मुझे पुरानी कहानियां सुनाए। उनमें सचमुच बड़ा मादक प्रभाव होता है। कहो न भगवती!'

इन्दिरा ने कहा, 'ये विश्वामित्र ऋषि की बात सुना रहे थे। इनकी भाषा बड़ी कठिन है, लेकिन उसमें संगीत बड़ा है। बड़ा मज़ा आ रहा था। तुमने तो सब बातें बिगाड़ दीं।'

'अरे वाह!' कामेश्वर ने कहा—'वह तो सब क्या कहने। उसपर मैंने एक जर्मन कवि की टीका पढ़ी थी, वाह! क्या किताब है! दरअसल पुराने भारत में क्या कमी थी! अब वे बातें न रहीं। तुम सुनाओ। ममी ने बुला लिया था, वरना मैं क्यों जाता? हां, बात तो है ही यह कि…'

इन्दिरा ने बीच ही में कहा—'सुनने दो न भाई ज़रा!'

'ओह, यस्!' कामेश्वर ने सिर हिलाते हुए कहा—'तुमने ठीक कहा।'

दोनों ने भगवती की ओर देखा। भगवती का तार टूट गया था। वह उसे जोड़ने का प्रयत्न कर रहा था। मन में विचार आया कि कहीं कामेश्वर कुछ का कुछ न समझे। आखिर उसकी बहन है। लेकिन कामेश्वर के हृदय की मेज़ का शीशा बिल्कुल स्वच्छ था; उसपर तनिक भी भाप नहीं पड़ी थी। वह बहुत हद तक इन भारतीय सीमाओं के संकोच को छोड़ चुका था। भगवती अभी तक एक लड़की को सुना रहा था। उसे विश्वास था कि वह उससे अधिक जानता था। किन्तु अब जो श्रोता है वह जर्मन कवि की टीका पढ़े हुए है, कहीं मेरी बात दूध की मक्खी न बन जाए? वह इसी चक्कर में पड़ा था कि नौकर ने प्रवेश किया और कहा—'बाबूजी!'

'क्या है?'—कामेश्वर ने सुकड़कर पूछा।

'सरकार! वीरेश्वर बाबू आए हैं।'

'अकेले हैं?'

'जी नहीं, साथ में और लोग भी हैं।'

'तुमने पहचाना कौन-कौन हैं?' कामेश्वर ने पूछा—'बता सकते हो?'

'सरकार, एक तो पतले-दुबले-से हैं, चश्मा लगाते हैं, दूसरे एक और हैं।'

'तो लाओ, तब तो यहीं।' कामेश्वर ने फैलकर लेटते हुए कहा।

नौकर चला गया। इन्दिरा ढंग से बैठ गई। भगवती अचकचाया-सा बैठा रहा। कमरे में तीन व्यक्तियों ने प्रवेश किया।

'हेई! हेई!' वीरेश्वर ने चिल्लाकर कहा—'हलो इन्दिरा, क्या हो रहा है?'

इन्दिरा मुस्कराई। उसने कहा—'हम लोगों को मिस्टर भगवती एक कहानी सुना रहे थे।'

आनेवालों ने अपने-अपने लिए एक-एक कुर्सी का इन्तजाम कर लिया और फिर उत्सुक आंखों से भगवती की ओर देखा।

वीरेश्वर काफी कुछ कामेश्वर का-सा। रंग सांवला-सा। हरी एक उद्भ्रांत और मार्मिक-सा युवक। और समर! वह बांसों का एक झुरमुट, जिसपर कपड़े डाल दिए गए हों, जो ऐसा लगता हो जैसे धूप में पेड़ों की छाया कांप रही हो और जिसकी सारी सफाई भी एक निरपेक्ष छलना हो।

कामेश्वर ने ही कहा—'तुम लोग जानते हो कि नहीं ?'

तीनों ने नकारात्मक रूप से सिर हिलाया। कामेश्वर ने कहा—'मिस्टर भगवती प्रसाद। थर्ड ईयर में आए हैं। फर्स्ट क्लास...'

इन्दिरा ने कहा—'चलो रहने दो, हर बार इनका सर्टिफिकेट पढ़कर सुनाने की क्या ज़रूरत है ? फिर अपना परिचय देते वक़्त क्या कहा करोगे ?'

सब हंस पड़े। भगवती ने उन लोगों को हाथ जोड़े। वीरेश्वर ने उत्तर दिया। हरी अपने ध्यान में मग्न था। समर की जैसे समझ ही दूर रह गई।

इन्दिरा ने फिर कहा—'आप विज्ञान के विद्यार्थी ही नहीं, आप भारत की प्राचीन संस्कृति के बारे में भी काफी जानते हैं, नृत्य में विशेष अनुराग है...'

वीरेश्वर ने संदेह से देखा। भगवती ने कहा—'आप लोगों के बारे में मुझे जानने का सौभाग्य नहीं देंगे क्या ?'

इन्दिरा ने कहा—'आइए, मैं बताती हूं। आप मिस्टर वीरेश्वर, आप मिस्टर समर, आप मिस्टर हरी।'

परिचय न्यून था, जैसे इन लोगों की सत्ता का, केवल मां-बाप का दिया हुआ एक संबोधन अथवा संज्ञा थी, जिसका संबोधित वस्तु से संसर्ग बनाकर ही उनका पूर्णत्व साबित कर दिया गया था। फिर कुछ सोचकर कह उठी—'आप सब बी० ए० पास कर चुके हैं और अब एम० ए० की कक्षाओं में वक्त काट रहे हैं।'

वीरेश्वर ने ऐसे देखा जैसे धन्यवाद कहा हो, और समर तथा हरी कुछ समझ नहीं पाए। हरी ने चौंककर पूछा—'तो आपने इसी साल इण्टर पास किया है ?'

भगवती के बोलने के पहले ही इन्दिरा ने कहा—'इण्टरमीजियेट !'

अपमान की क्षुब्धकारी जिस भावना का प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया था, वह सब निष्फल हो गया। स्त्रियों की सहानुभूति वास्तव में बहुत बुरी होती है। अच्छा-खासा आदमी उनके पक्षपात से भीतर ही भीतर कुछ कुढ़ जाता है। उसे यह ग्लानि होने लगती है कि आखिर उसमें ऐसी क्या बात है जो हममें नहीं है और विद्यार्थी-वर्ग, जिसमें यूरोप के योद्धाओं की मध्यकालीन स्पर्धा होती है, उसे स्त्रियों के सामने व्यर्थ की प्रतिद्वंद्विता करने की विशेष रुचि होती है।

वीरेश्वर ने एक बार पुरानी आंखों से कामेश्वर की ओर देखा, मुस्कराया, लेकिन कामेश्वर गम्भीर रहा। तब वीरेश्वर की समझ से इस बात ने टक्कर ली कि यह व्यक्ति फांसा नहीं गया, वरन् इससे कामेश्वर तो क्या स्वयं इंदिरा भी प्रभावित है। इन्दिरा, जो आज तक किसी से ऐसे बात नहीं करती थी, आज दिलचस्पी लेती हुई इनके बीच में आकर बैठी है और अनजाने ही उसमें यह भावना भी है कि भगवती पर प्रहार न हो, जिससे उसको कोई हीनता न छुए।

भगवती कुछ ऐसा बैठा रहा जैसे उसे इन दलबन्दियों से कोई मतलब नहीं। वह जैसे इन दो से परिचित है, वैसे ही इन तीन से भी होना चाहता है। उसे कोई फर्क करने की ज़रूरत नहीं है और वह उन तीनों से भी वैसे ही सहानुभूति पाने की आशा रखता है। वह एक बार सब पुरुषों की ओर देख गया और फिर उसने मुक्त दृष्टि से इन्दिरा की ओर देखा। देखा और चौंक गया। इन्दिरा उसकी ओर ही देख रही थी।

उसकी दृष्टि में एक भावना थी—'घबराना मत। यह सब कुछ नहीं।'

दोनों एक-दूसरे की तरफ देखकर मुस्कराए। इन्दिरा के नयनों में एक तृप्ति थी, मानो उसने एक निकटता, एक अपनेपन का अनुभव किया था।

कामेश्वर ने उस खामोशी को दूर करने के लिए जेब से सिगरेट-केस निकाला और आगे बढ़ाया। तीनों ने सिगरेट ले ली। भगवती ने हाथ जोड़ दिए। इन्दिरा देखकर हंस दी, फिर कहा—'अब यह कायदा पुराना पड़ गया है। खाली नो, थैंक्स कहना काफी है। आइए, हम-आप इस बारे में एक-से हैं। चलिए, ममी से आपकी मुलाकात करा दूं। वे आपको देखकर बहुत खुश होंगी।'

भगवती ने कामेश्वर की ओर देखा। कामेश्वर ने सिर हिलाकर कहा—'अरे तो तू क्या समझती है कि भगवती कोई बूढ़ा है, जो धार्मिक हो। वह तो सिर्फ ज़रा उसे भारत की प्राचीन बातों में दिलचस्पी है। उसका तूने तो उल्टा-सीधा मतलब लगा लिया।'

'मैंने यह तो नहीं कहा।' इन्दिरा ने उठकर कहा।

भगवतीप्रसाद और इन्दिरा भीतर चले गए। कुछ देर वाकी लोग कुछ सोचते रहे। फिर हरी ने कहा—'कामेश्वर! वक्त आ गया है, अब मुझे वोट देना। मैं लिटरेरी सेक्रेटरी के लिए खड़ा हो रहा हूं।'

'ज़रूर'—कामेश्वर ने कहा। वह इस बात को बढ़ाना नहीं चाहता था। दिल में यकीन था कि अभी से वायदे करने से क्या फायदा? जब जो होगा देखा जाएगा। हरी के लिए जीवन में इससे अधिक किसी बात का मूल्य नहीं।

थोड़ी देर तक वे चुपचाप सिगरेट पीते रहे। फिर वीरेश्वर ने ऊबकर कहा—'कामेश्वर! क्या विचार है? इस साल कैसी रहेगी?'

कामेश्वर कुछ सोच रहा था। उसने अनमने स्वर से उत्तर दिया—'देखो!'

बगल के कमरे से खट-खट की आवाज़ आई। चारों चौकन्ने हो गए। उन्होंने देखा, द्वार पर लवंग खड़ी थी और उसके साथ थी लीला राय। चारों आदर दिखाने के लिए उठ खड़े हुए।

लवंग कूल्हे नचाती, खट-खट करती, आकर एक कुर्सी पर बैठ गई। उसके पीछे-पीछे लीला भी चलती आई। चारों बैठ गए।

लवंग ने टेढ़ी नजर से कामेश्वर को भाला मारते हुए कहा—'आप जानते हैं इन्हें? ये हैं मिस लीला राय। कालेज में इसी साल आई हैं और आप हैं मिस्टर कामेश्वर, इन्दिरा के भाई।' कामेश्वर ने हाथ जोड़ दिए। उत्तर भी मिल गया। फिर लवंग ने एक-एक करके तीनों से परिचय करा दिया। लीला अभी तक खड़ी थी। समर लवंग की ओर चश्मे में से घूर रहा था। जो भाला कामेश्वर को मारा गया था वह दुर्भाग्य से समर के सीने में जा अटका था। बाकी लोग लीला को छिपी-छिपी नज़रों से देख लेते थे।

लवंग ने कहा—'बैठो न लीला! क्यों खड़ी हो?'

लीला संकोच करती हुई बैठ गई। वह एक अल्हड़ चपल बालिका थी। पाउडर की एक मोटी तह उसके मुख पर चिपक रही थी, किन्तु लवंग के सामने उसका श्रृंगार

कुछ नहीं था। लवंग के रंगे सुर्ख होंठ, नकली लाली से बिचकते गाल, रूखे, मगर सुगन्धित कन्धों पर लहराते बालों और सेंट की अत्यधिक खुशबू ने उनके चारों ओर एक अजीब-सा वातावरण बना दिया था। अधिकांश अंग्रेज़ी बोलना, बीच में कभी-कभी खयाल आने पर हिन्दी का प्रयोग करना, एक बार बात करना, दो बार मुस्कराना और तीन बार हंसना तथा दुनिया को बेवकूफ समझनेवाली नज़र से अपना दर्प प्रदर्शित करना आदि बातें ऐसी थीं जिनसे प्रत्येक उपस्थित युवक मन ही मन उससे चिढ़ता था, किन्तु स्पर्धा सबमें थी, उसकी जवानी सबको लज़ीज़ मालूम देती थी। एक विचार आता था कि बनती तो इतनी है, एक बार आ जाए घिराव में, फिर देखें कैसे आंख मिलाती है। सारी शोखी को कदमों की धूल बनाकर कुचल दिया जाए। बड़ी मस्तानी गन्ध, कि उंगलियों में भींचकर मसल दी जाए। किन्तु वह अपने में निश्चित-सी सब ठीक है; लवंग ने आज कुछ घुटन का अनुभव किया। उसने कहा—'इन्दिरा कहां है?'

कामेश्वर ने कहा—'वह अभी आती है। भगवती को ममी से मिलाने ले गई है।'

'कौन भगवती?'—लवंग ने पूछा।

'एक मेरा नया दोस्त है। इन्दिरा के नृत्य का पारखी।' कामेश्वर ने सिगरेट का कश खींचते हुए कहा। लवंग ने देखा, चारों व्यक्ति उससे कुछ सन्तुष्ट नहीं थे। उनकी दृष्टि लीला पर अधिक थी। लवंग अपने पुरानेपन के प्रति इस अवहेलना को स्वभावगत क्षेत्र होने के कारण शीघ्र ताड़ गई। वीरेश्वर ने कहा—'मिस लवंग! आप अब की गर्मियों में कहां-कहां रहीं?'

'कहीं नहीं।' लवंग ने कहा—'देखिए न! हम काश्मीर जानेवाली थीं, वहां तो जा नहीं सकीं। बात यह है कि डैडी ने कह दिया कि हमें छुट्टी नहीं मिलेगी। फिर क्या करते? ममी ने भी कह दिया कि अब घर छोड़कर क्या जाऊं। तुझे जाना हो तो कुछ दिन के लिए मसूरी चली जा। वहीं गई थी मैं। लेकिन आप जानते हैं, अकेले में कुछ अच्छा नहीं लगता। डाक्टर सिन्हा के यहां जाकर ठहरी थी। दूसरों के घर ठहरना क्या ज्यादा अच्छा लगता है? उनके एक दोस्त राजेन्द्रसिंह भी वहीं ठहरे हुए थे। उन्होंने कहा—अभी ठहरिए। हाल में ही लड़ाई की वजह से लौट आना पड़ा, वरना इंग्लैंड में ही थे चार साल से।'

यह बात भगवती ने भी इन्दिरा के साथ कमरे में घुसते हुए सुनी।

समर ने पूछा—'यह राजेन्द्रसिंह कौन हैं?'

लवंग उसके मुंह से कोई भी बात सुनकर हंसती है। बोली—'चंदौसी के पास कहीं के बहुत बड़े ज़मींदार हैं।'

भगवती सुनकर चौंक गया। यह उसके गांव के ज़मींदार के बेटे का ज़िक्र यहां क्यों? फिर विचार आया कि वह वर्ग उसका नहीं। उसके मालिक की हैसियत के लोग हैं वे, जिनकी भगवती प्रजा है, रियाया है। राजेन्द्रसिंह वही हैं जिनके पिता ने रुपये देकर भगवती को दया करके पढ़ाया है।

इन्दिरा को देखते ही लीला और लवंग ने उसके दोनों हाथों को पकड़ लिया

और वे अन्दर चली गईं। भगवती से इन्दिरा ने चलते-चलते मुड़कर कहा—'क्षमा करिएगा! नमस्ते।'

भगवती विक्षोभ से भर गया। उसे लगा, सामने बैठे वे सब युवक उसकी इस उपेक्षा से प्रसन्न थे, व्यंग्य से मुस्करा रहे थे। किन्तु यह भ्रम था। वास्तव में वे उससे तब भी प्रभावित थे। इन्दिरा का स्नेह उसके प्रति सबको खल गया था।

कामेश्वर को लवंग की यह आदत मालूम थी। प्रारम्भ में वह सदा अपरिचित व्यक्ति के प्रति एक अनुपेक्षणीय तिरस्कार-सा दिखाती थी। वह चाहती थी, सब उसकी ओर अधिक आकर्षित हों।

कामेश्वर ने भगवती को हाथ पकड़कर पास बिठाते हुए कहा—'बुरा न मानना। यह लड़की बड़ी तोताचश्म है। चाहो तो तुम भी अपनी क़िस्मत आज़मा लो।'

सब हंस दिए और उनका हृदय भगवती के प्रति सरल हो गया। किन्तु भगवती मन ही मन सकुचा गया। उसने अनुभव किया कि उन लोगों के साथ बनाए रखना वास्तव में उसकी औक़ात से कितना ज़्यादा बाहर था।

वह केवल मुस्करा दिया।

4

एक सांप-सी सड़क की लपेटों ने दूर-दूर तक अपनी गति फैला रखी है। एक ओर कला-विभाग है, दूसरी ओर विज्ञान (साइंस)। कला के एक किनारे ही कामर्स विभाग है। पहला महीना समाप्त हो चुका है। प्रोफेसर नारायण आते, क्लास घबराकर खड़ी हो जाती। किन्तु हर कायदे में असंतोष की छोटी भावना होती, प्रत्येक तमीज़ में एक चंचलता।

भगवती काम कर रहा था। लैब में उसकी तन्मयता प्रसिद्ध हो चुकी थी। कामेश्वर के कारण उसे काफी लोग कालेज में जानने लगे थे। बहुत-से लोगों की उपेक्षा अथवा उदासीनता उसके प्रति इसी कारण थी कि वह केवल पढ़ाई में ही लिप्त रहता था। समर कहता कि आदमी को एकदम किताबी कीड़ा भी नहीं होना चाहिए। कामेश्वर सुनता और बजाय कोई बहस करने के उसे टाल जाता। समर इस पर बहुत अविश्वास करता।

भगवती विज्ञान का विद्यार्थी है, किन्तु दर्शन और अर्थशास्त्र में भी उसका ज्ञान है। शाम को कभी-कभी वह मैच देखने निकल जाता था और कभी-कभी वह सांझ के डूबते बादलों के आगे लड़कियों के होस्टल की छत पर लड़कियों को खेलते देखकर किसी भविष्य के सपने में डूब जाया करता था। दिन-भर वह काम करता, शाम को अखबार पढ़ता और फिर रात को वह दीवालों पर फॉरमूला लिखा करता था। उसका जीवन तब जितना एकाकी था उतना ही अब भी, मगर तब वह गरीब था, अब नहीं, तन से नहीं मन से।

मगर इस वक्त वह काम कर रहा था। काम का मतलब हुआ कि कोई और विचार उसके दिमाग में आ ही नहीं रहा था। रोशनलाल लैब असिस्टेंट उसकी फर्माइशों से झल्ला उठता था, लेकिन वह खुश था, क्योंकि वह चाहता था कि कोई ऐसा आदमी आए जो लैबोरेटरी का नाम रोशन करे और इसी चक्कर में उसकी भी इज़्ज़त बढ़ जाए।

नौकर आता और चुपचाप घुसता था। टूटे सामान उठा ले जाता था।

कैंरिब्डिज़ की-सी शक्ल के डाक्टर कुमार आकर देखते थे। उसे काम करते देखकर मुस्कराकर सिर हिलाते थे और सिंक में झांककर देखते थे कि कोई सिगरेट का टुकड़ा वहां तो नहीं फेंक गया, क्योंकि ऐसा करने की उन्होंने मनाही कर रखी थी, क्योंकि वहां सिगरेट पीने का मतलब था कि लैबोरेटरी में होम हुआ था।

नाइट्रिक एसिड की बोतल पास में रखी थी। नीले-पीले रंग के एसिडों से आलमारी में शीशियों पर विचित्र रंग छा रहे थे। यह विज्ञान-विभाग था। समर दूर खड़ा पत्तों पर उंगलियां फिरा रहा था। वह कला का विद्यार्थी था, यह जगह उसके लिए परदेश की थी।

जहीर, जो ज़ूलोजी का अध्ययन करता था, दूसरे डिपार्टमेंट में काम कर रहा था। 'लाइवीपाइडीस—मामूली-मामूली कद की तितलियां, नर के आगे के पैर छोटे...'

वीरसिंह उससे बढ़कर कह रहा था—'यह देखो, तीनों फैमिली—'पासालिढी, ल्यूकैनिडी और स्कारावइडी...'

'यह हैमीडैक्टाईलस (छिपकली) है या लूसी ?'

और उनके ठहाके से लैब गूंज उठता था। कपूर होस्टल की ओर कभी-कभी कोई साइकिल पर या पैदल चला जाता था। कभी-कभी लड़कियां फील्ड को पार करके अपने होस्टल चली जाती थीं, जिन्हें साइंस लाइब्रेरियन अपने टूटे और अनगढ़ दांतों में बन्द पान की जुगाली करते हुए कार्ड पर से निगाह उठाकर देख लिया करता था। सब जगह काम हो रहा था। कुछ मनमौजी रेस्तरां से लौटकर आ रहे थे, जो अपनी सिगरेट को पूरा फूंक देने के लिए बाहर कंपाउंड में खड़े बातें कर रहे थे।

'यार ! इस पढ़ाई ने तो रेड़ कर रखी है। भला यह भी कोई मौसम था !'

'लो, अच्छा हुआ। हरी को कर्ज़दारों से दम मारने की तो कुछ दिन की फुर्सत हो जाएगी।'

और उनकी हंसी से एक-आध ऊंचे खयाल की लड़की अपने कॉमन रूम की चिक में से उचककर देखती है। लड़कों की निगाह निशाना चूकना नहीं जानती। वह हट जाती है और दस मिनट तक उसी की बात होती रहती है।

एक कामर्सवाला आकर पूछने लगा—'साहब, ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गया। आखिर बताइए तो कि बायालोजी डिपार्टमेंट कहां है ? जिससे पूछता हूं वही कहता है, ज़ूलोजी कि बोटैनी ? तो क्या दो अलग-अलग हैं ?'

कोई जवाब नहीं देता। एक-दूसरे की तरफ मुड़-मुड़कर देखते हैं और ठठाकर हंसते हैं। कामर्सवाला झेंपता है।

'वाह, मेरे दोस्त, कमाल करते हो,' वहीद कहने लगा, 'आप अपने नाम को तो ज़रा ज़ाहिर करो।'

'मुझे···मुझे कैलास कहते हैं।'

'अमां, कहने को तो सभी कुछ न कुछ कहा ही करते हैं, मगर तुम हो क्या?'

उनकी हंसी रुकनेवाली नहीं है। कामर्सवाला कुछ नहीं समझता। इसमें उसका कोई दोष नहीं है। उसे कभी साइंस और आर्ट्‌स से पाला ही न पड़ा था। उसे कभी अपने डिपार्टमेंट से छुट्टी न थी। बुककीपिंग, इकनॉमिक्स, ज्योग्राफी, टाइपिंग, इंग्लिश, एकाउंटेंसी और उसने जाने क्या-क्या ले रखा था। सिर पर चोटी थी। मगर जैसे-जैसे कालेज में उसके दिन बढ़ते जा रहे थे, वैसे-वैसे चुटिया कम होती और धीरे-धीरे धोती नीचे आती जा रही थी। वह गोरा था, अच्छा-खासा। लड़के उसे घेरकर खड़े हो गए। इतने में प्रोफेसर रशीद उधर से निकले और लड़का जान बचाकर वहां से निकल भागा। लड़के हंस रहे थे।

कौरिडोर से बदरुद्दीन और नसरू गुज़र रहे थे। समरू कहता जा रहा था—'डिसटिल ऐपीफिसिस आफ् रेडियस्, डिसटिल ऐपीफिसिस आफ् अल्ना···'

लेकिन बदरुद्दीन कह रहा था—'तुमने उन हड्डियों का ऐपीफिसिस देखा? उसमें कतई मलटैनग्युलम मेजस का कोई निशान न था।'

'मैटाकारपल विन् प्रोजिमल ऐपीफिसिस···'

दोनों चले गए थे। भगवती अब भी झुका हुआ काम में लग रहा था।

कौरिडोर में फिर आवाज़ आने लगी—'दो क्लीन ज़िंक के तार ज़िंक के सल्फेट के सोल्यूशन में डूबे हुए और बारी-बारी से डैमियल सेल के पोल्स से जुड़े हुए, क्या होगा?'

'बी सी एरिया = एरिया ए बी × क्रास थीटा यानी कि···'

कुछ देर बाद फिर शांति छाई।

भगवती इस वक्त मिक्सचर को बड़े गौर से देख रहा था कि लड़कियों के ज़ोर से हंसने से उसके हाथ कांप उठे और घबराहट में टेस्टट्यूब गिर गया। वह गुस्से से फुंकार उठा। ख्वाहमख्वाह उसके जमा किए रुपये इस तरह बेकार एपरेटस के टूटने से कट रहे थे। इनमें से कौन देने आएगी! इन्हें क्या है? घर बसाना है। कमाना होगा हमें। वह दांत चबाने लगा। इतने में लीला ने झांककर देखा। वह बहुत धीरे से बोली—'माफ कीजिए। आपको मालूम है, ऊषा कहां है?'

'उनका घण्टा खत्म हो गया।'

'फिर आप भी तो उसी क्लास में हैं।'

'वे लोग सब वक्त काटने आते हैं, काम करने नहीं।'

'ओह!'

भगवती शर्मा गया। उसने इतनी मृदुल लड़की से इतनी कठोरता से व्यवहार कर दिया। सच है, उसे शील छू भी नहीं गया। लीला उस घमण्डी लड़के को ताज्जुब-भरी निगाहों से देख रही थी, मगर दोनों ही शरमा गए थे। भगवती अपनी झेंप मिटाने को कहने लगा—'माफ कीजिए, क्या कहूं! कमबख्त टूट गया।' और वह मुस्करा

उठा। वह भी एक तृप्ति से मुस्करा उठी।

'बड़ा अफसोस है,' वह इठलाकर बोली, 'आप ही का नाम मिस्टर भगवती-प्रसाद है?'

'जी हां, कहिए।'

'कहना तो कुछ नहीं है, मैंने ऊषा से आपका नाम सुना था।'

'और आपको मिस लीला राय कहते हैं न?'

'हां, हां।'

भगवती चुप हो गया। लीला कहती रही—'टेस्टट्यूब टूट गया, तो हम क्या करें? आप क्यों चौंके?'

'जी, मैं चौंकता भी नहीं, आपका मतलब है, हां मेरा मतलब है कि···कि आप इतनी ज़ोर से क्यों हंसीं?'

वह ठठाकर हंस पड़ी। भगवती के बदन में जैसे एक बिजली का तार छू गया हो। वह बात बन्द करने को बोला—'ऊषा अभी ही तो गई हैं। आप पहले जूलोजी में ढूंढ़िए, वरना फिर शायद आर्ट्स की तरफ ही आपको मिलेंगी।'

लीला जैसे समझ गई। बोली—'अच्छा थैंक्स।'

वह चली गई और भगवती मुंह बाए देखता ही रह गया। उसके चले जाने के बाद कुछ देर तक एक सूनापन छा गया। भगवती को वह बुरा लगा। वह सोचता रहा। हाथ से मेज़ को छूने लगा। उसकी निगाह 'बर्नर' की जलती लौ पर अटक गई। उसने उसमें झांका। एक भगवती खड़ा था। कोई हंसा, टेस्टट्यूब टूट गया। फिर एक लड़की आई और कोई सुदूर में गा उठा :

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा
स्वाधिकारात् प्रमत्तः।

और उस गीत के छोर को पकड़कर जैसे बोवुल्फ का भाट बर्फीले इंग्लैण्ड की हरियाली में एक बन्द किले के सामने जीवन के रुद्ध अपने राजा को छुड़ाने को गा रहा था···

भगवती ने देखा, लौ हवा में हिल रही थी। हवा का एक ठण्डा झोंका आया था, जिसमें देवदार हिल पड़े थे। चांद खिल आया था। रोशनी से झरना कांप रहा था। उसके गीतों से आकाश मचल रहा था। धीरे से उसके होंठ अचानक ही बड़बड़ा उठे :

नक्षत्र, भूत, ये स्वर्ग आज
हैं बना उठे छवि रे अतीत
युग-युग तक अणु-अणु अनुपमेय

वह रुका और उसका हृदय गुनगुनाने लगा—

स्पर्श करती दृष्टि कोमल,
ओ सुहासिनि मधुर आनन,
चिर, मधुरिमा से विलस
अभिमान का वह लास चेतन;
आह! वह दो शब्द कोमल
बिंध गया पागल हुआ मन।

जीवन का लम्बा सूनापन हरहराकर प्यार से मुस्करा उठा। हृदय की अनुभूति विकास के विशाल मार्ग पर उलझती हुई चलने लगी। युगान्तर के सोए हुए पथिक ने बहुत दिन वाद दूर से गूंजती हुई वंशी की करुण रागिनी सुनकर निर्ममता के अभेद्य अन्धकार में प्रकाश की एक क्षीण किरण देखी थी और वह व्याकुल हो उठा था। हवा आई और जैसे कह गई :

प्राण तुम लघु-लघु गात···

भगवती चौंक उठा। उसने देखा, बर्नर व्यर्थ जल रहा था। वह जल्दी से सिंक का जल खोलकर हाथ धोने लगा और होंठ बड़बड़ा रहे थे—'सी० ए० एस० ओ० फ्रेर···रुला लें आज रुलाने वाले।'

लीला कौरीडोर में घूमकर कैमिस्ट्री-विभाग में उतर गई और चक्कर देकर ज़ूलौजी विभाग में घुस गई। यहां भी कैमिस्ट्री डिपार्टमेंट की तरह बदबू आ रही थी, मगर उतनी नहीं। कोई एम० एस-सी० का लड़का कुछ लड़कियों को म्यूज़ियम दिखा रहा था। वह आगे बढ़ गई। तब वह बाहर गार्डन में निकल गई। प्रोफेसर ऐल्फ्रेड ग्रीन खिड़की में से सांप पर झुका हुआ दीख पड़ा—जो मेज़ पर कटा पड़ा था और डिमौंस्ट्रेटर नरोत्तम झुककर माइक्रोस्कोप में गौर से निगाह लड़ाए था। सामने से ऊषा आ रही थी।

लौटते वक्त ऊषा और लीला को वहीं सोचता हुआ भगवती दिखा। ऊषा मुस्कराई और एकदम बोल पड़ी—'मिस्टर भगवती!'

भगवती चौंक पड़ा।

'आइए, चल रहे हैं आप आर्ट्‌स की तरफ?'

'जी हां, जा तो रहा हूं।'

'तो आइए न।'

इतनी बेतकल्लुफ थी वह लड़की और उसे भगवती को छेड़ने में मज़ा आता था। कभी-कभी वह उसे अपने प्रैक्टिकल की मदद को बुला ले जाती थी और कहा करती थी—'आपको कोई बुला रहा है उधर।' जब भगवती वहां तक चला जाता था तो कहती थी—'अभी तो था, न जाने कहां चला गया। हां, तो अब इसे कितना गर्म करूं?' भगवती उसे देखता रह जाता था। 'अजब लड़की है! ऐसे तंग करती है जैसे मेरी सगी छोटी बहन हो,' लेकिन वह सोचता था कि इस तरह के रिश्ते जोड़ना मानो एक कमज़ोरी थी। हम किसी लड़की से पहले एक सतह बना लेना चाहते हैं, ताकि मन फिर रुद्ध कारा में घूमा करे, तड़पा करे।

एक लड़का राह में पीलू के पेड़ के नीचे खड़ा अपनी फीस की कापी देख रहा था। चौराहे के बीचोंबीच सिपाही छाता सीने में अड़ाए खड़ा था, ताकि दोनों हाथ खाली रहें। प्याऊ पर एक गंवार पानी पी रहा था और एक कंजरिया छाती खोले बच्चे को दूध पिलाती भीख मांग रही थी। एक पेड़ के नीचे गन्दा सूखा लड़का भिखारी बावला-सा शून्य दृष्टि लिए बैठा था। कल विभाग में लड़के आ रहे थे और वे लोग मेंहदियों के बीच से चलने लगे।

'आप इन्हें जानते हैं?'—ऊषा ने लीला की ओर दिखाकर भगवती से पूछा।

'जी हां।'

'ओ हो! और तुम लीला…'

'हां, हां।,'

'हा-हा'—वह हंसी—'यह भी खूब रहा। टिन खोलने के पहले ही अनन्नास की खुशबू से जी भर गया।' वह ज़ोर से हंस पड़ी। भगवती भुनभुना उठा। बोला—'इसमें हंसी की क्या बात थी?'

लीला उसे देखकर नीचीं नज़रों से मुस्कराने लगी। माली नाली खोदकर पानी ठीक बहाने की कोशिश कर रहा था। वाइस प्रिंसिपल का नौकर चमरी से चाय ले जा रहा था। वे लोग बिल्डिंग में पहुंच गए। छठे कमरे में क्लास हो रहा था। पांचवां और चौथा उस वक्त खाली था। नोटिस-बोर्ड के सामने कालेज का काना नौकर अपने नाटे कद को लिए घण्टा बजाने का हथौड़ा लेकर डोम के नीचे घूम रहा था। वे लोग नोटिस पढ़ने लगे। इन सबसे उकताकर ऊषा बोली—'हम तो थक गए कालेज से। कितनी बंधी ज़िन्दगी है! आपकी क्या राय है, मिस्टर भगवती?'

'जी हां,'—भगवती ने पहली बार वाकई चोट की, 'जिसको कोई काम होता है उसे हर जगह ज़िन्दगी मिल जाती है। जो बेकार वक्त काटना चाहता है, उसकी तो कहीं भी तबियत नहीं लगती।'

ऊषा को यह जवाब अच्छा लगा, लीला को भी। दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा, मगर भगवती उस वक्त हटकर टाइमटेबिल के पास लगी चिट्ठियां देख रहा था। लीला उसके पास आ गई। वह बोली—'क्या देख रहे हैं आप?'

'कुछ नहीं,'—भगवती ने विस्मित होकर देखा।

'मुझे अभी तक याद है वह पहला दिन, जब आप घबराए खड़े थे और कामेश्वर आपको बना रहा था,'—लीला ने कहा।

ऊषा पास आ गई थी। कह उठी—'किसका खत देख रहे थे? मेघदूत मिल गया!'

भगवती गुस्से से तड़प उठा। वह कुछ बोला नहीं।

ऊषा बोली—'किसके खत की उम्मीद से उधर से इधर आए थे, बोलो न?'

भगवती ने कहा—'मां के खत की उम्मीद से।'

लीला—'आप रहते कहां हैं?"

भगवती ने कहा—'सरदार होस्टल में।'

ऊषा—'कमरा नम्बर?'

भगवती—'पन्द्रह, दायां विंग।'

ऊषा—'तब तो वीरेश्वर के पास ही?'

भगवती—'जी हां।'

लीला—'आपके कमरे में ताज बनते हैं? सुराही टूटती है?'

भगवती ने हमेशा के अटूट सच को झुठलाकर कहा—'नहीं।'

'ताज्जुब!'—ऊषा कह पड़ी।

इतने में एक लड़के को घेरे बहुत-सी डेविड होस्टल की लड़कियां खाली रूम नम्बर तीन से निकल पड़ीं। वह लड़का राधेराम व्यास था। गरीब, एक आंख का सितमगर, चश्मा लगाए, मैले-से कपड़े पहने, सिर के बाल निहायत ऊबड़-खाबड़। एक लड़की कह रही थी—'तो मिस्टर राधा···'

दूसरी लड़की ने कहा—'यह क्या बदतमीज़ी है? राधा तो मिस होती है, मिस्टर नहीं।'

'अब मुझे ज़रा काम है, जाने दीजिए, जाने दीजिए,' वह लड़का मिन्नत करने लगा, मगर लड़कियां उसे घेरकर कहने लगीं—'ठहरिए न ज़रा, क्या बिगड़ा जाता है आपका?'

'मेरे सिर में दर्द हो रहा है, मुझे बुखार आ रहा है।'

लेकिन लड़की हाथ छूकर कहती है—'कहां? आपको तो कुछ बुखार-उखार नहीं है!'

'अजी, ये सब बहाने हैं। उस दिन भी ऐसे ही झूठ बोल गए थे। इन्हें तो हमेशा ही कुछ न कुछ रहता है।'

'आपकी कसम, मिस लूसी!'

लड़कियां लूसी की तरफ देखकर खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

'तो आप काउण्ट वियस के खानदान के हैं। रूस से बगावत में फ्रांस भाग गए थे···?'

'मुझे जाने दीजिए, मुझे जाने दीजिए!'—लड़का कहकर ऐसे फुदकने लगा जैसे जलते तवे पर कोई उछल-कूद कर रहा हो—'अरे मैं मरा, अरे मैं मरा···'

'जाने दो बिचारे को।' कोई बोली और वह छोड़ दिया गया। सब के सब, दफ्तर का नौकर तेजसिंह, भगवती, लीला, ऊषा और वे सब लड़कियां ठठाकर हंस पड़ीं। वह लड़का था ही पागल, इसलिए उसे सभी छेड़ते थे। काना नौकर आगे बढ़कर घण्टा बजा उठा। वह सदा से उसे ऐसे ही बजाता रहा है; मानो वक्त बीतता जा रहा है, इम्तहान पास आएगा, उसके लिए तैयारी करो। यह कायदा है, कानून है, जल्दी न करो और आराम भी नहीं। ज़िन्दगी ऐसे ही चलती है।

टन-टन-टन···

क्लासों से उठकर लड़के बाहर आने लगे। लड़के इम्तहानों से परेशान थे। बात यह थी कि रिपोर्ट घर पहुंच जाया करती थी और बाप नाम की चीज़ हिन्दुस्तान में अक्सर खतरनाक होती है।

जूनियर ट्यूटर कह रहा था—'आप डिग्री क्लास में हैं अब। अभी से पढ़िए, वरना डिवीज़न नहीं मिलेगा। यह न सोचिए कि यूनिवर्सिटी के पोलखाते में आप भी बहती गंगा में हाथ धो लेंगे। सिडनी का वह ऐसे, शैली की एडोनिस, मिल्टन की लिसीडस···' और वे दोनों आगे बढ़ गए थे।

'देखिए,'—एक आवाज़ आने लगी—'फेडरेशन और नॉनफेडरेशन का फर्क याद रखिएगा···'

तभी दूसरी—'इण्डियन फाइनेंस पर आप कोई अच्छी-सी किताब मुझे देंगे···'

और आखिरी—'अमां, पढ़ना-लिखना तो है ही। सालाना में देखा जाएगा। यहां हम पढ़ने आए हैं या मज़ा लूटने ? ज़्यादा से ज़्यादा रिपोर्ट जाएगी। बुड्ढा चेतेगा और क्या ? मां है तब तक तो कोई फिक्र नहीं है, वैसे ही कौन फर्स्ट क्लास आ रहा है जो आई० सी० एस० होंगे…'

कालेज में पंचानवे फीसदी मुखों से यह बात सुनकर दीवालें उनसे स्नेह करती थीं कि ये बहुत दिनों में यहां से जाएंगे और शेक्सपियर और मिल्टन उस वक्त कब्र में तड़प रहे थे।

'आमीन ! कुछ नहीं हुआ।'

5

इन्दिरा ने पलकों को हथेलियों से मूंद लिया, फिर ठठाकर हंस पड़ी। किन्तु ऊषा गंभीर बैठी चाय में चम्मच हिलाती रही। उसने इन्दिरा की हंसी पर इतनी अस्वाभाविक निस्तब्धता ग्रहण कर ली कि इन्दिरा एकदम चुप हो गई। उसने एक बार खिड़की से बाहर देखा और कहा—'सच, उसे बड़ी दिलचस्पी है।'

'तुममें कि नृत्य में ?'—ऊषा ने फिर उसी स्वर से कहा।

इन्दिरा सावधान होकर बैठ गई। उसने अपनी उंगलियों को मरोड़ा और फिर चुप होकर अपनी प्याली की ओर देखती रही। ऊषा ने अपना प्याला उठाकर एक घूंट पिया और फिर मेज के पार देखा—इन्दिरा उन्मन-सी बैठी थी। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहीं। अन्त में ऊबकर ऊषा ने कहा—'इन्दिरा ! मैं नहीं जानती कि कला किसे कहते हैं और कभी जानने की इच्छा भी नहीं की। किन्तु क्या तुम मुझे एक बात बता सकती हो ?'

इन्दिरा ने आंखें उठाईं। देर तक घूरती रही। उसका मौन ही उसकी शंका से भरी स्वीकृति थी। ऊषा ने पूछा—'तुम्हारा हृदय कालेज में तृप्त है ?'

इन्दिरा कुछ उत्तर न दे सकी। कामना का एक फूल उसने बहती धारा पर छोड़ दिया था। वह बहने लगा। बहते-बहते आंखों से ओझल हो गया। उसने आंखें बन्द कर लीं। जब फिर खोलीं तब चारों ओर अंधेरा छा गया था। व्याकुल होकर आकाश की ओर देखा। वह एक छोटा-सा टिमटिमाता तारा था। इन्दिरा सदा से मुखर रही है। वह बात कहती है तो लगता है, यह हवा हृदय के पानी को छूकर निकल रही है, तभी इसकी ठंडक और गर्मी इतनी शीघ्रता से पहचानी जा सकती है।

अभी-अभी उसके मुख से कुछ ऐसी बातें निकल गई थीं, जिन्हें सुनकर ऊषा को विस्मय हुआ था। यह इन्दिरा के जीवन में नवीन मोड़ था। आज इन्दिरा उस पथ पर चली थी जिसपर धनवान् बहुधा वेग से दौड़ता है और या तो खंदक में गिरता है या दूर से ही भय देखकर कांप उठता है।

उसने सिर हिलाया, जिसका कुछ भी अर्थ हो सकता था। ऊषा इससे सन्तुष्ट

नहीं हुई। उसने साड़ी का आंचल हाथ की उंगली से लपेटा, फिर छोड़ दिया। यही तो अनजाने की प्रीत है, लिपटना-छूटना, उंगली वैसी की वैसी ही।

ऊषा ने कहा—'इन्दिरा ! मैं अपनी बात का उत्तर चाहती हूं।'

इन्दिरा ने दर्प से सिर उठाकर कहा—'तुम दोस्त हो, गुरु तो नहीं। मान लो मैं तुम्हें इस बात का जवाब नहीं देना चाहती।'

ऊषा हंसी। उसने कहा —'मैं यही सुनना चाहती थी।'

इन्दिरा हतबुद्धि-सी बैठी रही। उसने घड़ी की ओर आंखें उठाईं। देखकर भी समय नहीं देखा। स्मृति आई, चली गई। ऊषा से वह कोई भय नहीं करती थी, किन्तु संकोच था अपनेपन का।

उसने अपने-आप कहा—'भगवती के बारे में तुम्हारी क्या राय है ?'

'राय ?'--ऊषा उठी और कहती गई—'राय का मतलब ?'

'यानी कि वह कैसा आदमी है ?' इन्दिरा ने पूछा।

'आदमी ? आदमी कैसा होता है ? इतनी बड़ी हो गईं, आदमी को भी नहीं जानतीं। जैसे सब आदमी हैं, वैसा ही वह भी है। एक फर्क ज़रूर है।'

'क्या ?' इन्दिरा ने उसे खिड़की के पास जाकर खड़ी होते देखकर मुड़कर पूछा।

'वह गरीब है।'—ऊषा ने गम्भीर स्वर से कहा। 'मेरे विचार में वह दया करने योग्य है। मैं नहीं जानती, उसकी असली हालत क्या है ? लेकिन मैंने एक बात ज़रूर देखी है। कामेश्वर का स्नेह उसके लिए अच्छा नहीं। कामेश्वर को कौन नहीं जानता…'

'ऊषा ?'--इन्दिरा ने कठोर स्वर से कहा। जैसे वह एक चेतावनी थी।

'तुम्हारा क्रोध ठीक है इन्दिरा,'—ऊषा ने अप्रभावित होकर कहा—'तुम्हारा यह असन्तोष बिल्कुल उचित है, किन्तु बात मैं ठीक कह रही हूं। तुमने देखा है, भगवती के कपड़े अब क्या से क्या हो गए हैं ? अब वह कोट-पतलून पहनता है। सस्ते ही सही, मगर फैशन के दायरे में वह घुस आया है। तुम मेज़ पर बैठकर खा-पी सकती हो, सिनेमा ऊंचे दर्जों में बैठकर देख सकती हो, लेकिन भगवती नहीं देख सकता। वह पढ़ने के लिए आया है, उसे पढ़ने दिया जाए, इससे बढ़कर उसका कल्याण किसी चीज़ में नहीं है। तुम्हें उसकी मदद करनी चाहिए।'

'मैं जानती हूं।'—इन्दिरा ने रोककर कहा—'लेकिन गरीब होने से ही मैं उसका अपमान करूंगी, ऐसा नहीं हो सकता। मैं यह नहीं सोच सकती कि उसका हम लोगों में मेलजोल उसके नुकसान के लिए है। मैंने भैया से एक बात कही है, जो उन्होंने स्वीकार करके ममी की भी इजाज़त दिला दी है। सिर्फ भगवती से पूछना बाकी है।'

'वह क्या ?' ऊषा ने दो पग बढ़कर कहा—'क्या, ज़रा सुनूं तो ?

इन्दिरा ने मुंह फेरकर कहा—'भगवती को मैं घर पर पढ़ने के लिए मास्टर रखना चाहती हूं।'

'हूं,'—ऊषा ने कहा, 'वह विज्ञान का विद्यार्थी है, तुम कला की। वह तुम्हें क्या पढ़ा सकेगा ?'

'अंग्रेज़ी'—इन्दिरा ने उसको कुरेदते हुए उत्तर दिया जो उसकी भीतरी निर्बलता के कारण तार की भांति झनझना रहा था।

ऊषा ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह फिर खिड़की के निकट जा खड़ी हुई और कहने लगी—'तुम द्वितीय वर्ष में हो और वह तुमसे सिर्फ एक क्लास अधिक है। इन्दिरा, मां को तुम धोखा दे सकती हो, क्योंकि वे अब बूढ़ी हो चली हैं, लेकिन तुम्हारा कुचक्र मुझसे छिपा नहीं रह सकता।'

'तुम नहीं जानतीं,'—इन्दिरा ने टोककर कहा—'वह वास्तव में अपनी कक्षा की पढ़ाई में ही सीमित नहीं, वह उससे कहीं अधिक जानता है।'

'प्रेम के पागलपन में जब काली लैला मजनूं को स्वर्ग की अप्सरा दिखने लगी थी, तब उसकी साधारण शिक्षा को विद्वत्ता बताना कोई विशेष बात नहीं है। लेकिन तुम्हारा यह खेल मुझे पसन्द नहीं। तुम सिर्फ उससे मिलने-जुलने का एक पथ ढूंढ़ रही हो। इसी के सहारे तुम उसे अपने जाल में आबद्ध करना चाहती हो।'

इन्दिरा मुस्कराई। उसने कहा—'भूलती हो ऊषा देवी! यह स्नेह मेरा नहीं, भैया की अपनी सम्पत्ति है। मैं कभी संकोच नहीं करती। मुझे कहने से कभी भी कोई हिचक नहीं है कि आज तक जितने युवक मिले हैं उन सबमें अधिक यदि मुझे किसी ने प्रभावित किया है, तो वह भगवती है। संकोच में रहकर मैं तुम्हारी अतृप्त तृष्णा को यह सन्तोष दूं कि मेरी तुच्छता को समझ लेने में ही तुम्हारा चातुर्य है, तो मैं यह कभी नहीं होने दूंगी। संकोच एक सज्जनता कहा जाता है, किन्तु मैं इसे असज्जन भावनाओं को उत्तेजित करनेवाला सबसे बड़ा कारण कहूंगी। तुम यदि भैया के ममत्व को नहीं समझ सकतीं, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। यदि तुम समझती हो कि प्रेम एक इतनी आसान बात है, तो मैं यह समझा देना अपना कर्त्तव्य समझती हूं कि तुमने न कभी प्रेम किया है, न उसकी दुरूह प्रेरणा को समझ सकती हो।'

ऊषा के कन्धों तक एक सिहरन दौड़ गई। उसने व्यंग्य से कहा—'प्रेम? प्रेम के विषय में मैं जो सोचती हूं, वह वास्तव में तुम्हारी भावना से परे है। मेरे विचारों को पढ़ लेने की जो तुमने अहम्मन्यता दिखाई है, वह कितनी तुच्छ है, यह वही आदमी अनुभव कर सकता है, जिसने पहाड़ पर खड़े होकर नीचे बहती नदी की क्षीण रेखामात्र को सरकते देखा है। प्रेम?'—वह हंसी—'प्रेम को आसान ही नहीं मैं बहुत आसान मानती हूं। प्रेम पुरुष और स्त्री के मानसिक व्यभिचार का दुष्परिणाम है, क्योंकि प्रम की असली वेदना है, हमारे समाज का युग-युगांतर का निषेध और जो वस्तु निवृत्ति के झूठे स्वरूप की छाया है, वह कभी भी ग्राह्य यहीं हो सकती। तुम्हारा प्रेम तभी तक है, जब तक भगवती तुम्हारे सामने सिर नहीं झुका देता। जैसे ही पराजित होकर वह हाथ पसारेगा, उस दिन तुम्हें सहसा ही स्मरण होगा कि तुम एक धनी की पुत्री हो और प्रत्येक व्यक्ति को तुमसे प्रेम करने का अधिकार नहीं है। तुम्हारी स्थिति में वर्गों का प्रेम है। क्या तुम भगवती से विवाह करने का साहस रखती हो?'

इन्दिरा कठोर हो गई। उसका मुख कुछ खुल गया था, जैसे प्रतिशोध की ऊष्मा से भीतर तक का सौन्दर्य विकृत हो चला था। उसने कुर्सी पर पीछे की ओर ज़ोर देते हुए कहा—'तो विवाह तुम्हारे प्रेम की चरम अवस्था है? बिना विवाह के प्रेम नहीं

हो सकता ?'

ऊषा ने कहा—'मेरे विचार से तो नहीं। प्रेम का आनन्द संसर्ग है, निकट रहना है और उसके लिए विवाह के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।'

'क्यों ?' इन्दिरा ने आंखें तरेरकर कहा—'स्त्री और पुरुष बे-मतलब की पूजा किए बिना साथ-साथ नहीं रह सकते ?'

'उस अवस्था का दूसरा नाम है इन्दिरा देवी ! हम उसे रखैल कहते हैं।' वह उपहास से हंसी, जैसे उसने घृणा के घड़े को फोड़कर सारा गलित पदार्थ बाहर फैला दिया। इन्दिरा थोड़ी देर के लिए चुप हो गई। ऊषा उसे देखती रही। उसे विश्वास हो गया था कि उसने मर्म पर आघात किया था। कौन-सा दुरभिमानी महापर्वत है जिसमें अन्धकार के छिपने के लिए कन्दरा नहीं है ? कौन-सा वृक्ष है, जिसके मूल में उसके सिर की ही छाया नहीं पड़ती। ऊषा उत्तर की प्रतीक्षा में खड़ी रही। इन्दिरा के आनन पर विश्रांत आकुलता थी, मानो वह इन प्रश्नों के लिए कभी भी तत्पर न थी।

उसके लावण्य-विशुद्ध रूप पर विषाद की एक कांपती रेखा भाग चली, जिसे कानों के पास लज्जा ने दो बार उमेठा और छोड़ दिया। क्षण-भर में ही समस्त लाली केवल अधरों में एकत्रित हो गई। उसने दृष्टि उठाकर ऊषा की ओर देखा। देखती रही, मानो वह कुछ समझ नहीं पाती थी। इस लड़की का निर्विकार स्वरूप निर्ममता की कितनी मोटी लोहे की चादर से ढंका है, यह उसके लिए समस्या है, क्योंकि कभी वह कांच की तरह झिलमिलाती है, कभी रूढ़ियों की काई और जंग से एक कठोर प्राचीर बन जाती है। क्यों नहीं होती ऊषा को वह अतृप्त हाहाकार-भरी उच्छृङ्खलता की तृष्णा, जो वक्षस्थल में एक गर्मी बनकर समा जाती है, जो आंखों की सापेक्ष गरिमा को छीनकर उन्हें कमरे के लैंस की तरह निर्जीव कर देती है।

उसने कहा—'मन की हार में यदि मनुष्य को तृप्ति का आभास मिलता है, तो क्या तुम उसे अपनी करुणा नहीं दे सकतीं ? हमारे द्वन्द्व हमारी अपूर्णता के द्योतक हैं, उन्हें अपनी घृणा के आधार पर ठीक कहकर संचित करना आत्मघात करना है, क्योंकि वह हनन नहीं, वह एक अविश्रांत भिखारी की अनन्त दाह-भरी तड़प है।'

ऊषा ने अब की बार आंख फाड़कर देखा। फिर कहा—'सच कहो इन्दिरा। जिसे तुम प्रेम कहती हो, संसार से छिपाती हो, वह क्या तुम्हारे मन की शक्ति है ?'

इन्दिरा ने मुस्कराकर सिर हिलाया। ऊषा ने यह बात ठीक कही थी। उसके विचार में वह एक शक्ति है, तभी तो सारे बन्धनों से मनुष्य ऊब जाता है। बन्धनों के प्रति यह जो घृणा का भाव है यही मुक्ति की परम्परा है। ऊषा ने मानो यह सब समझा। उसने फिर कहा—'यदि तुम इसे शक्ति मानकर कहना चाहो कि वह सर्व-साधारण के लिए शक्ति है, तो यह मेरे लिए स्वीकृत नहीं है। वह शक्ति और कुछ नहीं, आंगिक विलास की अन्तिम अभिलाषा है, आत्मा की परितुष्टि की छलना है, सारे कर्तव्यों को भूलने का बहाना है और उससे बढ़कर अपने स्वार्थों का एकीकरण वास्तव में कहीं और पाना असम्भव है। यह प्रेम जो आगे त्याग का नाटक रचता है, वह व्यक्ति की समाज के आगे पराजय है और उससे बढ़कर झेंप मिटाने का कोई अतिरिक्त साधन भी नहीं है।'

इन्दिरा हंस दी। ऊषा भी। दोनों ने एक-दूसरे को खुली दृष्टि से देखा। कुहासा

फंट गया, किरणें फूट निकलीं। इन्दिरा ने कहा—'ऊषा ! तुम पागल हो। तुम कुछ नहीं जानतीं।'

'नहीं जानती। यही अभिमान यदि तुम्हारी साधना का सबसे बड़ा प्रकाश-स्तम्भ वन सके तब भी मैं कभी नहीं तड़पूंगी। वह दिन भी दूर नहीं है जब तुम चन्द्रमा को पृथ्वी के चारों ओर घूमनेवाला उपग्रह जानकर भी उसमें आग पाओगी और शय्या पर तड़पा करोगी।'

इन्दिरा ने बात काटकर कहा—'ऐसा कभी नहीं होगा। मैं कभी भी मर्यादा का संतुलन नहीं छोड़ सकूंगी।'

'कैसी मर्यादा ?'—ऊषा पूछ बैठी—'शय्या पर कैसी मर्यादा ?'

इन्दिरा उठी और उसने मुड़कर कहा—'यह सब तुम्हें किसने बता दिया ?'

ऊषा ने नाक सिकोड़ी, आंखों की भौंहें तन गईं और फिर छोड़ दीं जैसे तीर छोड़कर प्रत्यंचा ढीली हो जाती है। उसने कहा—'तुम मूर्ख हो।'

इन्दिरा ने अधिक नहीं कहा। वह सिर झुकाकर सोचने लगी। ऊषा ने कहा—'मुझे भय है।'

'किसका ?' विस्फारित नेत्रों से इन्दिरा ने अंकित कर दिया।

ऊषा ने इस प्रश्न को झुककर ऊपर से निकल जाने दिया। इन्दिरा ने हठात् उसके हाथ पकड़कर कहा—'भैया से न कहना।'

ऊषा ने कहा—'केवल भैया ? चाहे किसी का कोई स्वार्थ हो या नहीं। जो सुनेगा उसी को द्वेष होगा। मनुष्य को मूर्खता से भी ईर्ष्या होती है, क्योंकि मूर्खता ही उसकी बुद्धि की सीमा है।'

इन्दिरा ने कृतज्ञता से सिर झुका लिया।

6

लीला ने देखा, लवंग आज स्फूर्ति से व्याकुल हो रही थी। वह चकित-सी देखती रही। लवंग कभी हंसती थी, कभी मुस्कराती थी। लीला ने क्षण-भर को सोचा, कहां है इसमें जीवन की गम्भीरता ? क्या यह ठीक है ?

बिजली की तरह कौंध हुई। आकाश मेघाच्छन्न था। ठण्डी-ठण्डी हवा चल रही थी। अभी-अभी वे दोनों प्रोफेसर मिसरा के घर से आई थीं। प्रोफेसर को लड़कियों पर विशेष दृष्टि रखने के कारण कालेज के लड़के काफी बदनाम करते रहते हैं, किन्तु वह किसी की चिन्ता नहीं करता। विद्यार्थियों के जीवन में उसका एक अपना पहलू है। वह अकेला हो, ऐसी बात नहीं। उसके जैसे अन्य प्रोफेसर भी हैं, किन्तु कोई केवल खुशामदी है, कोई केवल कुचक्र रचनेवाला, कोई केवल गुटबन्दी करनेवाला। प्रोफेसर मिसरा में ये सब बातें हैं। वह सबसे अधिक प्रभावशाली है, क्योंकि सबसे ग्रधिक महत्त्व का उसी की सीमा से उदय होता है। उसकी व्यापकता दूसरों के जीवन

का परिणाम है। वह संगीत में दिलचस्पी लेता है, किसी भी विषय पर कुछ न कुछ बोल लेता है। वह अपनी निर्बलता को सम्मान के कवच में रखता है। अपने अज्ञान को वह सरलता से अपनी पदवी के नीचे ढंक देता है। जब नवीन वस्तुओं की बात होती है तब वह प्राचीन को श्रेष्ठ साबित करता है; क्योंकि उसका दायरा उनके बाहर तिल-भर भी नहीं, इसलिए वह अपनी आयु का प्रयोग करता है; और जब आनन्द का प्रश्न आता है तब वह विद्यार्थियों से एक पग आगे ही रहना चाहता है, क्योंकि उसके पास साधनों का आडम्बर है।

लवंग को आज उसने चाय पर बुलाया था। साथ में ही लीला थी। उसने अपना आतिथ्य उसकी ओर भी बढ़ाया था। लवंग ने कह दिया था—आप निश्चित रहिए। मैं इन्हें अपने साथ ही लेती आऊंगी। लीला ने प्रतिरोध करना चाहा था, किन्तु प्रोफेसर ने कृतज्ञ होकर कहा—मुझे विश्वास है।

उसके चले जाने पर लीला ने कहा—'वाह! मुझे क्यों फांस लिया?'

'क्यों, क्या हुआ?' लवंग ने पूछा। जैसे वह सब कुछ समझकर भी अनजान बन रही थी। लीला ने कहा—'तुम्हें बुलाया था, तुम जातीं।'

'बुलाया तो तुम्हें भी है।' लवंग मुस्कराई। लीला को यह अच्छा नहीं लगा।

उसने कहा—'मैं नहीं जाऊंगी।'

'क्यों?'—लवंग ने उसे फिर हंसकर देखा।

'नहीं जाऊंगी, क्योंकि मैंने अपने मुंह से तो आने को कहा नहीं। दूसरे, प्रोफेसर है कालेज का। घर पर जाने का क्या काम? मैं क्या उसकी नौकर हूं?'

'तो आखिर तुम्हें परेशानी क्यों है?'—लवंग ने उसकी भावना पर प्रहार करते हुए कहा।

'मुझे वह आदमी पसन्द नहीं है। मुझे उसकी सूरत अच्छी नहीं लगती। वह डैडी का दोस्त हो सकता है।'

'मेरी समझ में नहीं आता, आखिर हम लोग बातें क्या करेंगे?' लीला ने पूछा।

'वह अपनी लड़कियों से तुम्हारा परिचय करायेगा।'

'तो इसके लड़कियां भी हैं?' लीला ने उत्सुकता से पूछा।

'हां, दो हैं। तुम अभी इस शहर में नई आई हो न इसी साल? तभी नहीं जानतीं। दोनों इसी कालेज से बी० ए० कर चुकी हैं। बड़ी एम० ए० है शायद। जानती होतीं तो यह न कहतीं।'

'तो मैं उन लड़कियों से जान-पहचान करने जाकर क्या करूंगी? किसी के घर जाना और वह भी इस तरह, मुझे अच्छा नहीं लगता।'

लवंग चुप हो गई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। लीला का रोष वह समझ गई थी।

सांझ की सुहावनी बेला में जब आस्मान में एक तरफ नीली-नीली घटाएं उठने लगीं, लीला गाती हुई अपने बंगले में लॉन पर आ गई और आरामकुर्सी पर अधलेटी-सी गुनगुनाने लगी। उसी समय लवंग ने अपनी मोटर को भीतर लाकर खड़ा किया और दो बार अपनी गाड़ी का भोंपू बजाया। लीला उठी और उसके पास गई।

लवंग ने विस्मय के साथ कहा--'अरे ! तुम अभी तक तैयार नहीं हुईं ?'

'क्यों ? आखिर बात क्या है ?' लीला ने अधिक विस्मय दिखाते हुए प्रश्न किया।

'चलना नहीं है प्रोफेसर के घर ?'

लवंग के प्रश्न से लीला भीतर ही भीतर चिढ़ गई। उसकी बुद्धि पर कुण्ठा की घरघराती आवाज़ गूंज गई। क्यों यह लड़की कुछ आत्मसम्मान नहीं रखती ? अधिक से अधिक फेल कर देगा। इससे अधिक तो कुछ नहीं। फिर क्यों उसकी इतनी खुशामद की जाए ? बड़ा आदमी है तो अपने घर का। हम भी तो किसी से कम नहीं हैं !

लवंग ने उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कहा—'चलो न। मेरे कहने से ही एक बार चलो।'

'क्या होगा जाकर ?'—लीला ने फिर व्याघात डाला।

'जो होगा वह तुम आंखों से देख लोगी। आंखें न होंगी तो कुछ भी नहीं देख पाओगी। क्योंकि वैसे वहां देखने को कुछ भी न होगा। लेकिन तुम काफी ऐसी बातें जान जाओगी जो आज तक तुमने कभी नहीं सोची होंगी। चलो। कह रही हूं चलो। कुछ बिगड़ जाएगा, एक बार मेरी बात मानने में ?'

लीला सोच में पड़ गई। फिर चुपचाप भीतर की ओर चल पड़ी। लवंग ने कहा —'जल्दी आ जाना।'

लीला भीतर जाकर कपड़े बदलने लगी। अनजाने ही उसने शीशे में अपने आपको देखा। देखा कि वह लवंग से कम तो नहीं लग रही है ? याद आया। बैठकर जल्दी से अधरों पर लाली लगाई, आंखों पर जल्दी से सुरमे की हल्की रेखाएं सलाई से खींच लीं और फिर चल पड़ी।

लवंग ने दरवाज़ा खोल दिया। लीला बैठ गई। गाड़ी चल पड़ी। दोनों में से कोई भी नहीं बोला। मोटर जब रुकी, लीला ने देखा, प्रोफ़ेसर बाहर खड़े थे और उनका स्वागत करने की प्रतीक्षा कर रहे थे। लवंग ने मुस्कराकर कहा—'देखिए, ज़रा देर हो गई। आपको व्यर्थ प्रतीक्षा करनी पड़ी।'

प्रोफ़ेसर हंसा, मानो कोई बात नहीं। वे लोग जाकर भीतर बैठ गए।

लीला ने देखा, लवंग मुस्करा रही थी। उसने उसकी ओर देखकर पलकें झुका लीं। उसने धीरे से कहा—'लवंग ! जब हम प्रोफ़ेसर के घर से लौट रहे थे तब तुम हंसी क्यों थीं ?'

'कुछ नहीं, यों ही।'—लवंग की कुटिलता कांपकर गालों पर स्नायविक आलोड़न करने लगी। लीला ने उठकर कहा—'तुम्हें निश्चय ही बताना होगा। प्रोफ़ेसर चालबाज़ है। मैं यह समझ गई हूं, कि उससे ऐंठकर कालेज में नहीं रहा जा सकता। उसकी वे लड़कियां ! उफ़ ! मुझे तो सच कह दूं, इनमें और बाज़ारू औरतों में कोई भेद नहीं दीख पड़ा।'

लवंग हंसी। उसने कहा—'तुमने अभी उनकी मां को नहीं देखा। प्रोफ़ेसर को गम है तो अपनी बीवी का। जो पद उसे उसकी लड़कियां दिला सकी हैं, वह तो तुम देख ही चुकी हो। लेकिन प्रोफ़ेसर की पत्नी कहीं अधिक सफल होतीं। तब प्रोफ़ेसर

कहीं प्रिंसिपल होता। लेकिन कमबख्त दिन-भर पति से लड़ती है कि तुमने दोनों लड़कियों का सत्यानास कर दिया। अब उनका कहीं विवाह भी नहीं हो सकता, क्योंकि वह जाति ही ऐसी दकियानूसी है, जिसमें स्त्रियों को उच्च शिक्षा वर्जित है।'

'उच्च शिक्षा ?'—लीला ने व्यंग्य से कहा—'यही उच्च शिक्षा है ? पैसे के लिए जो स्त्री अपने को बेच सकती है, वह वेश्या नहीं है तो क्या है ? प्रोफ़ेसर मिसरा ने जिस तरह अपनी लड़कियों की इज़्ज़त देकर यह दर्जा हासिल किया है, शायद वह इसी तरह हम लोगों को भी समझता है ? क्यों ?'

लवंग इस प्रश्न के लिए नितान्त अनुद्यत थी। उसने अपनी सीमाओं का प्रसार संकुचित करते हुए कहा—'तुम अभी नादान हो लीला ! संसार में अभी और भी न जाने क्या-क्या होता है।'

'होता होगा।'—लीला ने उपेक्षा से कहा—'मुझे उस आदमी से नफ़रत है, नफ़रत है, क्योंकि वह भला नहीं है। उसका पूरा खानदान हराम पर पल रहा है। अपना मान वेचकर इस तरह सुबह-शाम आराम से खाना कोई कमाल नहीं है।'

लवंग ने सुनकर चौंककर सिर उठाया। उसने धीरज से कहा—'उत्तेजित क्यों होती हो लीला ? हममें से कौन ऐसा नहीं है ? कोई देश का मान वेचता है, कोई समाज का, कोई लड़की का। मैं तो उस दुनिया की सोच भी नहीं पाती जिसमें सवका सम्मान भी हो और सुख भी हो। यदि दुनिया में अकेले रहते होते तो भी सब कुछ अपने मन के ही अनुसार नहीं हो जाता। सुख के लिए त्याग आवश्यक है। यह अपमान नहीं है। मैं अपमान उसे समझती हूं कि साधनहीन होकर हा-हा खाता फिरे। अभिमान यदि है, तो रुपये का, धन का। सम्मान वह है, जो सब कुछ होते हुए भी, करते हुए भी, कोई कुछ कहने का साहस न करे। वड़े-बड़े आदर्शों को चलाने का एक ही उपाय है। वह है धन। तुम एक गरीब का घर नहीं बनवा सकतीं, सेठ करोड़ों का दान देते हैं। कौन नहीं जानता वह धन मजदूरों का खून चूसकर पैदा किया जाता है, धर्मादा कहकर लिया जाता है। लेकिन प्रसिद्धि सेठों को ही मिलती है। संसार उनकी महानता की प्रशंसा करता है और उनकी सारी चालवाज़ियां उनके धन के कारण छिपी रह जाती हैं। वे ही दानवीर हैं, बड़े से बड़े नेताओं से मिलते हैं, सरकार में भी उनकी इज़्ज़त है। फिर प्रोफ़ेसर मिसरा में क्या दोष है ? सैकड़ों आदमी अपनी लड़कियों की इज़्ज़त बचाने के लिए भूखों मरते हैं, लेकिन उससे उनकी हालत नहीं सुधरती। प्रोफ़ेसर को दस आदमी जानते हैं, बीस का काम उसके पैर के नीचे दवता है और कोई कुछ हो, सामने इज़्ज़त ही करता है, कुछ कहने का साहस नहीं करता। दे सकती हो इसका जवाव ? क्यों ? क्योंकि उसके हाथ में अधिकार है। वह चाहे कुछ करे।'

'तो ? तुम्हारा मतलव है कि वह ठीक है ?'

'यह तो मैंने नहीं कहा। लेकिन एक वात अवश्य है। उससे बिगाड़ करके अपनी हानि के अतिरिक्त और कोई परिणाम नहीं। मिलता है, मिले। बुलाता है, वुलाए। हम-तुम एक, मगर गज़-भर के फासले से, और फिर एक वात पूछती हूं—वुरा तो नहीं मानोगी ?'

'नहीं,'—लीला ने हंसकर पूछा।

'वह क्यों बुलाता है, तुम्हें ? हमें ? लड़कों को तो नहीं बुलाता ? उसकी लड़कियां ही दिमागवाली हैं, ऐसा तो नहीं ? हम क्या नहीं कर सकतीं ?'

लीला डर गई। उसने कुछ भी नहीं कहा। मुंह फाड़े अवाक् देखती रही। लवंग ने गर्व से कहा—'समाज में हमारा जितना सम्मान है, उसे पाई-पाई चुकता करा लेना हमारा अधिकार है। हमारी बुद्धिमानी पुरुष की लोलुप मूर्खता का लाभ उठाने पर निर्भर है। नहीं तो कुछ नहीं। संसार में सब अपना स्वार्थ देखते हैं, फिर अपना क्या दोष ? बताओ न ?'

लीला अवसन्नमना-सी बैठी रही। लवंग ने ठीक कहा था। यह गाड़ी तो ऐसे ही चलती जायगी। यह एक अजीब शत्रु है जो डांटता है, फिर भीख मांगता है। यह एक संघर्ष है। दासी भी स्वामिनी है। उसने देखा, लवंग ऐसे मुस्करा रही थी जैसे कुछ भी नहीं, इतनी चिन्ता की क्या आवश्यकता ?

लीला घृणा और भय से खिन्न हो गई। वह सोचने लगी कि अपमान की स्वीकृति की निर्बलता ही यदि त्याग है, तो मनुष्य का सम्मान क्या है, जो युगों से बलिदानों के पत्थरों पर व्यर्थ ही सिर पटकता रहा है।

7

सांझ की सुनहली धूप पेड़ों की फुनगी पर नाच रही थी। आकाश में चंचल बादल खेल रहे थे। वायु के झकोरे हृदय में एक चंचल स्पन्दन भरकर सिहर उठते थे। यमुना अपनी मंथर गति में लहरियों में नवीन स्फूर्ति भरकर लुटा रही थी। कांपते हुए पत्तों में यौवन उत्साह से फहरा रहा था। सुन्दर नीरवता गुनगुनाती हुई वायु में माधुर्य का सलोनापन भर-भर देती थी।

समर चुपचाप बैठा हुआ सिगरेट पी रहा था। कामेश्वर और वीरेश्वर नहर की एक छोटी दीवाल पर बैठे, यमुना का नहर में बहकर आता हुआ पानी देख-देखकर मुग्ध हो रहे थे। वीरेश्वर कहने लगा—'उस अशांति, उस भीषणता की अपेक्षा यह निस्तब्धता कितनी अच्छी लगती है ! मन चाहता है, आज नीरवता में अपनी सत्ता का लय कर दें, जिससे फिर कभी वे विषमताएं, वह अंधकार हृदय को छू भी न पाए। कामेश्वर ! मैंने सुना है तुम पी० सी० एस० का इम्तहान देने इलाहाबाद जा रहे हो ?

कामेश्वर कुछ देर चुप रहा। फिर कहने लगा—'ठीक सुना है तुमने।'

'तुम कामेश्वर ? स्टूडेंट फेडरेशन के हर नेता को इस तरह साम्राज्यवाद के सामने नाक रगड़ते देखकर लोगों के दिल में उनके लिए क्या इज़्ज़त रह जाएगी, सोच सकते हो ?'

'मैं जानता हूं, लेकिन मुझे एक बात बता सकते हो ? कालेज में कौन सोशलिस्ट, कौन कम्यूनिस्ट नहीं है ? इनमें से अट्ठानबे फीसदी ऐसे होंगे जो शायद साम्यवाद की अ आ इ ई नहीं समझते होंगे। लड़कियों में नाम पैदा करने के लिए फासिस्टों

के बारे में जानना ज़रूरी हो गया है। इस दोगलेपन से मुझे नफ़रत हो गई है। जब तक हम जैसे लोग इस नौकरशाही को आकर साफ़ नहीं करेंगे तब तक हिन्दुस्तान का यह ढचरा कभी भी ठीक नहीं हो सकेगा। मुझे दुनिया में बहुत कुछ करना है। असहयोग, अहिंसा से न स्वराज्य मिलेगा, न स्वतन्त्रता। दुनिया गरज रही है और तुम मंत्रों से रौशनी फैला देना चाहते हो।'

'लेकिन साम्राज्यवाद में व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। वहां व्यक्ति एक मशीन का पुर्ज़ा हो जाता है। वहां कोई भी एक काम के लिए ज़िम्मेदार नहीं है। है तो सिर्फ़ वह तरीका। तुम इन बदमाशों के गिरोह में इकट्ठे हो जाओगे?'

कामेश्वर मुस्करा उठा। वीरेश्वर ने सुना, वह कह रहा था—'हम जिस स्तर के प्राणी हैं, वह मध्य वर्ग है, जो रुपये वालों में भी है और गरीबों को भी छूता है। मैं अपने मुल्क से पहले अपने घर को संभालना चाहता हूं। जानते हो, मैं अपने घर का वारिस हूं और सबसे ज्यादा ज़िम्मेदारियां मेरे ऊपर हैं। बोलो, जिन्होंने मुझे पाला है, इतना बड़ा किया है, अब मैं इन कामरेडों की तरह पायजामा पहनकर डोलूं और घरवाले अपनी इज़्ज़त को धूल में मिलाकर फाकाक़शी किया करें? वक़्त ही ऐसा है। आदमी को हमेशा उसकी परिस्थिति चलाती है और मैं कोई नेपोलियन तो नहीं कि खुद उनपर हकूमत चलाने लगूं।'

'नेपोलियन'—समर ठठाकर हंस पड़ा—'नेपोलियन क्या कोई बहुत बड़ी चीज़ थी? बच्चा था बच्चा।' उसके बात करने के ढंग से दोनों चौंक उठे। मानो चूहा पहाड़ के सामने जाकर चिल्ला उठा था—'मैं छोटा हूं' और पहाड़ से वही प्रतिध्वनि सुनकर हंस उठा था कि, 'मैं उससे छोटा हूं, तो क्या? वह भी तो किसी से छोटा है।'

चश्मे के पीछे से उनकी आंखें चमक उठीं। वीरेश्वर गौर से देखता रहा और उसके मुंह से अचानक निकल गया—'आज चाय के प्याले में यह तूफ़ान कैसे आ गया?'

कामेश्वर ठठाकर हंस पड़ा किन्तु समर के गाम्भीर्य ने उसकी हंसी को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। वह देख रहा था मानो वे दोनों आरपार थे और उसकी दृष्टि में उनकी उपस्थिति कोई अड़चन नहीं डाल रही थी। कामेश्वर ने एक सिगरेट जलाकर धुएं को ऊपर की तरफ छोड़ा। तीनों चुप हो गए। धूप जा चुकी थी। अंधियारे की धूमिल पलकों का झुकना प्रारम्भ हो गया था।

वीरेश्वर ने मौन तोड़ दिया। उसने कहा—'क्या कहूं कामेश्वर! फिर वही चुनावों का ज़ोर है! सज्जाद, कमल और नरसिंह प्रेसीडेंटशिप के लिए खड़े हुए हैं। मैं नरसिंह को समझा चुका हूं कि वह बैठ जाए। मगर वह राज़ी नहीं होता। हरी दोनों तरफ का खेल खेल रहा है। रानी रैनोल्ड के पीछे मैक्सुअल उससे खार खाए बैठा है।'

समर ऐसे मुस्कराया जैसे कमरे में दूध का बर्तन खुला देखकर किसी को पास न पा, बिल्ली होंठों पर जीभ फेरती है। 'वीरेश्वर'—समर कहने लगा—'ज़िन्दों का भी ब्याह होता है, गुड़ियों का भी; हर्ज ही क्या है? तुम कम्यूनिस्ट हो, अब हिन्दू-

मुसलमान करके चुनावों में अपना पासा आज़मा रहे हो ? कला भी तो क्या ही लड़की है ।'

'हां,'—कामेश्वर पूछ उठा—'तुम्हारी कला के क्या हाल हैं ?'

वीरेश्वर गम्भीर हो गया। उसने दोनों को जलती हुई आंखों से देखा । 'हां,' —उसने कहा—'कला से दोस्ती करके मुझे शर्माने की कोई ज़रूरत नहीं है और चुनावों के बारे में मैं जानता हूं कि वह ज़िन्दगी में कुछ नहीं, लेकिन तुम भी तो अपना वक़्त काटने के लिए सिगरेट पीते हो ।'

समर मुस्करा उठा । वह बोला—जैसे शब्द उसके मुख से फिसल गये—'खा-पीकर जब नवाब बैठते हैं, तो उनके लिए वक़्त काटना दुश्वार हो जाता है ?'

बात कुछ कड़ी थी । विषमता का उदय हो सकता था। कामेश्वर ने बात बदल दी ।

'हरी तुम्हारा पुराना दोस्त है, वीरेश्वर ! क्या वह तुम्हारे समझाने से नहीं मान सकता ?'

मगर समर के दिमाग का कीड़ा उछलने लगा था। वह कहने लगा—'एक ओर मुहम्मद गोरी बैठता है, दूसरी तरफ पृथ्वीराज। काश, मैकाले से मुलाकात होती तो आज वह कितना खुश नज़र आता । ज़िम्मेदारियों का कितना लाजवाब फायदा उठाया जाता है । यहां से रोशनी फैल रही है, यहां इंग्लैंड की डेमोक्रेसी की पूरी झलक है ? कोयला एक दिन केतली से कह रहा था, बड़ी काली है तू ! हरी क्या ? काम रुकने पर ख़ुदा को भी टाल दिया जाता है। यह मकड़ी का जाला ज़हर से भिगोया जा चुका है, कोई इसमें से बाहर नहीं जा सकती, कैसी भी मक्खी क्यों न हो !'

कामेश्वर चुपचाप सिगरेट पीता रहा । समर उठकर टहलने लगा। उसके विचित्र स्वरूप को देखकर वीरेश्वर का क्रोध क्षण-भर में ही विलीन हो गया। मनुष्य कुछ एक वस्तुओं को, चाहे वह मनुष्याकृति की ही क्यों न हो, अपने से तुच्छ समझता है। उसने उसे कोई जवाब नहीं दिया । दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा—देखा कि दोनों की दृष्टि में मानो अथाह व्यंग्य अट्टहास कर रहा था । एक विलास-वैभव, विजय से लदा अकबर था, दूसरा बेघरबार, भूखा, मगर आन पर अड़ा महाराणा प्रताप। जैसे किरणों को बांधने के लिए बादल ने सिर उठाकर गर्जन किया था, मगर वह पानी की तरह पिघल उठा । और दोनों आंखें शून्य से टकराकर लौट आईं । दोनों को अपने ऊपर विश्वास था । जब दोनों ने मुड़कर देखा, कामेश्वर यमुना के पानी को चुल्लू में भर-भरकर पी रहा था । इन्हें अपनी ओर देखते देखकर वह हंसा और फिर पानी में हाथ हिलाकर मुंह पोंछता हुआ लौट आया।

'चला जाए, क्यों ?'—उसने पूछा ।

'हां, अंधेरा तो हो चला है ।'

तीनों लौट चले । खेतों के बीच में कोई बैठा हुआ गा रहा था । उस गीत से तीनों आकर्षित हो चले । स्वर एक स्त्री का था और वह कण्ठ एक परिष्कृत कंठ था। कामेश्वर चुपचाप उस ओर फिसलता-सा बढ़कर एक झाड़ी के पीछे छिप गया । उसके

पीछे ही वे दोनों भी थे।

उन्होंने देखा, प्रो० मिसरा अपने हाथों पर सिर धरकर उदास बैठा है। लवंग बैठी-बैठी मिट्टी में कुछ रेखाएं बना रही है और लीला गा रही है। वह गीत फूलों से लदे सुरभित वृक्ष की कोकिला के लिए करुण पुकार थी। जब वह गीत समाप्त हो गया, प्रोफेसर ने सर उठाया। लवंग के होंठों पर एक कुटिल मुस्कराहट छा गई।

'खूब गाती हैं आप!'— प्रोफ़ेसर ने गम्भीर नयनों से देखते हुए कहा, मानो अपने गुबार को उसने दबा लिया था। लीला समझती थी, मगर अल्हड़पन उसके जोड़ों में अठखेलियां कर रहा था। आग बुझने को आई थी, मगर राख की गर्मी अब भी बाकी थी।

लवंग मुस्करा उठी। उसने कहा—'गाती कहां है लीला, जाने कितने दिलों पर अंगारों का नर्तन देखती है।'

और वे सब हंसे। प्रोफेसर ने चुप होकर कहा—'आप पढ़ाई में भी तेज़ हैं, गाने में भी···'

लीला लाज से लाल हो उठी। वह समझती थी। यह एक इशारा था कि यूनिवर्सिटी की कितनी बड़ी हस्ती से वह बात करने का गौरव प्राप्त कर रही है। जो सिनेटर है, जो उस पार्टी का है, जिसने तमाम विश्वविद्यालय को काबू में कर रखा है, जो चाहे जिसे नौकरी दिला सकता है, जो चाहे जिसका जीवन शिक्षा-विभाग में नष्ट कर सकता है और जो ओहदे और रुपये के बल पर चाहता है लड़कियों को तितली बनाकर खिलाए, मगर जिसकी उम्र साथ नहीं देती···

लीला ने सिर उठाकर देखा और आज भी वह इसी सिलसिले की शुरुआत के रूप में इन दो लड़कियों को लाया था। यह वह धनुष था जो बाण छोड़कर एक बार टंकार से अपनी विजय घोषित करता था।

प्रोफेसर मिसरा अपने विषैले जीवन से स्वयं ऊब उठता था। अपने घर के दकियानूसी वातावरण से वह उतनी ही नफरत करता था जितना अपनी पार्टी के लोगों से। आज वह ऐसी अवस्था में था कि जब दस आदमी उसका मान करते थे और साम्राज्यवाद का घुन लगा हुआ वह प्रतीक शराबी की जलती हुई पिपासा को किसी न किसी तरह तृप्त कर लेना चाहता था। वह जानता था, लड़कियां उससे घृणा करती हैं और उसके सामने विरुद्ध बोलने का साहस उनमें नहां है। भूखी लोमड़ी कच्चा या पक्का कैसा भी मांस हो, छोड़ना नहीं चाहती थी।

लवंग को कभी सन्नाटा पसन्द नहीं आता। वह नहीं चाहती, लोग आंखों में बातें किया करें कि कोई उन्हें समझे ही नहीं। वह कुछ कहना ही चाहती थी; मगर पास में कोई पगध्वनि सुनकर वह चुप हो गई और उन्होंने बड़े विस्मय से देखा, कामेश्वर, वीरेश्वर और समर ऐसे चले जा रहे हैं जैसे उन्होंने इन्हें देखा ही नहीं था।

प्रोफ़ेसर मिसरा उन्हें देखकर एक बार तड़प उठा, मगर वह फौरन ही पुकार उठा—'अरे! उधर कहां जा रहे हैं आप लोग? आइए, आइए!'

तीनों ने बड़े आश्चर्य से मुड़कर देखा और उधर ही मुड़ गए।

यह एक विचित्र मिलन था। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में एक ही समय में भिन्न-भिन्न विचार आए और परिस्थिति की समानता के कारण वह अपने आप समान रूप से ही प्राय: बदले, क्या है जो ये यहां बैठे हैं, ये आ कहां से गए और यह उलझन ठोस होकर उसके दिमाग से टकरा उठी—अब ? फिर ?

प्रोफ़ेसर हंसा। उसने कहा—'मुझे उम्मीद थी कि कालेज में अब भी कुछ कवि-हृदय होंगे। बहुत दिन पहले, जब मैं पढ़ता था, ऑक्सफोर्ड से लोग मुझे घूमने का इतना शौकीन देखकर शैली कहा करते थे।'

वीरेश्वर ने उसी लहजे से कहा—'साहब, मैंने आपसे कुछ भी नहीं कहा। मेरे मामाजी जब कैम्ब्रिज में थे तब उनको भी यही शौक था, लेकिन उन्हें लोग डोनक्विगज़ोट कहा करते थे।'

उठते हुए हास्य के बीच में ही प्रोफ़ेसर समझ गया कि यह मामाजी कोई कल्पित व्यक्ति हैं। शायद अनातोले फ्रांस के पुतीया से भी कम अस्तित्व है इनका, मगर इस समय वह रावण से भी ज़्यादा बलवान् बनकर अचानक ही पैदा हो गए थे। किन्तु वह सात समन्दर पार जाकर, दुनिया को बेवकूफ बनाकर, व्हिस्की पीकर दुआ करनेवाले अंग्रेज़ों के सामने दुम हिलाकर अपने नसीब खोल चुका था, वह भला इस मामूली बात से क्यों विचलित होने लगा। उसने वीरेश्वर को ऐसे देखा जैसे—बस !

न इन लोगों ने ही कुछ पूछा, न उन्होंने ही कुछ कहा। मिलन एक रहस्य बनकर हृदय को कचोट उठता था। प्रोफेसर चाहता था, बात साफ़ हो जाए और फिर सोचता था, ये लड़के हैं ही क्या चीज़ ?

अंधकार का आंचल फहरने लगा था। हवा और ठण्डी हो गई थी। लवंग उठकर खड़ी हो गई। सब लौट चले। कोई दो-ढाई सौ गज़ की दूरी पर एक कार खड़ी थी। लीला स्टीयरिंग व्हील पर जाकर बैठ गई। लवंग बिना पूछे ही उसकी बगल में जा बैठी। लीला ने कहा—'आप लोग आइए न ?'

तीनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। मगर निर्विकार-सा देखता रहा। कामेश्वर के भीतर उत्सुकता सुहाग का घूंघट खोल चुकी थी। वीरेश्वर मुस्करा उठा। रात आ चली थी। सुदूर शहर की बिजली की बत्तियां चमक रही थीं। आसमान में तारे बिखरे हुए थे। कामेश्वर सोच रहा था कि उन लोगों ने बुलाया, हमने नमस्ते तक नहीं किया और उसके बाद समझ में ही नहीं आता, जो हुआ, वह क्या था ? किन्तु वह हो चुका था और लवंग जो इस तरह लीला के बगल में जा बैठी है, क्या इसमें प्रोफ़ेसर का मूक अपमान नहीं है। फिर भी प्रोफेसर बैठ चुका था। जो धारा अखण्ड वेग से पहाड़ी पर से लुढ़क चली थी, वही अचानक एकदम ही ऐसी टुकड़े-टुकड़े होकर बहने लगी ?

वीरेश्वर बेबस-सा सिर झुकाए था। सहसा वह बोल उठा—'आप लोगों को तकलीफ होगी !'

लवंग ने आश्वासन दिया—'आइए न, तकल्लुफ क्यों आखिर ?'

'जगह भी तो नहीं होगी,' और उसने शंकित नयनों से प्रोफेसर की ओर देखा।

प्रोफेसर गम्भीर था। गम्भीर·· जैसा कोई बर्फीला पहाड़ होता है। उसने परिस्थिति को समझ लिया। ये लड़के पीछे से कुछ की कुछ अफवाह उड़ा सकते हैं और इन लड़कियों से भी इनकी अभी कोई खास जान-पहचान नहीं मालूम देती। वह बोला—'जगह तो करने ही से होगी।'

वीरेश्वर आगे बढ़कर प्रोफेसर की बगल में जा बैठा। लाचार, बाकी दोनों भी किसी तरह जगह करके बैठ गए। गाड़ी चल दी।

ऊंची पहाड़ी पर दिन-भर सैर करके जब लौटते वक्त ढाल पर मोटर लुढ़कती है तब यौवन एक शान्ति और तृप्ति से भरने लगता है, एक अनबूझ शिथिलता छाने लगती है। वही इनके हृदयों में खेल रही थी।

लीला एक धनी की लड़की थी, लवंग उससे भी अधिक। लीला में धन का उतना मद न था जितना लवंग में। लवग जीवन को समझकर अपने-आप मानो नई उलझनें पैदा कर रही थी और उसे दुरूह चक्करों में घूमना अच्छा लगता था। वह बन्धन नहीं चाहती थी, किन्तु उसकी स्वतन्त्रता में गुलामी और आज़ादी का कोई फर्क ही न था। इस समय जो ये पीछे बैठे हैं, इनमें कामेश्वर सबसे सुन्दर है। वह साफ भी है और यौवन के पौरुष की उसमें एक प्रकार की गन्ध है, जो स्त्री चाह सकती है। वह मुड़कर बैठ गई। कामेश्वर की ओर देखकर उसने कहा—'उस दिन इन्दिरा ने जो आपसे परिचय कराया उसके बाद फिर आप कभी मिले ही नहीं।'

कामेश्वर सोते से जाग उठा। वह जवाब देने की कोशिश में एक वार लवंग की ओर दृष्टि उठाते ही सिहर उठा। यह दृष्टि नहीं थी, अंगारों का इतिहास था। प्रोफेसर अधमुंदी आंखों से ऊंघता हुआ सिगरेट पी रहा था। हवा का झोंका आया और सिगरेट का धुआं उसकी आंखों में चला गया। उसकी आंखें सहसा ही मिच गईं और देखने की इच्छा रखते हुए भी वह देख न सका। वीरेश्वर ने घड़ी देखी और अपने हाथ को कामेश्वर की जांघ पर रखकर हल्के से एक चिकोटी काटी। कामेश्वर कहने लगा—'इस साल एक तो वक्त नहीं मिलता; फिर कुछ कालेज में आने की तबियत भी नहीं करती। बस, वक्त पर आना और वक्त पर चले जाना। कभी-कभी पुराने दोस्तों से मुलाकात हो जाती है।'

लवंग हंस पड़ी। उसकी हंसी में चुलबुलापन था, जो फ्रांस की मांसल नाचने वाली लड़कियों में। उसके गालों पर गढ़े पड़ते थे, जैसे यौवन का एक अथाह प्याला हो, जिसमें उन्माद और रूप का विष भरा रहता था। कामेश्वर की इच्छा एक बार शायद उसे पी लेने की भी हुई हो। पर वह एक ऐसी नागिन थी, जिसका कोई ठीक नहीं था। कामेश्वर जानता था कि मस्त हथिनी किस तरह काबू में लाई जाती है, बिचकती हुई घोड़ी को किस तरह राह पर लाया जाता है, मगर वे बुर्जुआ लड़कियां! साम्राज्यवाद को ये बुरा समझती हैं, मगर रेडक्रास के फंड के लिए नाच-गा सकती हैं, चाहे वह साम्राज्यवादी युद्ध के लिए ही चन्दा क्यों न हो रहा हो। समाजवाद भी ठीक है, मगर अपनी गरीबी नहीं। पार्टियों में इश्क भी लड़ाती हैं और सतीत्व का भयंकर पर्दा भी इनपर पड़ा रहता है। यह हिन्दुस्तान का अजीब वर्ग था, जहां स्त्री न पूर्व की थी, न पश्चिम की; जहां आज़ादी और गुलामी का ऐसा विचित्र सम्मेलन हुआ था

कि न कोई आगे जाने की राह थी, न पीछे हटने की ही। अपने भीतर ही एक ऐसी कशमकश थी कि निरुद्देश्य, दिन-पर-दिन समय का कुछ पुरानी की जगह नई रूढ़ियों में कट जाना आवश्यक-सा था।

लवंग सचमुच ही ऐसे देखती थी जैसे मीनार पर से शहज़ादियां जनता की सलामी लेकर मुस्कराती थीं। शहज़ादियां जो अधिकार की खोखली नींव पर अपनी परवशता, अपनी गुलामी की छत के नीचे दबी रहती हैं और शराब के नशे में जीवन की वास्तविकता को बहला देने का प्रयत्न करती हैं।

अंधेरे में बिजली के खम्भे सर्र-सर्र पीछे रह जाते थे। मोटर तेज़ी से भाग रही थी। यह ऐसा भोलापन था जो हृदय को उन्मत्त कर देता था। वे सब चुप थे, जैसे कहने को संसार में आज किसी के पास कुछ नहीं था। जिस निरुद्देश्य गति में वे बहे जा रहे थे, आज वह उनके भीतर ही हाहाकार कर रही थी।

8

मोटर रुकने की धीमी घरघराहट से सब में एक उद्यत उत्सुकता फिर छा गई। कामेश्वर और समर तो क्या, प्रोफेसर और लवंग तक तय नहीं कर सके कि मोटर सहसा ही चौराहे पर क्यों रुक गई। लवंग ने झुककर देखा, सिपाही ने कोई हाथ नहीं दिया था। किसी बंगले में से रजनीगंधा की मादक सुरभि इठलाती हुई हवा को गुदगुदा रही थी। चौराहे का प्रकाश हल्का-सा इन तक पहुंच रहा था। क्षण-भर के लिए वीरेश्वर ने समझा कि शायद पैट्रोल समाप्त हो गया है या फिर कोई खराबी हो गई है। किन्तु जब लीला ने बड़ी निश्चिन्त खुमारी से एक मरोड़-भरी अंगड़ाई ली तब सबने उत्कण्ठा से उसकी ओर देखा।

प्रोफेसर ने धीरे से कहा---'क्या हुआ लीला ?'

'हां, रोक क्यों दी तुमने ?'—लवंग पूछ बैठी।

लीला ने उत्तर दिया, मानो कहीं दूर से किसी भूले हुए शिकारी ने आह ली थी—'यहां से प्रोफेसर साहब को दाहिनी तरफ जाना होगा, आप लोगों को बाईं तरफ, तुम्हें उस तरफ और मुझे सामने। चारों को थोड़ा-बहुत करके एक ही सा रास्ता तय करना है। इसी से मैंने गाड़ी को रोक दिया है और अगर कोई और हुक्म हो तो वह सुनाओ।'

वीरेश्वर मुस्कराया। प्रोफेसर ने उसे देख लिया, किन्तु कामेश्वर तब तक उतर चुका था और उसके पीछे ही समर था। वह भी उतर पड़ा और तीनों ने हाथों को उठाकर कहा—'आपने जो तकलीफ की उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद, बाई-बाई...'

लीला का हृदय भीतर ही भीतर चीत्कार कर उठा। अपना उज्ज्वल चरित्र इन लड़कों को दिखाने को जो उसने वृद्धप्राय प्रोफेसर की इस प्रकार उपेक्षा-सी की थी

उसका मतलब ही उल्टा साबित हो गया। वह चाहती थी, प्रोफेसर उतर जाए और बाद में वह कामेश्वर से कुछ पूछ सके, किन्तु लड़कों की समझ में इतना भी नहीं आया। उल्टा यही समझा गया है कि वह प्रोफेसर को जो घर छोड़ने जाना चाहती है उसके लिए इन लोगों का उतर जाना ही ठीक है।

लीला के हृदय में इन लोगों के प्रति कुछ विशेष ममत्व नहीं था। जो कुछ है वह यह कि प्रोफेसर वृद्ध है और यौवन यौवन है, दोनों का कोई मुकाबला नहीं है। लीला को ऐसा महसूस हुआ जैसे अपनी हार बचाने के लिए कोई साथी को फुटबाल पास कर दे और साथी अनजाने ही अपनी ही पार्टी पर गोल करवा दे।

प्रोफेसर ने दरवाज़े को बन्द कर दिया और चलते हुए इंजिन की घड़घड़ाहट में वह 'बैंग' का शब्द ऐसे सुनाई दिया मानो आज उसपर सब अट्टहास कर उठे थे कि हां जी, उसके पास पैसा है, अधिकार है और तुम लड़कियों को इससे ज़्यादा चाहिए भी क्या ?

'मिस्टर कामेश्वर !'—लीला पुकार उठी।

कामेश्वर को विश्वास नहीं हुआ। फिर भी उसने कहा—'जी।'

'आप कहां जा रहे हैं ?'

'जी, घर की ओर।'

'आप तो शायद पार्क के आगे ही रहते हैं ?'

'जी हां।'

'आइए आप, मैं भी तो उधर ही जाऊंगी।'

कामेश्वर ने केवल अविश्वास करने के लिए सुना। शब्द उसके हृदय में एक अतृप्त हलचल भर उठे, ये उसके इतने पास होकर भी मानो बहुत दूर बोले गए थे और वह यह तय नहीं कर पाया था कि इंद्रजाल-सा यह क्या है। उसकी आंखों में संकोच अपनी भुजाएं फैलाकर पुकार उठा। समर और वीरेश्वर अवश्य एक विद्वेष से भर उठे होंगे और प्रोफेसर मिसरा ? मक्खी का छत्ता छू देने के बाद लीला देख रही थी कि मक्खियां अब आईं, अब आईं। वह यह बताना चाहती थी कि वह निष्पाप है, निष्कलुष है और इस सतीत्व के भारी बोझ ने, हिन्दू स्त्री के भारी अंगारे की दहक ने उसे उन्मत्त कर दिया था। किन्तु अनजाने में लगे एक दाग को मिटाने को उसने कितनी विकट परिस्थिति को अपने सर पर ले लिया था। उसने एक-एक करके सबको देखा। वैसे मामूली तौर पर कोई बहुत बड़ी बात न थी। किन्तु परिस्थिति का यह मोड़ कितना भयानक था। हां, एक धूमिल घृणित-सा अंधकार अपना नग्न वक्षस्थल दिखा रहा था। वह यह भी समझती थी कि कामेश्वर के प्रति उसने जो पक्षपात दिखाया है, वह उसी की निन्दा में समाप्त नहीं होगा, वरन् कामेश्वर नाम का बकरा प्रोफेसर जैसे चीते के सामने फंस जाएगा, जो सीनेटर है, जो कम नम्बर दिलाकर फेल करा सकता है, जो उस पार्टी में है जिसमें लोगों ने यूनिवर्सिटी को खाने-कमाने की एक बाज़ारू व्यापारी चीज़ समझ रखा है, जो···

प्रोफेसर चुप था। उसने तब से अब तक कुछ नहीं कहा था और अब भी उसने कुछ नहीं कहा, मानो यह मौन उसकी उस घोर अस्वीकृति और घृणा का एक क्षीण

परिचायक था।

'बात यह है,'—लीला ने कहा—'मैं प्रोफेसर साहब को उनके घर छोड़ दूंगी और आप दोनों का होस्टल पास ही है। लवंग मेरे साथ मेरे घर जाएगी और उधर ही से मैं आपको छोड़ दूंगी।'

कामेश्वर मोटर की ओर बढ़ा—'आप इतना तकल्लुफ क्यों कर रही हैं! मैं तो यहीं से घर जाऊंगा, पैदल ही।'

किन्तु वह मोटर में बैठ चुका था। वीरेश्वर और समर ने कहा—'नमस्ते!'

लीला और लवंग ने हाथ जोड़ दिए। उनके जाते ही लवंग कह उठी—'अच्छा लीला, प्रोफेसर साहब को छोड़कर मुझे भी मेरे बंगले पर छोड़ती चलो। मुझे अचानक ही याद आ गया है, आज मेरे घर कुछ लोग आए होंगे।'

कामेश्वर के प्रति जो उसके मन में एक भाव उदय हुआ था उसका इस प्रकार अपहरण देखकर उसकी असन्तुष्ट नारी वही आदिम स्वरूप धर उठी जो युगान्तर से नर को एक गम्भीर रहस्य बनकर उलझा रही है। यह एक ऐसा हल्का-सा धक्का था जिसने प्रोफेसर के सामने ही लीला को कामेश्वर की गोदी में ढकेल दिया था। लीला समझ गई। वह लवंग को पहचानती थी। लवंग ने उसे 'क्यों' तक कहने का अवसर नहीं दिया था, किन्तु जहाज टूट चुका था, लहरों से लड़ने की अपेक्षा लहरों में चुपचाप बहते रहना अच्छा था। उसने केवल कहा—'अच्छा।'

यह एक ऐसा उत्तर था जिसने तीनों को चौंका दिया, मानो यही तो लीला चाहती थी।

अंधकार प्रगाढ़ हो चला था। गंधित नारियों की भुक्ता वायु कामेश्वर में एक अपूर्व विलास भर रही थी। वह एक अधिकारमत्त के पास बैठा था, किन्तु वह युवक था और जैसे यह एक बहुत बड़ी दलील थी जो नीचे दबे प्रोफेसर में अधिकाधिक क्रोध भर रही थी। मानो ब्रिटिश साम्राज्यवाद सेंट हेलना के बंदी नेपोलियन के गर्जन को सुनकर केवल मुस्करा उठा था।

लवंग फिर मुड़कर बैठ गई और प्रोफेसर से बोली—'आपको कुछ तकलीफ तो नहीं हुई?'

प्रोफेसर तैयार नहीं था। वह चौंककर बोल उठा—'कोई बात नहीं। वैसे चहल-पहल, नई उम्र का शोर है, सब ऐसे ही होता है।'

किन्तु कामेश्वर सुन सका कि सब ऐसे ही हुआ था। वह चौंक उठा कि यह उससे किसने कहा, किन्तु वह भूल गया था कि लीला के प्रति उसके हृदय में जो सन्देह-भरा आह्लाद उमड़ रहा था, यह उसकी गूंज थी।

जो प्रोफेसर नहीं चाहता था वही हो गया। उसका घर आ गया और उतरना उसके लिए आवश्यक हो गया।

तीनों ने कहा—'नमस्ते!'

'नमस्ते'—कहकर जब प्रोफेसर मुड़ा, उसने सुना, लीला कह रही थी—'क्षमा कीजिएगा, यदि कोई कष्ट हुआ हो।

'जी नहीं, कष्ट कैसा?'

प्रोफेसर अपने बगीचे के पास पहुंच चुका था। लीला ने गाड़ी फिर चला दी। लवंग अब मानो स्वतन्त्र थी। वह अच्छी तरह मुड़कर बैठ गई। उसने कामेश्वर की ओर देखा और एक कुटिल हास्य उसके अधरों पर नाच उठा, मानो लहरों पर प्रभात की किरण थिरक उठी हो। उसके गालों के गढ़े मानो वैभव के भौंरों का रूप के फूल पर अनन्त गुंजार था। कामेश्वर बेसुध-सा देखता रहा और देखती रही इन सबको लीला भी अपने सामने लगे शीशे को टेढ़ा करके, जिसे इन दोनों में से कोई भी न जान सका।

लवंग ने कहा—'मिस्टर कामेश्वर, क्या कालेज में अब आपका कोई दोस्त नहीं रहा?'

'नहीं'—कामेश्वर ने कहा—'हैं कुछ, मगर जाने क्यों अब मन नहीं लगता किसी बात में। चाहता हूं कि अब इन सब बातों को भूल जाऊं, फिर भी कुछ ही दिन तो हैं। होता है, हो रहा है, और होता ही रहेगा।'

उसने एक आह भरी। लवंग फिर मुस्कराई। उसने एकदम पूछा—'तो आप शादी क्यों नहीं कर लेते?'

कामेश्वर बिलकुल नहीं चौंका। वह साफ बात थी। उसका जवाब भी उतना ही साफ हो सकता था, किन्तु रहस्य-भरी बातों से वह कांप उठता था।

'आप, अगर मैं ठीक बता दूंगा तो, बुरा मान जाएंगी।'

'जी नहीं, बताइए आप!'—लवंग ने हठ-सी की।

कामेश्वर ने धीमे शब्दों में कहा—'मैं बंधना नहीं चाहता; चाहता हूं, आज़ाद रहूं। नारी एक विलास है, किन्तु उसकी परवशता उसका सबसे बड़ा अधिकार है। मैं किसी के अधिकार में नहीं रहना चाहता।'—वीरेश्वर था नहीं, यही अच्छा था; अन्यथा कामेश्वर जानता था कि वह यही उत्तर देता कि जिसे तुम आज़ादी समझते हो वही सबसे बड़ी गुलामी है।

लवंग ने उसे विस्मित नयनों से देखा कि मानो यही तो वह सुनने की आशा नहीं करती थी। किन्तु हृदय की बात आंखों तक नहीं पहुंची थी। मन कहता था, यह कोई नया उत्तर नहीं है। अपनी निर्बलता को छिपाकर धोखा दे लेना क्या ऐसा सहज है? यह एक प्रकार से नारी के अनजाने सोए अभिमान को ठोकर मारकर जगा देने का प्रयत्न था कि जाग और मुझे ऐसा डस कि तेरे ज़हर की लहरों में आजन्म-आमरण तड़पा करूं। उसने कामेश्वर की ओर ऐसे देखा, मानो तुम महान् हो, किन्तु भीतर से वह जानती थी कि इसे हराना बहुत ही सहज है, यह एक जली हुई रस्सी की दयनीय ऐंठ है।

किन्तु उसने कहा—'नारी को यदि बन्धन ही मानते हैं, तो आपका स्वातन्त्र्य उसके बिना टिक भी तो नहीं सकता।'

'क्यों नहीं,' कामेश्वर सतर्क हो गया, 'युगान्तर से पुरुष ने नारी की पूजा की है, मैं इसे ही उसकी सबसे बड़ी भूल मानता हूं। स्त्री में कोई विशेषता नहीं होती...'

कहने के साथ ही कामेश्वर झेंप गया। लवंग उसकी ओर अपने मांसल कन्धे पर अपने चिबुक को धरे ऐसी मादक नशीली आंखों से धूमिल अगरुधूम-सी झूलती अलकों

के बीच से देख रही थी कि यह बात तुम क्या सचमुच दिल से कह रहे हो ? और कामेश्वर सकपका गया कि झूठ पकड़ा गया था।

उसने फिर कहा—'लोग कहते हैं, नारी रहस्य है। रहस्य है, मैं इसे नहीं मानता। हां, इतना मानता हूं कि अपनी क्षुद्र बुद्धि के कारण वह उलझन-सी होती है, जिसे पुरुष यदि सुलझाने की मेहनत न करके कैंची से, कठोर होकर काट दिया करे तो वह बहुत अधिक निश्चित हो जाए।'

लवंग हर्ष से पुलकित हो गई। अब वह करारा जवाब देगी, किन्तु तभी लीला ने एकदम गाड़ी रोक दी और लवंग का घर आ गया था। मन ही मन में वह लीला पर कुढ़ गई। जब शिकार अपनी सीमा में था तभी किसी ने खुटका करके उसे दौड़ा दिया और शिकारी कन्धे पर भरी बन्दूक धरे तड़प उठा। वह उतर पड़ी, किन्तु उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ।

'अच्छा लीला, अच्छा मिस्टर कामेश्वर, गुड नाइट !'

दोनों ने उसे जवाब दिया। लवंग दो पग चली और फिर मुड़कर बलात् कह उठी—'मैं चाहती हूं, कि रात अच्छी कटे।'

वह चली गई। लीला और कामेश्वर, अंधेरा और नीरवता, अपमान और व्यंग्य, सब क्षण-भर के लिए विक्षुब्ध हो उठे। लीला ने कहा :

'आइए, आप आगे आ जाइए।'

जब मोटर तेज़ी पर आ गई, कामेश्वर लीला की बगल में बैठा एक अजीब उलझन में पड़ गया। यौवन था, इसको काट देना—कहना सरल था, वैसे कितना कठिन था !

'प्रोफेसर ने बुरा तो न माना होगा ?' कामेश्वर ने कहा—'हम लोग बिना बुलाए मेहमान आ गए थे।

लीला ने एक ठण्डी सांस ली। आखिरकार, एक बात तो सीधी-सादी है ! वह हंसी।

'क्यों, बुरा क्यों माना होगा ? मेरे खयाल से ऐसी तो कोई बात नहीं हुई।'

'नहीं, हम लोग आ गए और आप लोगों के एकान्त में बाधा पड़ गई।'

लीला ने कामेश्वर की ओर कठोर होकर देखा। कामेश्वर के नयन मानो कह रहे थे—'मुझे माफ करो।' लीला ने कठोर उत्तर दिया—'मेरा एकान्त ऐसा घृणित नहीं होता। आप लोगों ने आकर न मेरी बुराई की, न उपकार। आप यह न समझिए कि मैं आप लोगों को मसीहा समझकर संग में लाई हूं।'

कामेश्वर इतना किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया कि वह कुछ भी न कह सका। वह सर झुकाए सुनता रहा। दुमुई नहीं कहती तब तक कुछ नहीं कहती, किन्तु जब चिपट जाती है तो छुड़ा लेना एक कठिन काम होता है। लीला फिर अपनी साधारण अवस्था में आ गई थी। वह क्रोध आकर हुंकार उठा था और अब चेहरे पर से अपने अन्तिम पदचिह्नों तक को पोंछ गया था।

'आप नाराज़ हो गईं ?'

'जी नहीं,'—वह लजा उठी, 'ऐसा मत सोचिए आप।'

दोनों फिर एक-दूसरे के पास आ गए। कुछ देर तक बात बन्द रही। दोनों दो बड़े पेड़ थे। हवा से झुक-झुक जाते थे, मगर मिल नहीं पाते थे, लहरें क्षितिज को छूने का प्रयत्न करती थीं, किन्तु आपस में टकराकर छितरा जाती थीं। लीला ने ही बात शुरू की :

'आप ऊषा को जानते हैं ?'

'ऊषा ?'—कामेश्वर ने पूछा, जैसे बात क्या है।

'हां, हां, वही, मिस्टर भगवती को तो जानते होंगे आप। उन्हीं की क्लास-फेलो हैं।'

'जी हां, भगवती को तो जानता हूं।'

'जानते हैं आप उन्हें ? बहुत पढ़ते हैं वे, आपको मालूम है ? आखिर क्यों ?'

कामेश्वर ने उसे पुरानी आंखों से पढ़ा। 'मैंने सुना है,'—उसने कहा—'वह बहुत गम्भीर है, जीवन की विषमताओं ने उसे सुखों से उदासीन कर दिया है। मैंने एक बार स्वयं उससे पूछा था, किन्तु उसकी आंखों में मुझे दो भीषण अंगारों के सिवाय कुछ भी नहीं दीखा। शायद उसे कुछ दुःख है, जो धीरे-धीरे उसे खाये जा रहा है।'

लीला ने क्षण-भर को स्टीयरिंग व्हील पर से हाथ हटाकर कहा—'क्या दुःख है ऐसा उन्हें ?' कामेश्वर ने मुड़कर देखा। लीला ने संभलकर मोटर चलाना शुरू किया। किन्तु उसकी आतुरता उगते हुए सूर्य की तरह मचल उठी थी और नींद खुलते ही मानो वह प्रकाश आंखों में भरकर नई चमक पैदा कर रहा था। वह इस ममता को जानता था। नारी का यह रूप वह देख चुका था और लीला इन बातों में बिलकुल बालिका थी उसके सामने। पुरुष चाहे कितनी ही नारियों के संसर्ग में आ जाए, किन्तु प्रत्येक नारी के साथ मानो उसे फिर से प्रारम्भ से चलना पड़ता है और नारी एक-दो बार के बाद उसे खिलौना समझने लगती है। दोनों ही अपने अभ्यासों पर मिथ्याभिमान रखते हैं और दोनों ही अपने को भूले हुए रहते हैं। यह रील है, खुलती चली जाती है, मानो साथ-साथ लपेटने के लिए कोई नहीं होता और परिणाम में केवल कुछ गांठें रह जाती हैं। अथाह सागर की लहरों को झेली हुई मछली जाल में फंस ही जाती है और अनेक मछलियों को उलझानेवाला जाल तनिक-सी लापरवाही से लहरों में खो जाता है। यह तृष्णा है जिसके कारण मनुष्य अन्धा हो जाता है और उसे कुछ दिखाई नहीं देता।

कामेश्वर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। लीला क्षण-भर चुप रही और उसके मुख से कोई बोल उठा—'बड़े सीधे हैं वे।'

गाड़ी रुक गई। कामेश्वर का घर आ गया था। लीला के शब्दों का झटका मोटर के रुकने की त्वरा में विलीन हो गया। दोनों ने एक-दूसरे को देखा।

'गुड नाइट !'

'गुड नाइट ! इस तकलीफ के लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद !'

'ओह, कोई बात नहीं।'

राजकुमारी ने मानो महासामन्त को राजप्रासाद में बुलाया था और जब महासामन्त ने देखा, राजकुमारी वातायन से भिखारी को देख रही थी। वह मुस्करा उठा। उसे अपने ऊपर इतना अभिमान था, फिर भी वह हार गया था। यूरोप की नारी की

तरह वह आसानी से खरीदी नहीं जा सकती, भारतीय नारी सदा से एक रहस्य है, वह एक भरा घड़ा है, छलकता है, चाल में मादकता भर देता है और सचमुच के प्यासे को तब तक जल पिलाता है जब तक उसमें एक बूंद भी हो, चाहे उसे फिर कोई भरे या नहीं।

भगवती के प्रति इस स्नेह का पता पाकर वह मुग्ध हो गया था। लीला चली गई थी। ईर्ष्या कौतूहल करने लगी। एकबारगी वह ज़ोर से हंस उठा। उसका हृदय ज़ोर से धधक रहा था और लीला!

वह अट्टहास कर उठा। इन्दिरा पुकार उठी—'भैया, क्यों हंस रहे हो अकेले?'

कामेश्वर लॉन पर बैठ गया, मगर उसके हृदय की हलचल उसे व्याकुल करे देती थी। अन्धकार में एक जुगनू टिमटिमाकर जल उठता था, बुझ जाता था, जल उठता था, बुझ जाता था···

9

तृष्णा जीवन का पहला हाहाकार है। केन्द्रों में विभाजित महत्त्व वास्तव में कभी सत्य नहीं होता। एक पल का उन्माद जीवन की क्षणिक चमक नहीं, उसकी स्मृति ही अन्धकार का पोषण है, जिसका कोई अन्त नहीं, कोई आदि नहीं।

रानी, एक लड़की, जिसको देखकर सुन्दर नहीं कहा जा सकता किन्तु वह भरी हुई है, उसमें उबाल है, ठीक जैसे सोडे की बोतल। उसमें उफान आता है, झाग निकलते हैं, किन्तु उसकी मादकता की समाप्ति नहीं होती। वह ईसाई जाति की बालिका जीवन को कभी-कभी मुश्किल से सोच पाती है। कपड़े पहनने और खाने-पीने का लोभ-संवरण जीवन की बड़ी से बड़ी स्वतन्त्रता होकर भी शक्तिहीन के लिए अधिक से अधिक दासता का रूप भी धारण कर सकता है। उसके माथे पर बालों के छल्ले खेलते रहते हैं, उसका लचीला शरीर कभी-कभी खिलाड़ी लड़के की चंचलता धारण कर लेता है। उसकी आंखें बड़ी-बड़ी हैं। उनमें एक रहस्य नहीं, प्यास है। वह किसी भी सिनेमा में द्वितीय श्रेणी की पात्री होने के योग्य है, क्योंकि वह बोलने में थरथराती है, मुस्कराने में कांटा मारने का प्रयत्न करती है।

प्रेम करना, यदि यौवन को सफल बनाने के लिए आवश्यक है, तो रानी ने वास्तव में कोई गलती नहीं की। इस बात से अधिक समय कटता है, कालेज में प्रसिद्धि मिलती है, और सबसे बड़ी बात है, कि प्रेम करनेवाले की प्रत्येक मूर्खता जो प्यार बन जाती है, वही प्रेम को प्रेम के चलते रहने पर सबसे अधिक सुख देती है। शीशे में बार-बार मुंह देखने पर भी सुन्दर दिखाई देती है, दुनिया बुरा कहे, वह जलती है। आंखों में एक सौंदर्य का नशा छाया रहता है, हृदय में कुछ सहलाहट-सी होने से आंखों में चंचलता छा जाती है और प्याले भरकर पिला देने के लिए आतुर जवानी के नये इतिहास खुल जाते हैं। जूतों से चप्पलें अच्छी होती हैं या नहीं, बालों में आगे छल्ला

होना चाहिए या पीछे, बाहर निकाला जाए तो गर्दन को किस अवस्था में रखा जाए, आदि अनेक मनबहलाव की बातें हैं, जो और किसी क्षेत्र में सोचने को भी नहीं मिलतीं। संसार में अनगिनत युवक हैं, युवती हैं। दोनों का संसर्ग भी आवश्यक है या लाचारी है, किन्तु जब नर और मादा का प्रेम होता है तब वह वस्तु स्वर्गीय हो जाती है। प्रेम होने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। हंसी न आने पर भी मुस्कराना पड़ता है। प्रेमी की अथवा प्रिय की मूर्खता कभी मूर्खता नहीं लगती, क्योंकि असली प्रेम अन्धा होता है और प्रेम की सफलता का सबसे बड़ा निर्देश उसका विरोध है, आन्तरिक नहीं, बाह्य। जब समाज उसमें बाधा डालता है, तो उसका निखार बढ़ता है, उस समय जो टक्कर लेने की शक्ति उत्पन्न होती है उससे आदर्शों का वास्तविकता से परिणय होता है और दोनों बुदबुदे थोड़ी देर में फट जाते हैं, वह महानिर्वाण होता है।

साल-भर का प्रेम अनेक घड़ियों का व्यर्थ बीत जाना ही है, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु अवकाश का प्रतीक ही निराशा का अन्धकार है।

हरी की आंखों में एक सूनापन है, जो प्रेम के कारण लहलहा उठा है। सूनेपन का यह आधिक्य उसकी दृष्टि में रस का प्रथम उद्रेक है। वह अच्छे से अच्छे कपड़े पहनता है। उसका मुख अच्छे-बुरे के दायरे से बाहर है, उसे सिर्फ ठीक कहा जा सकता है। उसके बालों का जो गुच्छा बार-बार उसके माथे पर खिसक आता है, वह उसकी अपनी निर्माणशक्ति का चिह्न है। प्रारम्भ में मुख के सामने हाथ उठाकर वह आड़ करके लड़कियों को निःसंकोच होकर देख लिया करता था। उन दिनों हरी एक आवारा था, अब उसमें गम्भीरता थी, क्योंकि रानी से उसका प्रेम हो गया था।

पिछले साल एक दिन जब वह कालेज आया, उसकी दृष्टि अचानक इस लड़की पर पड़ी। विचार आया कि इस लड़की से प्रेम करना चाहिए। स्त्री के किस गुण से मन सहसा आकर्षित हो जाता है, इस विषय में कोई कुछ नहीं कह सकता।

कल ही जिस लड़की ने कालेज में पैर रखा, आज उसने देखा कि वह कितनी शक्तिशाली थी। हरी ने वीरेश्वर से जाकर कहा। वीरेश्वर ने सुना, मुस्कराया, किन्तु हरी को वास्तव में शाम होते-होते प्रेम हो गया। वीरेश्वर ने स्वीकार कर लिया और कुछ दिन बाद हरी को सलाह देने लगा। उधर रानी जैसे तैयार बैठी थी। यह अन्य लड़कियों पर एक जीत थी। सबसे पहले जो अपना प्रेमी चुन सकी वही सबसे अधिक भाग्यशालिनी है। अतः मानव-समाज के क्रमिक विकास के अनुसार ही उनके प्रेम का व्यापार चल पड़ा। पहले मूक और आंखों-आंखों का प्रेम, फिर साक्षरता समारोह, उसके बाद गीत, नाटक आदि-आदि। गत वर्ष जीवन स्वर्ग था। दोनों के हृदय में अपराजित गर्व था। रात के अन्धकार में जब रानी अपने घर लौटकर जा रही थी, गर्मी की छुट्टियों का लम्बा समय हरी के हृदय पर अनन्त दुःख बनकर छा गया। उसने रानी का हाथ पकड़कर उच्छ्वसित स्वर से कहा—'रानी! तुम जा रही हो?'

रेल में सामान रखा जा चुका था, स्वयं हरी टिकट खरीदकर लाया था। उस समय ऐसा प्रश्न अनुपयुक्त था किन्तु तब वे अन्धे थे। यह प्रश्न बहुत अच्छा लगा था। रानी की आंखों में आंसू आ गए। उसने देखा और उस दृष्टि ने हरी का समस्त साहस शीशे की तरह चकनाचूर कर दिया।

किन्तु प्रत्येक सुख को देखकर न देवताओं को संतोष होता है, न समाज की तृप्ति । अतः शैतान बीच में अड़ंगा डालने का प्रयत्न करता है । वही मैक्सुअल था। एक हिन्दुस्तानी रंग का ईसाई, जो अंग्रेज़ों से भी अधिक अंग्रेज़ी कपड़े पहनता था और जिसके कुरूप मुख पर सदा क्रीम की तह चढ़ी रहती थी। इससे उसकी त्वचा की चमक दूर हो गई थी । उसके पिता किसी ईसाई स्कूल में मास्टर थे। वह मिशन से रुपया पाता था । बड़े गिरजे के अंग्रेज़ पादरी उसपर बड़े मेहरबान थे और उन्हीं का प्रभाव था कि मैक्सुअल के घर में अब भी लड़कियां साया पहनती थीं और गले में ओढ़नी डाल लेती थीं । मैक्सुअल के दुश्मन उसे पहले का अछूत बताते थे, किन्तु अब वह सब कुछ नहीं था । अब वह साहब था और अंग्रेज़ों का विनम्र भक्त । उसकी एक राय अंग्रेज़ों से मिलती थी कि भारतीय अपने आप अपना राजकाज नहीं चला सकते, क्योंकि बड़े पादरी साहब ने अपनी मेज़ पर बिठाकर उससे ऐसा ही कहा था ।

मैक्सुअल की दृष्टि रानी पर केवल इसलिए पड़ी कि उसने अपनी एक बहिन को दूसरी जातिवाले के साथ में पड़ते देखा । अतः उसने अपने पाल खोल दिए और लहरों की ठोकरों की परवाह न करते हुए चल पड़ा । साम, दाम, दण्ड, भेद चारों का प्रयोग करके भी वह रानी को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका, क्योंकि हरी उसकी तुलना में सुन्दर था और बातें भी अच्छी करता था ।

जो बादल गरजता है, लोग कहते हैं, बरसता नहीं; कभी-कभी बरस भी जाता है, तब संसार आकाश की ओर देखता है; वह रानी है ।

अन्धड़ उठता है और जब पानी की जगह धूल बरसती है तब संसार क्रोध करता है; वह मैक्सुअल है ।

पानी बहता है, बहता जाता है, तप्त बालू में सूख जाता है, पहाड़ों में झाग देता है; वह हरी है ।

एक कछुआ है; वह जीवन है, समाज है ।

एक खरगोश है; वह यौवन है, व्यक्ति है ।

एक दौड़ है; वह स्पर्धा है, मंज़िल का अन्त नहीं है ।

मैक्सुअल को मैदान मिल गया । उसने धर्म के नाम पर जिहाद बोल दी ।

हरी का प्रश्न सुनकर रानी को अत्यन्त वेदना हुई थी । उसने कहा था—'हरी ! भूलोगे तो नहीं ?'

हरी ने प्रतिज्ञा की थी—'इस जन्म तो क्या, उस जन्म में भी मैं तुम्हें नहीं भूल सकता ।'

ईसाइयों में जन्मान्तर का राग-द्वेष नहीं होता । किन्तु मनुष्य की अमरता की साध उसके अन्तःकरण की एक महान् तृप्ति होती है। अमर जब कुछ भी कह सकने योग्य नहीं रहा, उसने प्रेम को अमर कह दिया । इससे चारों ओर झिलमिलाहट फैल गई। प्रकाश और अन्धकार का भेद दूर हो गया । जहां समन्वय में विभाजन का लोप हो गया, वहां छलना का अभिजात जन्म हुआ । उसने सांपिन की तरह उसकी आत्मा को डस लिया। स्त्री ने उसे भाग्य कहा, पुरुष ने उसे स्त्री का दुरूह चरित्र । दोनों नृत्य करने लगे, वह नृत्य जिसमें आनन्द न था, क्योंकि आनन्द से उच्चावस्था सुख को

मिली। बन्धन ही स्वातन्त्र्य हो गया।

रानी को यह बात अच्छी लगी। उसने अनुभव किया, वह सृष्टि का रूप बदलनेवाली आदिम नारी थी, जिसने वही पुरुष प्राप्त किया था जो सदा से उसका था, वही था जिसके साथ उसने जीवन की लाचार यन्त्रणा को अनेक बार झेला है और पार कर लिया है।

स्टेशन के धुंधले प्रकाश में उन्होंने पहली बार एक-दूसरे का चुंबन किया था। मैक्सुअल की धमकियां धूलि में बिखर गईं। धर्म का बन्धन तोड़ दिया गया, जैसे जूते में से गांठ पड़े फीते को तोड़कर फेंक दिया जाता है। स्टेशन की वह धुंधली ज्योति प्राणों पर अनन्त वासना बनकर फैल गई। वह उन्मुक्त चुम्बन भीतर उतर गया। उसकी उतरती धार को दोनों ने अनुभव किया, उसमें एक झटके का-सा वेग था, छल-छल-छल करनेवाला उत्साह, गर्म और ऐसा लज़ीज़ जैसा ताज़ा कबाब होता है। दो मांसल शरीरों में एक-दूसरे की विजली समा गई। दो तरह के ठंडे और गर्म तारों के मिलते ही फक् करता उजाला हो गया। दो बूंदें तो गिरीं, किन्तु उनसे दाह कम न हुआ। प्यास बढ़ गई। यही तो था वह अन्त जिसके लिए इतना उन्माद था। यदि यही प्राकृतिक स्वच्छन्दता नहीं मिल सकती, तो जीने से क्या लाभ ?

रानी ने कहा—'हरी डियर ! मैक्सुअल कितना विरोध कर रहा है ! वह इतना कमीना हो सकता है, यह मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकती।'

हरी ने उत्तर दिया—'डार्लिंग ! यदि तुम्हारा मन साफ है, तो तुम्हें भय करने का कोई कारण नहीं। मैं तो किसी से नहीं डरता। तुम्हारे लिए मैं सब कुछ कर सकता हूं।'

रात का अन्धकार मानो हंस पड़ा। उसने जैसे इस चिनगी को देखकर उपहास से सिर हिलाया। उसे निश्चय था कि कोई भी उसके विशाल रूप को ध्वस्त नहीं कर सकता। उसकी गरिमा उसका प्रसार है, प्रसार की सघनता है, वह सघनता जो स्तर पर स्तर नहीं, बीज में कोंपल की भांति समाई हुई है।

हरी ने रानी का हाथ पकड़कर कहा—'मैं समाज से नहीं डरता, संसार से नहीं डरता। चलो रानी ! हम-तुम कहीं दूर चलकर खो जाएं। वहां, जहां अपना कोई न हो, न कोई मित्र हो, न शत्रु; जहां हमीं अपने मित्र हों, हमीं अपने आदि और अन्त हों। तुम हो, मैं हूं। फिर हमें और क्या चाहिए ? युगों तक हम एक-दूसरे की आंखों में झांकते रहें, देखते रहें। तुम्हारे नयन की झील में मेरे मछली-से नयन सदा के लिए डूब जाएं। यह शिकारी संसार उन्हें कभी भी बाहर न निकाल सके। तुम्हारे हृदय का वह उज्ज्वल मोती मेरा हो जाए, रानी ! चलो ! मैं सबको छोड़ चलूंगा। कौन है मेरा ? मां-बाप ? सबका प्रेम झूठा है। यदि वे हमारे सुख में अपना सुख नहीं मान सकते, तो हमारे शुभचिन्तक बने रहने का दंभ नहीं कर सकते। यदि वे हमें अपना खिलौना समझते हैं, तो क्या हम भी अपने-आपको उनका दास समझें ? हम प्रेम करते हैं, पाप नहीं...'

हरी ने फिर रानी का मुख चूम लिया। इस बार रानी की आंखें बन्द नहीं हुई थीं और न वह सिहरन से कांपी ही थी। एक लाज की रेखा दायें-बायें गालों पर तड़पी

और उसका शरीर पुलकित हो गया। स्त्री वही है जिसको देखकर उसका प्रेमी विवश हो जाए, पुरुष वही है जिसके स्पर्श से स्त्री सिहर उठे। वातों से मस्तिष्क का सम्बन्ध है, प्रेम का हृदय से।

वह पत्थर है, मनुष्य नहीं है, जो प्रेम नहीं करता, वह कीचड़ की तरह गंदा है जो प्रेमी को अपवित्र कहता है। प्रेम शरीर से प्रारम्भ नहीं होता। वह हृदय से प्रारम्भ होता है। जिसके हृदय में प्रेम है वह किसी से नहीं डरता।

अज्ञानी गार्ड ने सीटी दी। वह रुपयों के लिए काम करनेवाला नौकर, क्या जाने कि प्रेम की गम्भीरता में कितना वेग है! उसका जीवन एक मशीन है। उसकी आत्मा आर्थिक परवशता में कुचली जा चुकी है। वह नहीं जानना, चांदनी रात में किस अवसाद का लय है, बर्फीले पहाड़ों में कौन-सी उन्नत गरिमा है। दिन हो, रात हो, वह जीवन की अरमानों से भरी गाड़ी को चला रहा है, केवल पैसे के लिए, टुकड़ों के लिए।

रेल सरक उठी। रानी शीघ्रता से बैठ गई। जनाना डिब्बा था, सेकंड क्लास। उस समय उसमें रानी के अतिरिक्त और कोई न था। हरी के हाथ में रानी का हाथ था और ऊष्मा का यह सम्बन्ध वैसा ही खिंच आया जैसे गाढ़े गोंद का चिपकना तार खिंच आता है जो झूलता है, किन्तु टूटता नहीं। हरी भी अनजाने ही गाड़ी में चढ़ गया। बाहर उस दिन चांदनी फैली हुई थी। हरी ने भीतर जाकर बत्ती बन्द कर दी।

घरघराहट की ध्वनि, तेज़ हवा के झोंके, चांदनी की कांपती सुधा, सुनसान राह से रेल भाग चली। हरी ने रानी को अपनी भुजाओं में भर लिया। वह कहने लगा—'रानी! घर जाकर क्या करोगी? चलो, हम-तुम कहीं भाग चलें।'

रानी उस समय गर्म आलिंगन में थी, इसलिए उसे भी संसार में अन्य किसी वस्तु से प्रेम न था।

मैक्सुम्रल आकाश और पृथ्वी के बीच में क्षितिज है; वह एक ढाल है, जिसके कारण ऊपर चढ़ता पानी बार-बार पीछे ढुलक जाता है। रानी का जीवन भी सुखी हो जाएगा।

रेल भी जीवन का स्वर्ग है। ऐसे ही तो आदमी आता है संसार में। किन्तु संसार की यात्रा एक टिकट के बल पर नहीं चलती। यह कहीं अधिक कठिन है। इस यात्रा में कोई किसी का साथ नहीं देता। रानी को गुदगुदेपन का दबाव सुख देता है, वह इस समय कुछ सोचना नहीं चाहती। किन्तु रेल की गति में उसका अपना महानाद है, जिसमें भीतर की समस्त विषमता छिपी हुई है। उसका वेग आकाश को चुनौती देता है, वायु का वक्षस्थल फाड़ देता है, वह चली जा रही है, चली जा रही है…।

हठात् एक झटका लगा था। दोनों अलग हो गए थे। गाड़ी स्टेशन पर खड़ी थी। चारों ओर प्रकाश फैल रहा था। हरी ने झांककर बाहर देखा और यही बात आफत हो गई। टी० टी० आई० ने ज़नाने डिब्बे में पुरुष को देखकर धड़धड़ाते हुए प्रवेश किया और बत्ती जला दी। वह कानून के खिलाफ ज़नाने डिब्बे में घुसा था, किन्तु कानून उस समय ताक में धरा था। भीतर का दृश्य देखकर वह समझ गया। भला कौन नहीं समझ लेता! फूंस और फूंस के पास आग! यह तो वह संसर्ग है जो समस्त संसार को भस्म कर दे। बेचारी रेल तो एक निर्जीव पदार्थ है।

किन्तु संसारी व्यक्ति कल्पनाओं के आदर्श को नहीं समझ सकता। वह अपनी कलुषित सीमाओं के पार नहीं जा सकता। उसकी चिन्तनशक्ति इतनी दूषित है कि वह प्रेम की पवित्रता को स्वप्न में भी नहीं सोच सकता।

उसने अदब से टिकट मांगा। रानी ने तुरन्त टिकट दिया। टी० टी० आई० सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने संदिग्ध दृष्टि से हरी की ओर देखा।

हरी अचानक ही कुछ भी नहीं कह सका। टी० टी० आई० ने कठोरता से कहा—'बाबू साहब, आपका टिकट ?'

हरी के पास टिकट नहीं था। वह यात्रा करनें आया था, किन्तु उसकी यात्रा प्रेम की यात्रा थी। प्रेमी किसी के अधीन नहीं है। टी० टी० आई० मूर्ख। वह इस बात को स्वीकार करने को तैयार न था। प्रेमी के पास यात्रा करने को स्वयं अपना साधन है। वह यात्रा करे कल्पना के घोड़े पर। उसे सरकारी रेल में अपना राज्य स्थापित करने का कोई अधिकार नहीं। जो एक स्त्री से प्रेम करने के लिए सारे संसार से घृणा करके अलग दुनिया बसाने चला हो, उसे यह साधारण व्यक्ति कैसे सहन करता।

उसने दोनों को सन्देह से देखा। रानी ने उसकी दृष्टि में अपमान की जलती चिनगारी देखी। उसने अनुभव किया कि वह उसे दुश्चरित्र समझ रहा था। उसने कहा था—'ये मेरे भाई हैं, स्टेशन पहुंचाने आए थे, इतने में गाड़ी चल दी। इसी से बैठे रह गए। अब लौट जाएंगे।' मुड़कर हरी ने कहा—'अब उतर जाओ। ममी से कह देना···'

टी० टी० आई० नें बात काटकर कहा—'तो गोया जनाने डिब्बे में बैठने का ही जुर्म हो, यह काफी नहीं। बाबू साहब के पास टिकट भी नहीं है ! चार्ज देना होगा। जंकशन से जंकशन तक का।'

हरी के पास प्रेम था, पैसा नहीं था, रानी के पास प्रेम का प्रत्युत्तर था, टी० टी० आई० के प्रस्ताव का नहीं। दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा। विपत्ति के जिस धर्म के कारण हरी को रानी ने पति से भाई बना दिया, वह बात हरी के मस्तिष्क में बालू की तड़पती वायु की भांति सनसना उठी।

वह उतर गया। रेल चल दी। टी० टी० आई० ने दया करके उसे छोड़ दिया और वह दो रुपये की अपनी सारी पूंजी समाप्त करके घर लौट आया।

वर्ष-भर जो नाटक चला था उसका अन्तिमं अंक इस प्रकार समाप्त हुआ। मैक्सुअल को यद्यपि यह बात ज्ञात नहीं हुई, किन्तु इस वर्ष के प्रारम्भ में उसने दोनों के बीच का दुराव समझा और जो कपड़े में सीवन टूटी थी, उसमें उंगली डालकर उसे और फाड़ देने का यत्न करने लगा।

हरी ने रानी को कायर समझा, रानी ने हरी को मूर्ख।

इस वर्ष जब दोनों मिले तब एक-दूसरे को दोष देते रहे और अन्त में सुलह हो गई, क्योंकि लहरें अलग रहकर भी साथ रहती हैं, अंजलि में दोनों का पानी एक-सा होता है। दोनों अब भी एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, जैसे अब इस बन्धन में उतना आकर्षण नहीं रहा, उतना उद्वेग नहीं रहा, जितना पहले था, क्योंकि उफान का दूध फैल चुका था, आग में जल चुका था और उससे एक बार वायु में दुर्गन्ध फैल चुकी

थी, जैसे चर्बी जलने पर···मैंदा जलने पर···

10

कामेश्वर ने वीरेश्वर का हाथ झटककर कहा —'तुम नियम को जीवन का क्या मानते हो ? पराजय ? पराजय ही यदि नियम है, तो उच्छृङ्खलता विजय नहीं है। मैं स्वयं अभिमानी हूं, उच्छृङ्खल हूं, किन्तु मुझे सुख ? सुख मेरे लिए छलना है, मैं सदा भूला रहना चाहता हूं।'

वीरेश्वर कालेज के कामनरूम में बैठा था। कामेश्वर आ गया, बात छिड़ गई। कला आ गई, बाद में ज़ोर आ गया। भूमिका, लम्बा और विस्तृत विवरण, शब्दों का सुगठित चुनाव, किन्तु कथावस्तु में कोई चुनाव नहीं।

हवा खेल रही है, लड़कियां कैरम खेल रही हैं, उनके शरीर से गन्ध फूट रही है। युवक भूले हुए हैं, युवतियां भूली हुई हैं, कहीं कोई सुलझन नहीं, गति, लड़खड़ाना, ठोकर, मुंह के दांत टूटना, किन्तु फिर भी, फिर भी···

कला उठकर चली गई।

कामेश्वर ने वीरेश्वर का हाथ दबाकर कहा—'यह सारा जोश अब क्यों रफूचक्कर हो रहा है ? क्या उबाल थम गया ?'

वीरेश्वर ने क्रुद्ध दृष्टि से देखकर कहा—'मैं तुम्हारी तरह लोलुप नहीं कि औरत देखते ही आंखें पसार दूं। मेरा भी अपनापन है, ज़िसे मैं खोने के लिए तैयार नहीं हूं। कला के विषय में तुम वैसा सोचकर भूल कर रहे हो। मैं न तुम्हारी तरह धनी हूं, न कला ही। हम लोगों के जीवन का दृष्टिकोण वह नहीं हो सकता जिसमें तुम लोग अपने पाप को छिपाते हो।'

'जी हां,'—कामेश्वर ने हंसकर कहा—'वे भी यही कहा करते थे।'

वीरेश्वर इस उपहास से चिढ़ गया। उसने अपनी मुट्ठी को मेज़ पर मारते हुए कहा—'तुमने बिलकुल गलत समझा है। तुमने मुझे समझने में ही भूल नहीं की, हमारे सम्बन्ध का अपमान किया है।'

कामेश्वर ठठाकर हंस पड़ा। इसी समय कला लौट आई। उसको देखकर वह फिर गम्भीर हो गया। वीरेश्वर क्षण-भर को चुप हो गया। कला ने हंसकर कहा—'अरे, आप लोग चुप क्यों हो गए ? मैंने तो समझा था, कुछ राजनीति पर बहस छिड़ी होगी, तभी इतनी गरमागरमी हो रही है। बताइए न, आप लोग क्या बातें कर रहे थे ?

'हम लोग'—वीरेश्वर ने गम्भीरता से कहा—'समाज में स्त्री और पुरुष के बन्धनों पर बात कर रहे थे। हमारी भावनाएं हमारे संस्कारों पर निर्भर हैं। हमारे संस्कार हमारी सदियों की रूढ़ियों में पले हैं। अतएव, हम उन्हें बिलकुल निर्दोष नहीं कह सकते। हमारे प्रयत्न में उनकी छाप पड़ती है, उससे युद्ध करने की जो प्रेरणा है वह हमारी शिक्षा है; किन्तु यदि संस्कारों की कलई चढ़ाकर यह शिक्षा केवल जेब

घड़ी की तरह जेब में रख ली जाय तो सर्वथा व्यर्थ है। आपका क्या विचार है?'

कला ने होंठों को भीतर की तरफ एक बार ज़ोर से भींचा और फिर पलकें कपाकर कहा—'संस्कारों और शिक्षा को बिलकुल अलग-अलग नहीं रखा जा सकता। यदि संस्कारों की कोई प्रेरणा नहीं है, तो शिक्षा का अर्थ ही क्या है? शिक्षा का तात्पर्य अज्ञान को हटाना है, अज्ञान का बोध आज या कुछ क्षर्ण से नहीं, परिवर्तनशील समय के निरन्तर बहते रहने से हुआ है। सैकड़ों पीढ़ियां बीत गईं। उनके विश्वास ही संस्कार बन गए। अनुभव और संस्कार की चोट हम सत्य की कसौटी पर परखते हैं, तभी शिक्षा के आधार में हमारे संस्कारों का बीज है।'

कामेश्वर ऊबकर सिगरेट पीने लगा। वीरेश्वर ने बात काटकर कहा—'आपने जो कहा वह ठीक हो सकता है, किन्तु सत्य शब्द कहकर ही आपने बात को सुलझा दिया हो, ऐसा तो नहीं? सत्य एक सापेक्ष स्वरूप है, मनुष्य का सामाजिक जीवन, जो एक सामंजस्य ढूंढ़ता है, उसका प्रसार है। और सब है, केवल व्यक्ति के एकमात्र सुख के लिए, आनन्द के लिए। फिर जिसका रूप स्वयं सापेक्ष है, वह किसी बात की कसौटी नहीं हो सकता, क्योंकि उसके प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न रूप हैं।'

कला ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया। उसने कहा—'सत्य सापेक्ष होकर भी मनुष्य की प्राकृतिक सद्‌भावना का द्योतक है। मनुष्य की प्राकृतिक अनुभूतियों का सृजन जिस रूप में होकर समाज पर प्रभाव डालता है, उसकी इसके अतिरिक्त कोई माप नहीं है।'

वीरेश्वर को मौका मिला। उसने मुस्कराकर उत्तर दिया—'प्रभाव सम्बन्धों की उपज है, उसका कार्यरूप में और कारणरूप में कोई एकत्व नहीं है, दोनों में मूल भेद है। इसे स्वीकार करने में तो आपको विशेष बाधा नहीं?'

कला ने उसकी स्मृति के प्रकाश में उसकी विजय का द्योतक दीप देखकर इस बात को अस्वीकार कर दिया। उसने दृढ़ता से कहा—'यदि सम्बन्ध का अपना महत्त्व नहीं, तो जीवन भी असम्बद्ध है, उसका अपने आपमें कोई महत्त्व नहीं।'

'वह तो है ही।' वीरेश्वर चिल्लाया—'वह तो है ही। अब आपने मतलब की बात कही। वास्तव में वह अपने आपमें पूर्ण नहीं है। इसी जगह दो विभाजन होते हैं। वीर कहता है कि यह कुछ नहीं है, वास्तव में कुछ नहीं है। किन्तु कायर कहता है कि समाज है, मनुष्य समाज का प्राणी है। 'नहीं है' का अभाव परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप से अपने विरोध में 'है' को सावित करता है। मेरे विचार में जो कुछ नहीं है।'

कला हंसी। वायु का झोंका आया। वीरेश्वर ने सिगरेट निकालकर मुंह से लगा ली। कला ने कहा—'मेरा-आपका विचार भी तो कुछ नहीं है। फिर उसका क्या कहना, क्या सुनना?'

वीरेश्वर कुण्ठित हो गया। उसने कहा—'जी हां, यह भी कुछ नहीं।'

कला ने फिर कहा—'यह कुछ नहीं भी तो कुछ नहीं।'

'जी हां,' वीरेश्वर ने धुआं छोड़कर भुनभुनाते हुए कहा—'यह भी कुछ नहीं।'

'तो आपका यह 'कुछ' किस संभावना की ओर प्रतारणा-भरा संकेत कर रहा है, कांपते हुए हाथ से? 'नहीं' एक वह रेखा है जो 'है' को काटती है। मेरी राय में

'है' को नहीं झुठलाया जा सकता। यह 'है' ही वास्तव में सत्य है, क्योंकि 'नहीं' की अपने आपमें कोई सत्ता नहीं है। मेरे विचार में जो 'है' को झुठलाता है, वह कायर है, क्योंकि 'है' ही कर्म और चिन्तन को प्रेरणा देता है, सारी सुस्ती और उदासी को ठोकर मारकर जगा देता है। आप उसे असत्य कहते हैं, क्योंकि 'नहीं' की छलना में आपके अहं को जो छिछला संतोष मिलता है, वह 'है' के पहाड़ के सामने निर्जीव हो जाता है, उस चूहे-सा जो सब तरफ से प्रयत्न करके भी, पहाड़ के नीचे खड़ा होकर भी, कभी हिमाच्छादित शृंगों को नहीं देख सकता। इसी से आप 'कर्म' की भावना को नष्ट करने के लिए इतने बड़े झूठ को जन्म देते हैं जो शिक्षा से बहुत दूर, केवल बौद्धों की अकर्मण्यता, शंकर के प्रहसन मायावाद अथवा हेगेल के विचारमात्र का बोध कराती है, केवल अपने संस्कारों के वल पर, मनुष्य के युग-युग के अज्ञान और अन्धकार के बल पर।'

वीरेश्वर की आंखों में एक शीतलता छा गई। बात पकड़ी गई थी, किन्तु स्त्री से हार जाने का अर्थ है उसे कभी भी सत्य की ओर प्रेरित न करना। उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—'मालूम देता है कि आप मेरी बात समझीं नहीं। तभी आपने बहुत-सी रटी-रटाई-सी बातें बेमतलब दुहरा दीं। बात यह है, दर्शन पुरुषों का विषय है, स्त्रियां इस पर व्यर्थ का विवाद कर सकती हैं, उसमें कोई सार नहीं निकल सकता।'

आशा के विपरीत कला बड़े ज़ोर से हंसी। उसने कहा—'अच्छा! यह नया मार्ग ढूंढ़ा। अब यह बताइए। यह शिक्षा है या संस्कार? क्या आपकी शिक्षा यहां संस्कारों के दम्भ के नीचे कुचली हुई नहीं पड़ी है? जो बात आपके पिता के पिता के पिता कहते थे, क्या वही आपने इस बीसवीं सदी में फिर नहीं दुहराई? क्या इस समय भी आपमें पुरुष की वही अधिकार-लोलुप भावना नहीं? क्या आप स्त्री को पुरुष से किसी भी प्रकार हीन समझते हैं?'

वीरेश्वर ने हाथ हिलाकर कहा—'नहीं, मैं स्त्री को हीन नहीं समझता। मैं स्त्री की चतुरता को मान सकता हूं, उसकी चालाकी को स्वीकार कर सकता हूं, किन्तु उसका बुद्धि का यह नीचे को चलनेवाला झुकाव जो मैं श्रेयस्कर नहीं समझता, उसे पुरुष की गुरुता और गंभीरता के सम्मुख नहीं रख सकता। स्त्री मूर्ख नहीं है, छिछली है। अधिकारों की साधारण वलि देकर ही, जिसने चैन से रहने के लिए पुरुष के सिर पर ज़िम्मेदारियों के कांटों का ताज रख दिया, उसे मैं मूर्ख नहीं कह सकता। लेकिन एक बात है। पुरुष यदि पहाड़ है, तो नारी केवल उसके चरणों पर बहनेवाली नदी। पाषाण को जल से सींचने का छिछलापन नारी के अतिरिक्त और कौन कर सकता है?'

'पाषाण का तो बहुत गर्व किया मिस्टर वीरेश्वर,' कला ने कहा—'यह पाषाण की जड़ता यदि पुरुष में से किसी ने मिटाई है, तो केवल स्त्री ने। जब पुरुष भय से जंगल भागता है तब वह भगवान की तृष्णा में जाता है, लेकिन होता क्या है जानते हैं? निर्जन में पशु रहते हैं। बेकन ने भी यही कहा है, निर्जन में या तो देवता रहते हैं या पशु, सो देवत्व तो वही साहस है जो वह छोड़ जाता है, अपने आप ही उसमें

पशुत्व रह जाता है, पशुत्व ।'

वह उत्साह से कुर्सी पर सीधी बैठ गई और अब की उसने गर्व से देखा। उसकी आंखों में रस नहीं था। शायद ज़्यादा पढ़ने से सूख गया हो। वह कभी फैशन, कपड़े, विवाह, सखी-संवाद आदि में दिलचस्पी नहीं लेती। काम हो, उसका एक आदर्श हो, तभी वह ग्राह्य है। लड़के कहते, वह अपने ज्ञान पर गर्व करती थी, अपने आपको न जाने क्या समझती है। किन्तु बहुधा लड़के उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दे पाते। वह कभी हार स्वीकार नहीं करती, क्योंकि प्रत्येक बात का उत्तर दे जाती है। कभी-कभी वह असाधारण रूप से मौन ग्रहण कर लेती है और कहनेवाला अपनी बातों की असंगति को अपने-आप अनुभव करने लगता है।

वीरेश्वर ने यह सब देखा और कहा—'आप फिर भूल गईं, मिस कला! पशु को आपने साहसहीन कहकर मनुष्य के ज्ञान की अभिवृद्धि नहीं की। जिस शान्ति का आत्मानुभव निर्जन में है, उसे सहने के लिए कितनी बड़ी शक्ति की आवश्यकता है, वह क्या इस शोरगुल में समझी जा सकती है? नहीं। आप निर्जन का वह रूप नहीं जानतीं जिसमें यह हलचल, यह कोलाहल. नितान्त मूर्खतापूर्ण उपेक्षा है, घृणा का सर्वांगीण समुदाय है। वह आत्मा का प्रकृति की सृजनशक्ति से एक तादात्म्य है। निर्जन जीवन की सर्वश्रेष्ठ कविता का स्रोत है।'

कला ने उसी स्वर से कहा—'निर्जन जिस कविता का द्योतक है वह जीवन से पराङ्मुख है। आदि कवि भी वेदना के कारण ही कुछ बोल सके। कालिदास का यक्ष निर्जन में रोकर भी अपने आप में पूर्ण नहीं है, क्योंकि रोता वह कोलाहल के ही लिए है, अन्यथा निर्जन में कुछ नहीं है। आपको निर्जन इसीलिए पसन्द है, क्योंकि आप कुछ नहीं के समर्थक हैं। यह कुछ नहीं, और कुछ नहीं, मनुष्य की सबसे बड़ी निर्बलता है, क्योंकि यह मोह से भी घृणित है, घृणा से भी अधिक लाचार है। किन्तु मनुष्य का सामाजिक चिन्तन एकान्त में नहीं हो सकता। वह ईंट-ईंट करके बननेवाला मकान है। उसकी अपूर्णता उसकी शक्ति है...'

वीरेश्वर ने कहा—'अपूर्णता ही जिसकी शक्ति है उसे शक्ति का दुरभिमान किसलिए? वह तो कुछ नहीं जानता। धूल पर खड़े होने से ही क्या कोई यह बता सकता है कि पथ का अन्त कहां है? निष्क्रियता यदि मरण है, तो यह गति भी व्यर्थ है, क्योंकि दोनों रूप से कहीं कोई लाभ नहीं है। यह जंगल में खड़े होकर चिल्लाने की प्रवृत्ति भले ही धार्मिक रूप से महामानवी हो, किन्तु मेरा इन दोनों विचारों से कोई सामंजस्य नहीं है। मैं स्वीकार नहीं कर सकता।'

कला ने उत्तेजित होकर कहा—'आपका 'मैं' बिना आधार का अभिमान ही नहीं, एक अंधकार अहंमन्य दुरभिमान है, क्योंकि सब कुछ झुठलाकर भी आप उसी पर हर बात का सत्य-असत्य देखते हैं, किन्तु जो 'मैं' किसी भी 'तुम' के सामने हीन अथवा अधकचरा हो सकता है वह कोई परिणाम नहीं है, उससे मेधा का सन्तुलन नहीं हो सकता, वह केवल झूठा दर्प है, अन्धापन है।'

कला अधिक न कह सकी। अपने आवेश में अपने आप हकला गई। एकाएक पीछे से हाथ रखकर लीला ने कहा—'ओ३म् शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः! इतनी

जल्दी बोलने से सारी मशीन खराब हो जाएगी। क्या गज़ब कर रही हो?'

कला ने मुड़कर देखा और झेंपकर चुप हो रही। लवंग उसकी ओर अजीब दृष्टि से देख रही थी। कला उसका कोई भी अर्थ नहीं लगा सकी।

घण्टा बजने लगा। कला ने अपनी किताबें उठा लीं। ऊपर ही ऊपर की किताब पर कामेश्वर की दृष्टि पड़ी। वह प्लेटो की 'रिपब्लिक' थी। उसने सोचा, इसके नीचे शायद शोपनहार होगा। किन्तु उसने कोई बात कहनी उचित नहीं समझी। यह नहीं। ऐसी लड़की को वह ततैया समझता है। इनके पास सिवाय दिमाग चाटने के और कोई बात नहीं है। वीरेश्वर को ही मुबारक हो। न सुन्दरता, न वह हलचल, जैसे एक तोता बोल रहा हो, या घड़ा औंधा करने पर गड़-गड़ करके पानी निकल रहा हो···

जब कला चली गई, कामेश्वर धीरे से हंसा। उसकी हंसी में व्यंग्य भी था, ऊधम भी। वीरेश्वर ने उसकी ओर देखा। कामेश्वर ने कहा—'मानते हैं तुम्हें। यह प्रेम पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर शुरू हुआ है।'

'क्या आदमी हो तुम लोग? जहां देखो, प्रेम-प्रेम। जैसे इस जीवन में प्रेम के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं! इतने आदमी भूखों मरते हैं, संसार में इतना दुख है··· लेकिन तुमको बस प्रेम···'

कामेश्वर हंस पड़ा, जैसे वीरेश्वर की बात व्यर्थ है, उसका कहना बेकार है वीरेश्वर ने चेतकर कहा—'तुम मूर्ख हो···समझे? यह संदेह तुम्हारे संस्कारों का दोष है···'

कामेश्वर ने कहा—'यही तो कला कहती थी।'

वीरेश्वर अप्रतिभ हो गया।

11

ऊषा लाइब्रेरी में बैठी किसी किताब में से कुछ नकल कर रही थी। अपनी-अपनी किताबों में उलझे हुए, वे परिष्कृत मस्तिष्क जिनके ज्ञान का अन्तिम ध्येय आई० सी० एस० या पी० सी० एस० हो जाना था, निस्तब्ध वायुमंडल एक प्रकार का भयद सूनापन उपजा रहे थे। मेज़ों की पालिश पर प्रकाश हरा-भरा-सा था। लाइब्रेरियन अपने पास खड़े लड़कों से एक बार बात करता था, लड़कियों से दो बार और वह उनमें था जो ऐसी लड़कियों से दिल में केवल घृणा करना जानते थे। जैसे कोई कांटों की झाड़ी को फूलों से ढके हुए था।

घड़ी ने हिलते हुए पेंडुलम के चरण पर अपना एक का साज छेड़ा। कई किताबें शीघ्रता से एकदम बन्द हो गईं और लड़के-लड़कियां बाहर चल पड़े। बाहर घंटा निनाद करता हुआ बज उठा, फुसफुसाते हुए लड़के घुसने लगे और···

ऊषा चुपचाप लिखती रही, मानो आज उसे केवल लिखना ही था। प्रकाश

और धूमिल अंधकार के मिलन में वह एक मूर्ति के समान प्रतीत हो रही थी। उसकी तेज़ी से चलती कलम कागज़ों पर मानो एक तुमुल संग्राम-सा कर रही थी।

वह सुन्दर नहीं थी। उसके गालों पर लालिमा आज क्या, शायद कभी भी नहीं रही थी और आंखों में नशा उसके लिए वैसा ही था जैसे अफगानिस्तान की स्त्री में कोमलता, किन्तु यौवन राह के कंकड़-पत्थरों की कब चिंता करता है। खिली हुई गुलाव की पंखुड़ियों में जो एक ओस की बूंद गिर जाती है वह दूर से हीरा ही प्रतीत होती है।

ऊषा ने क्षण-भर को अपनी कलम मेज़ पर रखकर हाथों को कर्रा करके कमर को सीधा किया और वह हाथ पर सिर धरकर विचारशून्य-सी ऊपर की ओर देखने लगी। किंतु शीघ्र ही उसकी विचारधारा जो केवल उसकी श्रांति और मौन थी, टूट गई।

सामने एक लड़का खड़ा होकर कुछ कहने की प्रतीक्षा में उत्सुक-सा उसकी ओर देख रहा था।

'मिस ऊषा ! मुझे इजाज़त हो, तो मैं आपसे कुछ अर्ज़ करूं।'

ऊषा न उठी, न घबराई। उसने निर्मल आंखों के कोनों को संकुचित कर कहा—'कहिए।'

'जी, मुझे कहना यह था कि कालेज के चुनाव हो रहे हैं यह तो आपको मालूम ही होगा।'

'जी हां, सुना है कि कुछ हो रहे हैं।'

'मुझे सज्जाद कहते हैं। मैं एम० ए० फाइनल इंग्लिश में हूं। प्रेसीडेंटशिप के लिए कोशिश कर रहा हूं। अगर आप किसी और व्यक्ति से वायदा न कर चुकी हों, तो मेहरवानी करके मेरा खयाल रखिएगा।'

लड़का मौन हो गया। ऊषा को उसकी बात करने में ऐसी सफलता को प्राप्त कर लेना अच्छा मालूम हुआ।

'तो क्या चाहते हैं,' उसने कहा—'कि मैं आप ही को वोट दूं ?'

लड़का मुस्कराया।

'खैर,' वह वोला—'ऐसा कौन होगा कि इस खयाल को बुरा समझे। ऐसा हो, तो इससे अच्छी वात तो शायद ही कोई हो। लेकिन मैं आपको वेकार के लिए कुछ नहीं कहना चाहता, क्योंकि मैं यह तो कह ही नहीं सकता कि प्रेसीडेंटशिप के लिए मेरे सिवाय औरों ने खड़े होकर महज़ वेवकूफी की है। हर एक के विचार भिन्न-भिन्न होते हैं। वैसे मैं यह चाहता हूं कि आप वजाय इसके कि दोस्ती से वोट देने में आगे बढ़ें, वेहतर हो, आपका दिमाग ही इसका फैसला करे। मैं नहीं, जो आपको ठीक मालूम दे उसी को चुनिए।'

ऊषा उसकी ओर देखती रही। लड़के ने कहा—'इजाजत है ? आप मेरी वात का खयाल रखेंगी ?'

'ज़रूर,' ऊषा ने कहा।

'शुक्रिया,' और लड़का चला गया।

ऊषा कुछ क्षणों तक वैसी ही बैठी रही और फिर मुस्कराकर काम करने लगी। लाइब्रेरी में वैसा ही शोर होता रहा, वैसा ही नाद छाया रहा, ऊषा लिखती रही।

भगवती बेल के पास आकर रुक गया। वह अपनी किताबें एक किनारे रखकर सीढ़ी पर एक पैर रखे क्षण-भर बेल में से आती गंध को सूंघने लगा। वह थक गया था। लगातार चार घंटे काम करने के बाद वह इधर कलाविभाग के पुस्तकालय में आया था। अभी उसे देर भी नहीं हुई थी कि कोई आकर उसके सामने ठिठककर रुक गया।

दोनों के मुंह से अकस्मात् ही निकला—'आप !'

भगवती ने ही पहले कहा—'जी हां, आज ज़रा इधर चला आया, कुछ किताबें लेनी थीं।'

'ओह,' लीला की आवाज़ कूक उठी—'आए तो आप। हमें कब आशा थी कि वैज्ञानिक के नीरस हृदय को एक दिन कला से भी अनुरक्ति होगी। आपको है ही क्या ? किस चीज़ के मिला देने से क्या बन जाएगा। ऊषा कहती तो है कि स्नेह, प्रेम सब गलत हैं। आदमी के शरीर में हर बात के लिए कोई न कोई हिस्सा होता है। खून के लिए नसें, वज़न के लिए हड्डियां, खाना पचाने के लिए पेट, फिर प्रेम के लिए कौन-सी जगह है, बताइए। फिर मैंने क्या आपसे गलत कहा ? आप लोगों को तो यह देखना आता है कि किससे क्या, क्यों होता है। मगर आप यह देखने के लायक ही नहीं रहते कि आखिर हो क्या रहा है ? ज़हर लेने आइए, बता देंगे, इसको खाने से आदमी मर जाता है, मगर यह कभी न कहेंगे कि इसे खा मत लेना...'

भगवती अभी तक चुप खड़ा था। अब वह बोल उठा—'आपने ध्यान नहीं दिया मिस लीला ! सबसे अच्छी कला में उपदेश नहीं दिए जाते, मगर सब समझा दिया जाता है।'

दोनों हंस पड़े। लीला की चमकती आंखों में जैसे कोनों पर एक संकोच की लहर आती थी, मगर लौट जाती थी। वह आज कत्थई रंग की साड़ी पहने थी, जिसपर एक भी बेकार की सजावट न थी और कीमती कपड़े में से सफेद ब्लाउज चमक रहा था। पैरों में चप्पल, होंठों पर हलकी ललाई, खड़े होने में भी लचक, बातों में जवानी का लबालब रस। भगवती देखता रहा। लीला ने चुप होकर कहा—'आप बातों से माननेवाले नहीं हैं। लोग तो कहते हैं कि आपको अपना नाम बताने में भी शर्म मालूम होती है।'

'आप ही बताइए, आपसे कभी मैंने शर्म की है ? लोगों को जाने दीजिए।'

'मुझसे ? आप शर्म क्यों करने लगे ? मैंने क्या आपसे कभी कुछ कहा है ?'

'आपसे मैंने कहने को मना कब किया था ?'

भगवती एकदम रुक गया। वह क्या का क्या कह जाता। लीला को जैसे सन्तोष नहीं हुआ। वह नीचे देखकर नाखून को चप्पल में घुमाने लगी। वह अभी कुछ और सुनना चाहती थी, किन्तु भगवती यह पहचान नहीं पाया। वह समझा शायद लीला को उसकी बात अच्छी नहीं लगी। वह सामने फील्ड के पार गुज़रती लड़कियों को देखने लगा। पल-भर में उसे ध्यान आया और लीला पर उसकी दृष्टि अटक गई। उसने

देखा। लीला शायद गिरनेवाली थी, शायद वह चाहती थी, कोई उसे संभाल ले। किन्तु न वह गिरी, न भगवती ने उसे संभाला। लीला के गालों पर एक हल्की-सी लाली क्षण-भर लहराकर कांप उठी। उसने आंखों की कोर से भगवती की ओर देखकर कहा—'आइए, भीतर चलें।'

भगवती ने किताबें उठा लीं और अनायास ही उसके मुख से निकला—'चलिए।' दोनों लाइब्रेरी में पहुंचकर गम्भीर हो गए। लीला ऊषा की मेज़ पर जाकर रुकी। लीला ने हंसकर कहा—'सलाम मिस साहब!'

ऊषा चौंक उठी : 'ओह! आप हैं मैडम! तशरीफ रखिए!'

लीला कुर्सी खींचकर बैठ गई। ऊषा ने देखा, भगवती किताबें ढूंढ़ रहा था। दीर्घाकार आलमारियों के शीशों पर बाहर की रोशनी झलमला रही थी। भगवती उनके सामने ऐसा लगता था जैसे प्राचीन इमारतों के भीतरी भागों पर खुदे लेखों को पढ़ता हुआ कोई पुरातत्त्ववेत्ता हो। ऊषा लीला की ओर देखने लगी।

'कहां से आ रही हो?'

'अस्पताल से।'

'क्यों, कोई खुशी होनेवाली है या घायल हो गई हो?'

'चल हट, फिर बदतमीज़ी। हमारी मासी बीमार हैं? उनको देखने गई थी।'

'ओह, माफ करना। मैं समझी थी, खैर जाने दो, मगर अब फिर शायद अस्पताल जाना पड़े।'

लीला ने अनजान बनकर पूछा—'अब क्यों? तीन दिन में एक बार जाती हूं।'

'लेकिन अब तो शायद तुम्हें वहीं रहना पड़े।'

'कोई बात भी हो, या बके जाओगी!'

'झूठ तो मैंने कहा नहीं। तुम दिल पर हाथ रखकर कहो—मैंने झूठ कहा है क्या?'

'क्यों, लीला अपराधिनी-सी पूछ बैठी—'मैंने ऐसा क्या किया है?'

'तुम्हारी सूरत से मालूम पड़ रहा है।'

लीला ने अपने मुख को न देख पाने के कारण अपने भावों को क्रोध में बदलने की कोशिश करते हुए कहा—'तुम्हें अगर ढंग से बात करनी हो तो करो, वरना मैं जाती हूं।'

ऊषा हंसी। हंसी कि उसका आंखों में एक रहस्य खोल देने की चतुरता लहरा उठी। लीला जैसे समझ गई थी, मगर फिर भी नहीं समझी। वह चुप बैठी रही। ऊषा उसके उठते क्रोध को, अवरुद्ध हो जाने के अमर्ष को देखकर चुप नहीं हुई। वह जैसे इन सबसे परे थी। उसने रुककर कहा—'तुम्हें पीड़ा नहीं हुई है। किन्तु उसका नहीं होना असम्भव है। तुम्हें कांटा चुभ गया है। सोचती होगी, कांटा मुझे चाहता है, तभी तो मुझमें चुभा है, कांटा तो निकल जाएगा, मगर ज़ख्म आसानी से नहीं जाएगा।'

लीला निर्बोध बैठी रही। ऊषा भी अब गम्भीर हो गई थी। लीला को उसकी बात अच्छी लगकर भी कुछ बिल्कुल ठीक नहीं लगी थी। उसने केवल इतना ही कहा—'मैं समझी नहीं; तुम यह सब क्या कह रही हो।'

ऊषा ने अजीब जवाब दिया—'तुम्हारी मर्जी।'

'काम कर रही हो ? करो। मैं अभी किताबें लेकर आती हूं।'

'आओगी ज़रूर, गुस्सा तो नहीं हुईं ?'

'नहीं, गुस्सा क्यों होने लगी ?'

लीला चली गई। ऊषा फिर काम करने लगी। थोड़ी देर बाद उसने जब सिर उठाया, तो देखा भगवती लीला को कोई किताब बता रहा था। लीला उसकी बात न सुनकर उसका मुख देख रही थी···

ऊषा के होंठों पर मुस्कराहट खिल उठी। वह उठी और भगवती के पास जाकर बोली—'हमें तो आप भूल ही गए।'

भगवती एकदम सकपका गया। पहले वह समझा कि लीला ने उससे यह कहा है। किन्तु ऊषा को देखते ही वह मुस्करा उठा।

'वाह, आप तो बड़ी जल्दी भूल जाती हैं। आपसे कहा तो था कल कि मैंने आपके नाम को छपवाकर फ्रेम करवा लिया है।' तीनों ठठाकर हंस पड़े। लाइब्रेरियन की बूढ़ी आंखें चश्मे के भीतर से झांकने लगीं। इससे पहले कि कोई कुछ कहे, भगवती 'ज़रा माफ कीजिए' कहकर लाइब्रेरी की ऊपरी मंज़िल में पहुंच गया।

ऊषा ने लीला को देखा, मुस्कराई और धीरे से कहा—'पत्थर है। पानी में फेंक दो। खुद जाकर तह में बैठ जाए, ढूंढ़े न मिले और ऊपर सैंकड़ों भंवर पड़ जाएं···'

लीला तृप्त-सी सुनती रही।

12

ज्वार आया, सब पानी से ढंक गया। भाटा आया, पानी उतरने लगा। हर एक चीज़ भीगी-भीगी-सी गन्दी नज़र आने लगी। जिस हलचल ने रहस्यों की गन्दगी को एक कर दिया था वह धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। और नाविक जिसे तब केवल अपने प्राणों की पड़ी थी, अपने लुटे घर की याद करके रोने लगा। कॉलेज का सदर होस्टल खास इमारत से दूर न था। हरी और वीरेश्वर सीढ़ियों पर बैठे थे। खिड़की से वे सड़क देख सकते थे, किन्तु लटकती बेलों के कारण से उन्हें देख सकना आसान न था। दोनों कुछ देर बिलकुल चुप बैठे रहे। वीरेश्वर चुपचाप अपनी सिगरेट पी रहा था। वह उस समय एक प्रश्न था। जो कुछ वह सुनना चाहता था, जानता था। उससे भूल हो गई थी। किन्तु हरी सिगरेट के धुएं में धूमिल एक चिन्ता में दबा जा रहा था। दोनों चुप थे।

वीरेश्वर ने मौन तोड़कर कहा—'हरी! तुमने अपनी हार को बहुत अपना लिया है।'

'नहीं,' वह एक सूखी हंसी हंसा। 'मैंने अपनी हार को अपने से बहुत दूर हटा

दिया है। सज्जाद की पूरी पार्टी जीत गई है। मैंने, बताओ तुम लोगों के लिए क्या-क्या न किया? शुरू से आखीर तक तुम्हारे साथ रहा, मगर तुम माने ही नहीं। हार गए न?' वह हंसा। उसकी हंसी से वीरेश्वर छिप गया। हरी फिर कहने लगा—'मुझे अपने हारने का बिल्कुल अफसोस नहीं है। अफसोस है तुम्हारी हार का।'

वीरेश्वर ने आंखें नीची कर लीं। वह यह नहीं देख सका कि हरी के होंठों पर विद्रूप की कुटिल हंसी निःशब्द संतरण कर रही थी।

हरी ने कहा—'तुम साफ-साफ क्यों नहीं कहते?'

'कहने को अब रहा ही क्या है? लेकिन फिर भी मुझे यह नहीं मालूम था, कि तुम भी मुझे दगा दोगे। तुमने मुझसे वायदा किया था कि तुम सदा मेरे साथ रहोगे। तुमने अपने आपको धोखा दिया। जिधर कला ने तुम्हारी नकेल पकड़कर तुम्हें मोड़ दिया, तुम उधर ही चले गए।'

'बिल्कुल नहीं। मैं यह सब सुनना नहीं चाहता। मैं सदा से ही विचारों की आज़ादी का हामी रहा हूं और तुम मुझे जानकर भी इस तरह मेरे ऊपर ज़ोर डालते रहे। तब बताओ मैं क्या करता?'

'हो क्या तुम मुझसे साफ-साफ नहीं कह सकते थे कि तुम मुझे वोट नहीं दोगे?'

वीरेश्वर चुप हो गया। हरी कहता गया—'कालेज में आकर हम मिलते हैं, एका करने के लिए, आज़ाद होने के लिए। मगर होता क्या है? हम बंटते चले जाते हैं और हमारी रग-रग में गुलामी भर जाती है। रानी से मैंने पूछा था कि यह सब उसे कैसा लगा? उसने कहा कि वह सब सपने का-सा था, आता था और चला जाता था। उसने कहा था कि जीवन में इन सबका कोई महत्त्व नहीं। तुम कहो न? अपने विषय में तुम इतना सोचते हो, कला के बारे में भी कुछ कहो न?'

वीरेश्वर चौंककर कह उठा—'तुम मुझे जानते हो, फिर भी ऐसी बातें कर रहे हो? कालेज की लड़कियां कालेज में ही सुन्दर लगती हैं, बाहर नहीं। इसलिए मैं स्वतन्त्रता का हामी हुआ। सिर्फ स्त्री-पुरुष के बन्धन तोड़ने के लिए मैंने कला से दोस्ती की है। मैं एक बार दिखा देना चाहता हूं कि सेक्स लड़के और लड़की की दोस्ती में नहीं भी आ सकता है। मैं तुम्हारा दोस्त हूं, मगर तुम्हारी बहुत-सी बातें मुझमें नहीं हैं। मैं एक खास दिमागी सतह तैयार कर लेना चाहता हूं। और तुम? तुमने सचमुच कालेज की सारी नियामतों की नुमाइश की है। पढ़ने आए और फैशन सीखा और समझे सिर्फ इश्क करना। क्या मैं कुछ गलत कह रहा हूं?'

दोनों फिर चुप हो रहे। सीढ़ी के बगल के कमरे से आवाज़ आ रही थी—'वीरसिंह, तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज सारा हिन्दुस्तान गुलाम है। फैशन, मुहब्बत वगैरह हमारी जड़ों को काटते चले जा रहे हैं। सोचो एक बार, मां को खाने को नहीं है, बच्चे दूध के लिए तरस रहे हैं। रईसों के तो सब कुछ है, केवल एक गुलामी उन्हें कभी-कभी कुरेद उठती है। तब मध्य वर्ग में विद्रोह लाकर क्या होगा? हमें जगाना होगा गरीबों को; उन अन्धों की आंखें खोलनी हैं, जिन्हें यह भी नहीं मालूम कि उनमें भी पुतली है, जिसकी ताराओं में सारे संसार का प्रकाश भरा पड़ा है। बोलो वीरसिंह, कालेज के चुनाव बन्द करवाने का प्रयत्न करके क्या फायदा होगा?

हम-तुम पकड़े जाएंगे और आज की हालत में कोई चूं भी नहीं करेगा।'

'और करने को हमीं क्या कर लेंगे ?' एक ओर आवाज ने कहा।

'ठीक कहा है सुन्दरम ने। बिल्कुल यही होगा।'—पहली आवाज़ ने निश्चय से कहा।

'कामरेड रहमान ! एक बार ठण्डे होकर सोचो। तुम दो बार जेल हो आए हो। जेल से तुम्हें डरना नहीं चाहिए। एक देशी रियासत में तुम बगावत करके विद्यार्थियों को कितना जगा चुके हो ! यह तुम स्वयं नहीं जान सकते।'

'लेकिन दो साल बिगाड़ दिए मैंने। आज मैं भूखों मर रहा हूं। सारे कामरेड ज़बानी बात करते हैं और बाल संवारकर लड़कियों के पीछे घूमा करते हैं।'

'वे गद्दार हैं। तुम्हारी कुर्बानी पर मार्क्स आंसू बहाएगा। काकेशस के पार का वह कामरेड, वह पामीर के उस तरफ का मसीहा, वह आदमीयत का एकमात्र बचानेवाला स्तालिन तुम्हारे गोशे-गोशे के लिए...'

'नानसेंस वीरसिंह ! तुम अभी भी इस बुर्जुआ दकियानूसी को नहीं छोड़ सके। मैं आसमान की हवाई सल्तनत के लिए रोज़े नहीं रखना चाहता। उसके दरवाज़े खुलें या बन्द रहें, मुझे इससे कोई मतलब नहीं। और तुम्हारा प्रस्ताव, कि तीन-तीन महीने के लिए हिन्दू, मुसलमान और ईसाई प्रेसीडेंट हों, उसमें भी काफी अड़चनें हैं। ऐसी हालत में सब वही समय मांगेंगे जब सबसे ज़्यादा काम और नाम हो।'

'मगर वह तो हल हो सकता है।'

'बिल्कुल ठीक है।'—सुन्दरम बोला।

'वीरसिंह ! फिर भी यह इतना सहज नहीं है।'

'कामरेड रहमान, तुमको यह नहीं भूलना चाहिए कि विद्यार्थी-संघ कम्यूनिज़्म को लेकर नहीं बनाया गया है। भेड़ें मुश्किल से कब्ज़े में आई हैं। निकल न जाएं हाथ से। अब कामेश्वर आए तो मुमकिन है कुछ काम चले।'

'उससे क्या काम चलेगा ? डिप्टी कलक्टरी करेगा या जेल जाएगा ?'

'मगर वह हमसे हमदर्दी रखता है।'

'तो क्या हम भीख मांगते हैं ?'

'ऑर्डर, ऑर्डर,' सुन्दरम चीख उठा। 'वह गद्दार है। हमें उससे कुछ नहीं करना है। वह आ जाएगा कम्पटीशन में तो जानते हो क्या कहेगा ? कहेगा, बैठते बहुत हैं, आते हैं मगर कम। और वह हमें मैटरनिख की तरह नफरत से बेकार करार देगा। हमें उससे कोई मतलब नहीं है। बोलो रहमान, यह अपना भय है। हमें उससे कोई सम्बन्ध रखना है, या नहीं ?'

'नहीं,'—हथौड़ा हंसिए के पीछे बज उठा।

इसके बाद एक गंभीर आवाज़ सुनाई दी—'बराबरी, आज़ादी और अमन के लिए मरनेवाले सदा शहीद हैं। हमें लाल खून देखना है, लाल शीशे का चश्मा नहीं लगाना है।'

फिर दरवाज़ा खुलकर बन्द होने की आवाज़ आई। फिर एक भयानक उबा देनेवाला सन्नाटा छा गया। बेल हवा में हिल पड़ी। हरी दूसरी सिगरेट जला रहा

था। कुछ लड़के-लड़कियां काम से या बेकाम सड़क पर चल रहे थे। वे दोनों चुपचाप बैठे रहे। हरी ने मुस्कराकर कहा—'वीरेश्वर, क्या कामेश्वर सचमुच गद्दार है ? क्या वाकई ऐसे आदमी को गद्दार कहा जा सकता है ?'

वीरेश्वर ने सुना नहीं। देर से चिन्तामग्न था। आज वह विह्वल-सा समुद्रतीर पर पड़ी मछली की तरह छटपटा रहा था। आज वह फंस गया था। जैसे सारा सागर, समस्त लहरों का उन्माद उस एक मत्स्य के निकल जाने पर अगाध हाहाकार बन गया हो। मनुष्य अपने को केन्द्र बनाकर अपने चारों ओर समाज का जाल बिछाने का दंभ करता है। किन्तु स्वयं है भी, नहीं भी है, जैसी फिसलती गांठ से कभी सुलझन का तार सीधा होकर झनझना नहीं सका। हरी के प्रश्न से उसे कोई उत्सुकता नहीं हुई। हरी ने अपने आपसे कहा था, सूनेपन से कहा था।

चुनावों के कारण कितने लोगों में आपस में झगड़ा नहीं हो गया होगा ? हरी एक व्यक्ति हार गया। किन्तु चुनाव के समय उस्तादी की ज़रूरत होती है, दोस्ती का क्या लेना-देना। सज्जाद को सारे मुसलमानों ने वोट दिए। कुछ हिन्दू और ईसाई भी उसके साथ हो गये। वह जीत गया। हार गया कमल। चाल नहीं चली। समर ने हमेशा बेवकूफियां दिखाई हैं। किन्तु कटनेवाला खेत काट दिया गया, बोनेवाला बो दिया गया। यह अकेला एक कौओं को उड़ानेवाला बीच का बीच में कौन रह गया ? हरी।

वीरेश्वर को मन में ग्लानि हुई। रानी रेनोल्ड के पीछे ही हुआ है यह सब। मैक्सुअल की सांप्रदायिकता के कारण सब ईसाई इसके विरुद्ध हो गए। स्त्रियों के पीछे झगड़ा होना आवश्यक ही था। कोई कर भी क्या सकता था। मगर भीतर से उसी समय जाने कौन वीरेश्वर से बोल उठा—'तुम धोखा दे रहे हो। तुमने कमल के लिए जो चाल खेली थी उसमें हरी का दोगला करार दिया जाना ज़रूरी था और चूंकि साम्राज्य की पनाह नहीं थी, वह मारा गया।'

कोई भी व्यक्ति सहज ही अपनी गलती मानकर आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार नहीं होता। कोई न कोई बात ऐसी होनी चाहिए जिसके सहारे वह पूरी तरह नहीं, तो कुछ हद तक ठीक रह सके। वीरेश्वर का कीड़ा कुरेदकर पंजे गड़ा उठा। उफ् ! उसने मन ही मन दुहराया—आखिर मैक्सुअल भी तो था। रानी रेनोल्ड—कामचलाऊ ठीक। मगर यह हरी का प्रेम अभी तक तो कुछ समझ में नहीं आया।

हवा चल रही थी। मनमाने झकोरे चल रहे थे। मैदान की बरसात में बढ़ी घास लहरों-सी हवा में हिलोरें भर रही थीं। मेंहदियों में एक सनसनाहट कांप उठती थी। बेल झूमर ले रही थी। बालों का एक गुच्छा हरी के माथे पर खेल रहा था। वह उसे बार-बार हाथ से ऊपर करता था, किन्तु हवा आती थी सीरी, सुखद सीरी और वह गिरकर फिर चंचल-सा आंदोलित हो उठता था। हरी के मुरझाए चेहरे पर अभी भी जीवन के स्वप्न की अधमुंदी झलक थी। वह भी विद्रोही था—किन्तु मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय स्वप्न सदा निराशा की ओर खींचते चले जाते हैं।

आसमान पर बादल छा रहे थे, पांच हज़ार फुट से ऊंचे होंगे। काले-काले जल-धर, भारिल कंपित मेघ। मजनूं की अलकों से—लैला के खुमार से। क्षितिज पर नीलिमा एक ठंडक लिए बढ़ती चली आती थी, जिसमें पीपल के खड़खड़ाते, चमकते

पत्ते वेग से कांप रहे थे।

वीरेश्वर देखता रहा। कालेज में से एक हमिंग आवाज़ आ रही थी जैसे लंका-शायर की मिलें फेल हो गई हों और बाहर निकलते ही बेकारी के अतिरिक्त और कोई स्वागत नहीं करेगा। वे दोनों सिगरेट पीते हुए चुपचाप बैठे रहे।

'वीरेश्वर!'—हरी ने कहा—'तुमने दो साल से मेरे साथ एक नाव को खेया है, इसीलिए तुमसे दूर होने की हिम्मत मुझमें नहीं रही है। रानी के प्रेम के वे प्रारम्भिक दिन! जब हमें कट्टर ईसाइयों ने बदनाम किया था, उस वक्त तुम विचारों की स्वतन्त्रता के बल पर मुझे कितनी शक्ति देते रहे थे। रानी तुमपर विश्वास रखती थी, मगर आज वह तुमसे नफरत करती है।'

वीरेश्वर हंसा। हंसा कि नफरत की उसे कुछ परवाह नहीं है। वह स्वयं कब चाहता है कि कोई उससे प्रेम करे, या घृणा ही। वह सर उठाकर बोला—'मैं जानता हूं कि मुझसे गलती हुई है। मगर कुसूरवार मैं सिर्फ तुम्हारे सामने हूं और किसी से मुझे कोई मतलब नहीं। कोई मेरे बारे में कुछ भी सोचे!'

'कला की भी नहीं?'

विद्रूप! उपहास की उच्छृङ्खल तृष्णा!

'नहीं, कला की भी नहीं, अपनी भी नहीं, तुम्हारी भी नहीं···किन्तु तुम मेरे दोस्त हो···'

हरी हंस पड़ा। उसने कांपती हुई आवाज़ में कहा—'वीरेश्वर!'

वीरेश्वर चौंक उठा। उसने उद्विग्न होकर कहा—'यह क्या कह गए तुम? मुझे अपना दोस्त भी नहीं समझते? क्या तुम्हें नफरत हो गई है?'

'नहीं!'—हरी का सर झुका हुआ था। वीरेश्वर ने देखा, उसकी आंखों में आंसू छा रहे थे, डबडबा आए थे। वीरेश्वर कांप उठा। यह क्या हुआ? अविश्वास की परम्परा एक व्यक्ति से जाति में भर सकती है। वह अंधकार की प्रथम हुंकार है।

पानी की रिमझिम बूंदें टपक रही थीं। सुदूर हिन्द महासागर का संदेसा लाने-वाली घटाएं बूंद-बूंद करके झर रही थीं, जीवन बरसा रही थीं।

दोनों बड़ी देर तक बैठे रहे, विकारों की प्रतिच्छाया से, अनमनेपन में तल्लीन बैठे रहे।

शाम को जब वीरेश्वर घूमने निकला, उसने देखा, रेस्तरां के बाहर फुटबाल टीम कालेज-कलर पहने बोतलें पी रही थी।

खिलाड़ियों के सारे कपड़े पसीने से तर थे। टीम हार गई थी, जैसे किसान खेती करके खड़ा था, मगर ज़मींदार के कारिंदे उसकी मेहनत को छीन ले गए थे, अपने लिए नहीं, दूसरों की सल्तनत का एक नया खम्भा बनाने के लिए।

और रेस्तरां के भीतर सज्जाद की पार्टी बिजली के पंखों में पार्टी उड़ा रही थी। आदमी के लिए जानवर काटकर बनाया गया था। वीरेश्वर ने उदासी से उन्हें देखकर नफरत से मुंह फेर लिया। उन्होंने वीरेश्वर को देखा, जैसे देखा नहीं। मगर कोफ्त दरवाज़े के बाहर तक तार बनकर खिंच आई। उसकी उदासी में ही उनका हर्ष

था, क्योंकि पराजित का भग्न हृदय विजेता का सबसे बड़ा वैभव है।

सामने से साइकिल पर हरी आ रहा था। वह आकर उसके पास रुक गया। वीरेश्वर ने उसे एक सिगरेट दी और दियासलाई बढ़ाकर सुलगा दी।

'चलते हो घूमने ?'—वीरेश्वर ने पूछा।

'तुम तो जानते हो मेरा घूमना,'—हरी ने मुस्कराकर कहा।

'आओ चलो।' उसने अपनी साइकिल पकड़कर घुमा दी और दोनों चल पड़े। पैरों के नीचे काली सड़क अपनी स्वच्छता के गौरव में बेसुध पड़ी थी। सुबह का कालेज का शोर एक तमीज़ और गाम्भीर्य लिए होता है और शाम के शोर में यौवन की चंचलता होती है, एक टीस होती है—यादों की, अरमानों की, ख्वाहिशों की और निराशा की तड़प लिए।

धीरे-धीरे बादल बढ़ते आ रहे थे और एक ओर से पीला अंधेरा बरस उठा। दोनों चुपचाप चले जा रहे थे। सड़क के दोनों तरफ मैदानों में खेल हो रहे थे। पास के मुहल्लों के बच्चे वहीं हरी घास में खेलने आ जाते थे और उनके संग का एक-आध नौकर रात्रि पाठशाला के लिए आनेवाले गरीब अछूतों के साथ खेल रहा था। वाली-बाल और बास्केटबाल के खेल पर लोग अभी भी जमे हुए थे। कितना सुन्दर और सुहावना था यह जीवन; एक निश्चितता, एक उन्माद और जवानी की थोड़ी देर रहने-वाली थकावट, जिसपर वृद्धों का सरल हुलास, लड़कियों की प्यार-भरी निगाहें, बच्चों का कल्लोल और सांझ का नारंगी बैंजनी खुमार !

हरी ने कहा—'वीरेश्वर, मैं अपने-आपको इस आनन्द में भूल जाना चाहता हूं, मैं चाहता हूं, मुझे वे अपने पुराने दिन वापस मिल जाएं, जब मुझमें यह आग न थी।'

'यह नहीं हो सकता। अब तुम कठोर, केवल कठोर बन सकते हो, और कुछ नहीं। तुम्हें बचपन सिर्फ इसीलिए अच्छा लगता है कि तुम अपनी मां का दुलार याद करके विह्वल हो जाते हो, क्योंकि वैसा प्यार तुम्हें कभी नहीं मिलेगा। औरों का प्यार केवल वक्त काटने का एक समझौता है। पागल होकर एक-दूसरे को नहीं, अपने आपको धोखा देना है। अब जीवन में वह सुख नहीं है।'

'तो क्या सारा जीवन दुःख में ही बीत जाएगा ?'

'नहीं। हमारे-तुम्हारे जीवन में सुख नया-नया बनकर हर क्षण, हर पग पर हमें लालच देता आता है। तब हम-तुम उसमें कितना प्राप्त करते हैं ? हम उसकी अपने अतीत से तुलना करते हैं। मैं इन बुर्जुआ इमोशन्स (emotions) से ऊब गया हूं। अब मैं सोचता हूं कि बचपन से हम आराम से पलते हैं। स्कूल में आते हैं। हमारे ऊपर हमेशा किसी न किसी का दबाव रहना ही है, क्योंकि हम गुलाम हैं और साम्राज्य-वाद में कोई किसी का दोस्त नहीं होता। हर शख्स किसी न किसी का नौकर ही हो सकता है। फिर हम-तुम किताबी धोखे से जीवन बनाने की कोशिश करते हैं। इस राज में तो अपनी हीनता का अनुभव करा के ही प्रोफेसरों की इज्ज़त हो सकती है। उन्हीं रटी लकीरों पर चलना पड़ता है। कालेज पश्चिम की कहता है, घर पूर्व की। वहां हम देखते हैं, सूरज डूब रहा है और यहां तब जब कि सूरज बहुत दूर चला गया है। हम दुगुने अंधेरे में रह जाते हैं। समाज की मुखालफत न कर सकने के कारण हम एक

मानसिक कायरता में डूबते चले जा रहे हैं। यह जीवन नहीं है। जीवन है आक्सफोर्ड में, कैम्ब्रिज में, कैलीफोर्निया में। इन मुल्कों के लोग आज़ाद हैं। दुनिया की कौमों में उनकी इज़्ज़त है। वे अपने आप जो कुछ हैं, वही हैं; हमारी तरह काट-छीलकर किसी दूसरी चीज़ के लिए जबर्दस्ती फिट नहीं किए जाते। कहां है वह आज़ादी का गर्म खून! देखो, सड़कें ही कितनी गरीब हैं! कितनी सड़ी मौत की-सी बेहोशी है! आज दुनिया में इतना कष्ट, इतनी पीड़ा है कि दुनिया की हर समझदार चीज़ गौतम बुद्ध हो सकती है। हम-तुम तो वंजर के फूल हैं। प्रोफेसरों को ही देख लो। अपने जमाने के दकियानूसी विचार लिए खड़े हैं। वे उस जमाने की बची खुरचन हैं जब हिन्दुस्तान की गुलामी को पूंजीवाद का सहारा मिला था और अपने कमीने कायरपन को ईश्वर का अन्याय कहा गया था।'

वह हांफ रहा था।

हरी चीख उठा—'यह सब तुम क्या बक रहे हो? इस अमन के ज़माने में?'

'दमन!'—वह ठठाकर हंस पड़ा। 'इस अमन को बचाने के लिए दमन सोचा गया है। लेकिन अगर तुम यह सोच सकते कि वर्षा में कमरे में बैठने से बेहतर हवाई जहाज़ में उड़ना है, तो तुम यह भी सोचते कि दलदल से तूफान कहीं अच्छा हो सकता है।'

इस वक्त गहरा पीलापन आसमान से उतर आया था।

'आंधी आनेवाली है बीरू, जल्दी लौटो।'

आंधी भयंकरता से चल रही थी। लोगों में एक फुर्ती आ गई थी। सब अपने-अपने क्षणिक मंज़िले-मकसूद पर जल्दी से जल्दी पहुंच जाना चाहते थे। खेल बन्द हो गए। डेविड होस्टल की छत को पैरों की दो-चार धम-धम के बाद लड़कियां खाली कर गईं। राह-किनारे का भूखा भिखारी शून्य दृष्टि से चुपचाप उस आंधी में बैठा था। उसे जाने को कहीं जगह न थी। वह महादेव था, वह नहीं जिसपर हिन्दू पानी चढ़ाते हैं, बल्कि वह जिसपर प्रकृति रोती है।

पेड़ कोलाहल करके झूम रहे थे, मानो टूट ही पड़ेंगे। सब जगह धूल छा गई थी। आंखें खोलना असम्भव हो गया था और उसके बाद ही भयंकर पानी पड़ने लगा।

मगर लीला को इन सबसे कोई गरज़ न थी। ड्राइवर ज़रा गौर से चलता हुआ तेज़ी से मोटर को बढ़ा ले गया। वीरेश्वर उस गरजते तूफान के शोर से होड़ बदकर हांफते-हांफते कह रहा था—'इन मोटर के पहियों से...'

तूफान की विजय हुई। हरी कुछ भी नहीं सुन सका। मुंह पर पानी की धारा बजती रही...

जब वे लोग भीगकर रेस्तरां पहुंचे तो पीटर बरामदे की कुर्सी पर बैठा अपने गीले पैरों को रूमाल से पोंछता हुआ राबर्ट्सन से कह रहा था, अंग्रेज़ी में—'कितना अजीब मुल्क है! कुछ देर पहले कितना सुहावना था और अभी-अभी धूल-भरा तूफान ...ओह, भयानक...'

राबर्ट्सन ने संक्षिप्त उत्तर दिया—'ट्रापिक्स!' उसके होंठ व्यंग्य हास्य से कुछ कांपकर मुड़ गए।

वीरेश्वर का कौमी घमण्ड एक बार मन मसोसकर रह गया। वह कुछ बोला नहीं। सांवला बर्फ कूट रहा था। मास्टर बरामदे में एक कोने में बैठा हिसाब लिख रहा था। मनोहर 'सावन रिझावन' में मस्त हो रहा था। कालेज अपनी हरियाली से, बरसते पानी की सफेदी में, किसी पहाड़ की ऊंची घाटी-सा लग रहा था, सुन्दर, मनोहर, निस्तब्ध, सुनसान, एकाकी, गम्भीर··

उस समय भगवती क्लोरीन पर कलम घिस रहा था। आज उसका हृदय कुछ भारी-भारी-सा था।

13

भगवती ने सोफे पर बैठते हुए कहा—'आपने मुझे याद फरमाया था ?'

इन्दिरा सकपका गई। उसने पूछा—'आप कैसी बातें कर रहे हैं ? मैंने तो भैया से कहा था। उन्होंने कुछ नहीं कहा ?'

'जी नहीं'—भगवती ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'आप बीच में कहीं चले गए थे ?'—इन्दिरा ने फिर पूछा।

'जी हां, गांव गया था, मां से मिलने।'

'आपका गांव कैसा है ? एक बार हम भी गांव देखना चाहती हैं। आज तक गांव ही नहीं देखा।'—इन्दिरा ने उत्तर दिया, 'कहते हैं गांव में प्रकृति का राज चल रहा है अभी तक।'

'अब की छुट्टियों में चलिएगा ? लेकिन आप ठहरेंगी कहां ?'—भगवती ने चिन्तित होते हुए कहा।

'क्यों, आपके घर ? खाना भी नहीं देंगे आप ? यह भी क्या आपकी मर्ज़ी है ?'—इन्दिरा ने अधिकार जताते हुए कहा।

'लेकिन, आप मेरे घर में नहीं रह सकेंगी ? मेरा घर आपके नौकरों के घर से भी खराब है, छत पर फूंस है, दीवालें मिट्टी की हैं, कच्ची। ज़मीन पर गोबर लिपा होगा। न आपको फर्नीचर मिलेगा, न खाने-पीने को टोस्ट और चाय। वही रूखी रोटियां खानी पड़ेंगी ? तैयार हैं ?'—भगवती ने हंसते हुए कहा।

'बिल्कुल।' इन्दिरा ने कहा—'यह तो एक नया अनुभव होगा। इन परिस्थितियों से आप यदि जीवन-भर संघर्ष कर सकते हैं, तो क्या हम दो-चार दिन भी नहीं रह सकते ? आपका मेरे बारे में विचार बिलकुल गलत है। मैं धन पर कोई अधिक ध्यान नहीं देती। आप ?'

'मैं तो धन को ही एकमात्र शक्ति समझता हूं। जो पढ़ा है वह धन के कारण, जो पहनता हूं वह भी धन के कारण। फिर धन के लिए ही तो यह सारा संघर्ष है, मिस इन्दिरा ! उसे मैं कैसे झुठला सकता हूं ?'

इन्दिरा ने देखा, वह निस्संकोच अपनी दरिद्रता को उसके सामने खोल गया।

यह कहने में भी उसे कोई हिचक नहीं हुई कि वह उसके नौकरों से भी गया-बीता था। इन्दिरा उसके साहस पर प्रसन्न हुई। यदि यह मनुष्य धन को ठीक समझता है, तो वह स्वार्थी कहां रहा ? ठीक ही तो है ?

'तो आप गांव क्यों गए थे ?'—इन्दिरा ने उत्सुकता से पूछा।

'सच कह सकता हूं यदि आप उसे अपने आप तक सीमित रखने का वचन दे सकें।'

'आप कहिए। मैं प्रतिज्ञा करती हूं।'

भगवती ने कहा—'आप जानती हैं, मेरे गांव के ज़मींदार नाम के न सही, वैसे एक छोटे-मोटे राजा हैं। उनके यहां गवर्नर और कभी-कभी वायसराय भी शिकार करने जाते हैं। उनका एक लड़का है। उसका नाम है राजेन्द्रसिंह। हाल में ही इंग्लैण्ड से लौटा है। अब की गर्मियों में मसूरी गया था। वहां मिस लवंग से उसकी मुलाकात हुई और फिर वह उससे प्रभावित हो गया।'

'सच ?'—इन्दिरा ने चौंककर पूछा—'आपसे कहा उसने ?'

'जी, मैं तो उनकी प्रजा हूं,' भगवती ने हंसकर कहा—'मुझे उनके बाप मानते हैं, बेटा भी बाप की तरह ही स्नेह से रखता है। वह भी कभी मुझे गरीब कहकर दुतकारता नहीं। मैं पढ़ा-लिखा हूं, इसपर गर्व करना शायद मेरी मां को इतना नहीं आता, जितना उन दोनों को आता है। राजेन्द्रसिंह ने ही बताया। मसूरी में लवंग के साथ उन्होंने कई दिन, कई रातें काटीं ?'

'अच्छा ?'—इन्दिरा ने विस्मित होकर कहा। उसे इस कथा में आनन्द आया।

भगवती ने फिर कहा—'राजेन्द्रसिंह ने अपने पिता से यह बात मेरे द्वारा कहलवाई। पिता ने सुना और मुझसे लवंग के बारे में पूछा—मैंने कह दिया...'

इन्दिरा झुककर बैठ गई। वह गौर से सुनना चाहती थी। भगवती कहता गया—'लड़की सुन्दर है। कुंवर साहब को पसन्द है।' तब ज़मींदार ने पूछा—'चालचलन कैसा है लड़की का ?' मैंने कह दिया—'अच्छा है।' उन्होंने पूछा—'घमंड तो नहीं करती ? देशी ढंग से रह सकेगी ?' मैंने उत्तर दिया—'इतना तो मैं नहीं जानता। हां, कुंवर साहब चाहेंगे, तो सब ठीक ही होगा।'

दोनों ठठाकर हंस पड़े। इन्दिरा ने कहा—'कमाल कर दिया आपने। तब तो हम आपके गांव में किसी तरह भी जाएंगे ही। क्यों, शादी तो वहीं होगी ?'

'नहीं, जाना तो पड़ेगा ही। ज़मींदार साहब बूढ़े हैं। गठिया का ज़ोर है। चल-फिर नहीं सकते। वह गांव में ही विवाह करने देंगे। अगर विवाह करना हो तो लड़कीवालों को वहीं जाना होगा, क्योंकि वह कभी और कोई बात स्वीकार नहीं करेंगे। उनका यह विचार है कि वे एक पत्थर हैं, जिसके नीचे रियासत एक कागज़ों की गड्डी की तरह दबी पड़ी है और उनके हटते ही सब कागज़ इधर-उधर उड़ जाएंगे।'

इन्दिरा सुनकर हंस पड़ी। उसने कहा—'देखिए न ! आप बहुत अच्छी बातें करते हैं।'

भगवती झेंप गया। उसने सिर झुकाकर कहा—'यह तो आपकी महानता है वरना मैं किस योग्य हूं !'

वीरेश्वर का कौमी घमण्ड एक बार मन मसोसकर रह गया। वह कुछ बोला नहीं। सांवला बर्फ कूट रहा था। मास्टर बरामदे में एक कोने में बैठा हिसाब लिख रहा था। मनोहर 'सावन रिझावन' में मस्त हो रहा था। कालेज अपनी हरियाली से, बरसते पानी की सफेदी में, किसी पहाड़ की ऊंची घाटी-सा लग रहा था, सुन्दर, मनोहर, निस्तब्ध, सुनसान, एकाकी, गम्भीर··

उस समय भगवती क्लोरीन पर कलम घिस रहा था। आज उसका हृदय कुछ भारी-भारी-सा था।

13

भगवती ने सोफे पर बैठते हुए कहा—'आपने मुझे याद फरमाया था?'

इन्दिरा सकपका गई। उसने पूछा—'आप कैसी बातें कर रहे हैं? मैंने तो भैया से कहा था। उन्होंने कुछ नहीं कहा?'

'जी नहीं'—भगवती ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'आप बीच में कहीं चले गए थे?'—इन्दिरा ने फिर पूछा।

'जी हां, गांव गया था, मां से मिलने।'

'आपका गांव कैसा है? एक बार हम भी गांव देखना चाहती हैं। आज तक गांव ही नहीं देखा।'—इन्दिरा ने उत्तर दिया, 'कहते हैं गांव में प्रकृति का राज चल रहा है अभी तक।'

'अब की छुट्टियों में चलिएगा? लेकिन आप ठहरेंगी कहां?'—भगवती ने चिन्तित होते हुए कहा।

'क्यों, आपके घर? खाना भी नहीं देंगे आप? यह भी क्या आपकी मर्ज़ी है?'—इन्दिरा ने अधिकार जताते हुए कहा।

'लेकिन, आप मेरे घर में नहीं रह सकेंगी? मेरा घर आपके नौकरों के घर से भी खराब है, छत पर फूंस है, दीवालें मिट्टी की हैं, कच्ची। ज़मीन पर गोबर लिपा होगा। न आपको फर्नीचर मिलेगा, न खाने-पीने को टोस्ट और चाय। वही रूखी रोटियां खानी पड़ेंगी? तैयार हैं?'—भगवती ने हंसते हुए कहा।

'बिल्कुल।' इन्दिरा ने कहा—'यह तो एक नया अनुभव होगा। इन परिस्थितियों से आप यदि जीवन-भर संघर्ष कर सकते हैं, तो क्या हम दो-चार दिन भी नहीं रह सकते? आपका मेरे बारे में विचार बिलकुल गलत है। मैं धन पर कोई अधिक ध्यान नहीं देती। आप?'

'मैं तो धन को ही एकमात्र शक्ति समझता हूं। जो पढ़ा है वह धन के कारण, जो पहनता हूं वह भी धन के कारण। फिर धन के लिए ही तो यह सारा संघर्ष है, मिस इन्दिरा! इसे मैं कैसे झुठला सकता हूं?'

इन्दिरा ने देखा, वह निस्संकोच अपनी दरिद्रता को उसके सामने खोल गया।

यह कहने में भी उसे कोई हिचक नहीं हुई कि वह उसके नौकरों से भी गया-बीता था। इन्दिरा उसके साहस पर प्रसन्न हुई। यदि यह मनुष्य धन को ठीक समझता है, तो वह स्वार्थी कहां रहा ? ठीक ही तो है ?

'तो आप गांव क्यों गए थे ?'—इन्दिरा ने उत्सुकता से पूछा।

'सच कह सकता हूं यदि आप उसे अपने आप तक सीमित रखने का वचन दे सकें।'

'आप कहिए। मैं प्रतिज्ञा करती हूं।'

भगवती ने कहा—'आप जानती हैं, मेरे गांव के ज़मींदार नाम के न सही, वैसे एक छोटे-मोटे राजा हैं। उनके यहां गवर्नर और कभी-कभी वायसराय भी शिकार करने जाते हैं। उनका एक लड़का है। उसका नाम है राजेन्द्रसिंह। हाल में ही इंग्लैण्ड से लौटा है। अब की गर्मियों में मसूरी गया था। वहां मिस लवंग से उसकी मुलाकात हुई और फिर वह उससे प्रभावित हो गया।'

'सच ?'—इन्दिरा ने चौंककर पूछा—'आपसे कहा उसने ?'

'जी, मैं तो उनकी प्रजा हूं,' भगवती ने हंसकर कहा—'मुझे उनके बाप मानते हैं, बेटा भी बाप की तरह ही स्नेह से रखता है। वह भी कभी मुझे गरीब कहकर दुतकारता नहीं। मैं पढ़ा-लिखा हूं, इसपर गर्व करना शायद मेरी मां को इतना नहीं आता, जितना उन दोनों को आता है। राजेन्द्रसिंह ने ही बताया। मसूरी में लवंग के साथ उन्होंने कई दिन, कई रातें काटीं ?'

'अच्छा ?'—इन्दिरा ने विस्मित होकर कहा। उसे इस कथा में आनन्द आया।

भगवती ने फिर कहा—'राजेन्द्रसिंह ने अपने पिता से यह बात मेरे द्वारा कहलवाई। पिता ने सुना और मुझसे लवंग के बारे में पूछा—मैंने कह दिया…'

इन्दिरा झुककर बैठ गई। वह गौर से सुनना चाहती थी। भगवती कहता गया—'लड़की सुन्दर है। कुंवर साहब को पसन्द है।' तब ज़मींदार ने पूछा—'चाल-चलन कैसा है लड़की का ?' मैंने कह दिया—'अच्छा है।' उन्होंने पूछा—'घमंड तो नहीं करती ? देशी ढंग से रह सकेगी ?' मैंने उत्तर दिया—'इतना तो मैं नहीं जानता। हां, कुंवर साहब चाहेंगे, तो सब ठीक ही होगा।'

दोनों ठठाकर हंस पड़े। इन्दिरा ने कहा—'कमाल कर दिया आपने। तब तो हम आपके गांव में किसी तरह भी जाएंगे ही। क्यों, शादी तो वहीं होगी ?'

'नहीं, जाना तो पड़ेगा ही। ज़मींदार साहब बूढ़े हैं। गठिया का ज़ोर है। चल-फिर नहीं सकते। वह गांव में ही विवाह करने देंगे। अगर विवाह करना हो तो लड़कीवालों को वहीं जाना होगा, क्योंकि वह कभी और कोई बात स्वीकार नहीं करेंगे। उनका यह विचार है कि वे एक पत्थर हैं, जिसके नीचे रियासत एक कागज़ों की गड्डी की तरह दबी पड़ी है और उनके हटते ही सब कागज़ इधर-उधर उड़ जाएंगे।'

इन्दिरा सुनकर हंस पड़ी। उसने कहा—'देखिए न ! आप बहुत अच्छी बातें करते हैं।'

भगवती झेंप गया। उसने सिर झुकाकर कहा—'यह तो आपकी महानता है वरना मैं किस योग्य हूं !'

भगवती जानता है कि अपने मुंह से अपनी हीनता प्रकट करने में अपना कोई अपमान नहीं होता। इन बड़े आदमियों से अधिक नहीं मिलना चाहिए।

वह अपने कमरे से बहुत कम निकलता था। कामेश्वर और इन्दिरा से जो वह अपने स्वाभाविक रूप से मिल गया था, इसको देखकर इन्दिरा स्वयं अकेले में विस्मय करती। इस लड़के के बारे में विभिन्न मत थे। सब उसे किताबी कीड़ा कहते थे। सब उसे अभिमानी समझते थे। भगवती अपने अभाव से अपने आप संत्रस्त था। इन्दिरा से उसका संसर्ग नवीन भावना नहीं। कामेश्वर मित्र है, वह मित्र की बहिन है, जो कामेश्वर है वही इन्दिरा है। उन्होंने धन होते हुए स्नेह दिया है, भगवती ने दरिद्रता का पर्दा फाड़कर उनसे सम्बन्ध स्थापित किया है। किन्तु यह एकान्त का स्नेह है। वह कामेश्वर के घर कभी-कभी बुलाने पर चला जाता, अन्यथा कामेश्वर ही उसके कमरे में अधिकतर आता और अपने जीवन के उतार-चढ़ावों को उसके सामने सुख और दुःख की अटूट भावना के साथ सुनाया करता।

भगवती सोचता, कामेश्वर का जीवन हलचलमय है। वह एक अद्भुत व्यक्ति था। उसकी भावनाओं के क्षेत्र में सम और असम का कोई भेद न था। जो था वह केवल उद्वेग की अधीरता थी।

इन्दिरा ने कुछ देर चुप रहकर कहा—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। लवंग के भाई कभी भी लड़केवालों के घर जाना पसंद नहीं करेंगे। पैसे की इन्हें भी तो कोई कमी नहीं। ज़मींदार साहब को लड़के के विवाह में आना ही पड़ेगा। ऐसे मौके बार-बार तो आते नहीं। ज़मींदार साहब का क्या? दो डाक्टर साथ में आ जाएंगे। क्यों, मैंने ठीक कहा न?

'हो सकता है,'—भगवती ने सोचते हुए कहा—'मैं लड़केवालों को जानता हूं, आप लड़कीवालों को ज्यादा जानती हैं। फिर मैं लवंग के बारे में कुछ कैसे कह सकता हूं?'

'तब तो लवंग का विवाह यहीं होगा।' इन्दिरा ने हंसते हुए कहा—'यह भी इस साल की एक ही रौनक रहेगी। तुम चलोगे न? राजेन्द्र के साथ आना। ठीक है?'

भगवती ने कहा—'मैं आप लोगों में कहां···'

इन्दिरा ने कहने नहीं दिया। वह बोली—'बस, यही तो मुझे अच्छा नहीं लगता। बात-बात में आप अड़चन डालते हैं। आप इतनी inferiority complex (हीनत्व की भावना) से क्यों suffer (दुःख प्राप्त) करते हैं?'

भगवती कुछ उत्तर नहीं दे सका। उसने अपने हृदय के स्वच्छ पानी में एक कंकड़ के गिरने की आवाज़ को सुना और फिर किनारों को छूने के लिए लहरों के छल्ले गोल-गोल चक्कर काटकर फैलने लगे। इन्दिरा कुछ देर उसकी ओर निस्संकोच दृष्टि से अपलक देखती रही। भगवती ने भी देखा और उसमें कोई सिहरन नहीं हुई, क्योंकि उस दृष्टि में लाज नहीं, घृणा नहीं, केवल स्नेह था, ममता थी। और थी एक निर्दोष उज्ज्वलता, जो प्रतिबिंबित होकर शुभ्र प्रकाश के समान भगवती के अन्तस्तल में उतर गई थी।

इन्दिरा ने कहा—'आपको याद है, मैंने आपको आज बुलाया था?'

भगवती गंभीर हो गया। उसने अपनी ढाल फिर उठा ली। यह जो एक मणि

देखी थी, वह कथाओं के सर्प की थी। उसे डसने के कारण ही सर्प ने अपना फन पटका था, अपना विष उगल देने को। उसने स्वीकार करते हुए सिर हिलाया।

इन्दिरा ने फिर कहा—'यदि मैं आपके यहां आ सकती, तो स्वयं होस्टल के कमरे में आ धमकती; लेकिन उस ओर अपनी असमर्थता के कारण ही मैंने आपको बुलवाने की धृष्टता को अपना नारीत्व का अधिकार समझ लिया है।'

भगवती ने मन ही मन कहा—'अच्छा हुआ न आईं वरना दस आदमी दस नाम धरते।' फिर उसने इन्दिरा के बे-पर्दा जीवन को देखा। कितना विरोध था! फिर भी वह स्त्री थी। पुरुष स्त्रियों की फौज में निर्भय खड़ा हो सकता है, स्त्री पांच फौजियों में भी सुरक्षित नहीं होती।

इन्दिरा ने कहा—'अब मैं अपनी बात कहूंगी। आपको कुछ अवकाश है?'

'जी हां, कहिए'—भगवती ने कहा। वह समझ नहीं सका।

'कहना यही है कि अवकाश में आप मुझे अंग्रेज़ी पढ़ा दिया करिए।'—इन्दिरा ने कहा और लजा गई, जैसे वह कोई विवाह का प्रस्ताव था।

'पढ़ा दूंगा।' भगवती ने उपेक्षा से कहा—'लेकिन पढ़ा सकूंगा या नहीं यह तो···खैर किताब खुलने पर इसकी भी जांच हो जाएगी। वैसे तो जो मेरी पढ़ी हुई पुस्तकें होंगी पढ़ा ही दूंगा। इसके लिए इतना संकोच! कामेश्वर से कह दिया होता। वही कह देता।'

'मैं भैया से कह चुकी हूं। उन्होंने कहा—तुम भी तो बोलती हो उनसे। तुम्हीं जो कह देना। इसी से मैंने कहा···'

कहकर फिर जीभ को खींच लिया। दांतों को भी होंठों के भीतर। समझ में नहीं आया, रुपयों की बात कैसे करे? भगवती ने सहूलियत के लिए बात स्वीकार की है या मित्रता के लिए, यह वह निर्णय नहीं कर सकी। कहीं भगवती बुरा न मान जाए, लेकिन अगर नहीं कहा जाए तो कहीं वह पसोपेश में न पड़ जाए।

'आपका समय नष्ट तो न होगा?' इन्दिरा ने जांच की।

'जी नहीं, शाम को ही आ सकूंगा। लगभग छः बजे से सात तक। जब तक कोई खास काम नहीं पड़ेगा, निस्संदेह आऊंगा। शाम को कोई विशेष कार्य नहीं रहता। अकेले ही घूमने जाने का दोष है। कितने दिन पढ़ेंगी?'

'यही साल-भर तक,'—इन्दिरा ने उत्तर दिया।

'साल-भर?' भगवती ने प्रश्नवाचक मुद्रा से देखा।

'आपने कभी शायद अभी तक कोई ट्यूशन नहीं की?'—इन्दिरा पूछ बैठी।

ट्यूशन! शब्द ऐसे चुभा जैसे घोड़े की नाल में कील ठुकती है कि लोहा सदा के लिए चुभा रह जाए। वह सिहर उठा। इन्दिरा ने फिर पूछा—'आप क्या ठीक समझेंगे? मैं वही देने का प्रयत्न करूंगी।'

भगवती का मुख एकदम काला हो गया, जैसे उसका अपमान सीमा पार कर गया था। उसने कठोरता से कहा—'मैं आपसे कुछ भी नहीं लूंगा। यदि स्वीकार हो तो पढ़िए।'

इन्दिरा भौचक्की-सी रह गई। उसने आंखें फाड़कर देखा। पूछा—'क्यों?'

भगवती ने कहा—'मिस इन्दिरा ! आप लोगों में धन ही सबकी माप है ? मित्रता कुछ नहीं ?'

इन्दिरा संभल गई। उसने कहा—'आप बुरा मान गए। लेकिन आपने ही तो कहा था कि धन को आप बहुत महत्त्व देते हैं।'

भगवती को दूसरा चांटा लगा। तब यह लड़की उसकी गरीबी को दूर करना चाहती है ? उसे लोलुप समझती है ? भगवती का मुख घृणा से विकृत हो गया। उसने संयम त्यागकर कहा—'यदि आपको अपने धन का इतना अभिमान है, तो राह पर आपको अनेक भिखारी मिलेंगे। क्या आपको अपमान करने के लिए और कोई नहीं मिला ? मैं नहीं जानता था कि धन का संसर्ग मनुष्य से उसकी वास्तविकता को सदा के लिए छीन लेता है। यदि आप समझती हों कि मुझसे मिलकर आप मुझपर कोई कृपा कर रही हैं तो आप इस बोलचाल को तोड़कर ही मुझपर अधिक कृपा कर सकेंगी। मुझे क्या मालूम था कि कामेश्वर भी आपके इस कार्य में सहायक है, अन्यथा मैं यहां कभी भी न आता। आप मुझे रुपया देकर साबित करना चाहती हैं कि आप न होतीं तो मैं कभी भी नहीं पढ़ पाता। यह आपकी भूल है मिस इन्दिरा, एकदम भूल है।'

इन्दिरा सुनती रही। भगवती क्रोध में अधिक अच्छा लगता था। इसीसे मन ने कहा—तनिक और देख। जब वह फूत्कार करके चुप हो गया तो इन्दिरा ने अप्रभावित रूप से कहा—'तो आप मुफ्त पढ़ाएंगे, पढ़ाइए। मुझे इसमें भी कोई बाधा नहीं। लेकिन इस कृपा का क्या परिणाम होगा, जानते हैं ? लोग मुझे बदनाम करेंगे। ममी को तो मैं समझा लूंगी, लेकिन आम लोगों का मुंह आप रोक सकेंगे ? कहा तो आपने बहुत कुछ। मैं आपका अपमान कर रही हूं, मैंने भैया को मिलाकर षड्यन्त्र रचा है और भी न जाने क्या-क्या ? एक बात और कहूं ?'

भगवती ने सिर झुका लिया, जैसे वह लज्जित था। इन्दिरा ने कहा—'सम- के साथ कोई भी लड़की रहे, कोई संदेह नहीं कर सकता, लेकिन आप तो वैसे नहीं ! आपमें कुछ है, जो स्त्रियों को सहज ही अच्छा लग सकता है।'

भगवती घबराकर खड़ा हो गया। उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वह कमरे में घूमने लगा। हवा घुटने लगी। भगवती का मन पत्थर के नीचे दबने लगा। यह क्या हुआ ? तीर चला, लेकिन लगा अपने ही को। वाह रे तीरंदाज़ ! जिन्होंने उसे स्नेह दिया, उन्हीं पर उसने इतना बड़ा आक्षेप लगाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं की ! भगवती विक्षुब्ध हो गया। लोहे के दांतों ने उसके अभिमान के हाथों पर अपने आपको गचक दिया। इन्दिरा का प्रश्न अत्यन्त कठोर था। उसने विश्वास के साथ भगवती की सामर्थ्य और शक्ति को उसी के सामने, अपनी निर्बलता के बल पर खोल दिया था। यह कैसी पराजय है ? अपनी विजय की पत्तियां देखकर मुस्कराए कि पेड़ की जड़ में लगे पराजय के घुन को देख सिर धुने ? कुछ भी समझ में नहीं आया। इन्दिरा ने मुड़कर स्नेह से कहा—'भगवती !'

भगवती ने देखा, उसके चेहरे पर कोई तन्मयता नहीं, विश्वास नहीं। निष्प्रभ मलिन भावना का अव्यक्त हाहाकार था। यह संबोधन प्यार का एक बंधन बन गया, एक स्नेह की थपथपाहट बन गया। जैसे तुम्हारा कोई दोष नहीं। किन्तु इस प्रकार

उतावले क्यों हो गए ? तुम समझते हो, तुम्हारा अपमान करने के लिए ही हमने तुम्हें बुलाया है ? और यह निरभिमान संबोधन ! जिसमें मान का झूठा आवरण फाड़ दिया गया। मिस्टर-विस्टर सब पीछे छूट गया। मनुष्यता का यह सम्बन्ध तूफानमेल की तरह धड़धड़ाता हुआ आगे बढ़ गया। भगवती लाचार हो गया, किन्तु मिट्टी खुद चुकी थी, गड्ढे को भरने पर भी उसमें वह समतल नहीं हो सकता था। इन्दिरा मुस्करा रही थी। उसने फिर कहा—'नाराज़ हो गए ?'

भगवती उसके पास आ गया। उसने कहा—'मुझे क्षमा करो। मुझसे भूल हो गई।'

'कैसी भूल ?' इन्दिरा ने हठात् पूछा। 'गुबार तो भूल नहीं होता। कहो कि तुमने अपने ही विचारों में पड़े रहने के कारण मुझे गलत समझा। अब तो कोई द्वेष नहीं ? क्या तुम ऐसा सोच सकते हो कि भैया और मैं कभी भी तुम्हारा अपमान कर सकते हैं ?'

भगवती ने बालक की भांति कहा—'नहीं। मैंने गलत सोचा।'

इन्दिरा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—'भैया तुमसे स्नेह करते हैं। मैं जानती हूं, वह अपना जीवन Candle (मोमबत्ती) की तरह जला रहे हैं। मोम को पिघलने के बाद फिर ढालते हैं, फिर जलाते हैं। किन्तु सबमें केवल आग ही नहीं, एक पिघलने-वाली वस्तु भी होती है। क्या तुम उसी का इतना तिरस्कार कर सकोगे ? माना कि तुम धनी नहीं हो, भैया के पास काफी धन है, किन्तु क्या इसी से मनुष्यता का जो क्षेत्र है उसमें वह किसी और को घुसने नहीं देंगे ? क्या तुम उनके धनी होने के अपराध के कारण उन्हें कभी भी मनुष्य के, अपने जैसे मनुष्य के रूप में स्वीकार नहीं कर सकोगे ?'

इन्दिरा 'तुम' पर आ गई थी। दूसरा बन्धन टूट गया था। भगवती ने सोचा। फिर भी दिमाग में एक बात आई कि वह और कामेश्वर कभी एक धरातल पर नहीं चल सकते। संसार की दृष्टि में कामेश्वर का स्नेह दया है, भगवती का स्नेह खुशामद। उसने फिर भी इन्दिरा से उस समय यह कहना उचित न समझा। वह उसी के सोफे पर बैठ गया। इन्दिरा खिसकी नहीं। दोनों निर्विकार-से बैठे रहे। भगवती ने कहा—'लेकिन एक बात कहूंगा। बुरा तो न मानोगी ?'

'नहीं।' इन्दिरा का स्पष्ट स्वर गूंज उठा—'बुरा मानूंगी तो क्या वह मेरा अधिकार नहीं होगा ?'

भगवती ने उत्तर दिया—'मैं तुम्हें पढ़ाने नहीं आऊंगा।'

इन्दिरा चौंक उठी। उसने उत्तेजित स्वर से कहा—'क्यों ? क्यों नहीं आओगे ?'

भगवती के निरपेक्ष शब्द उसके कानों में उतर गए—'यदि मैं तुमसे रुपया लूंगा, तो मैं तुमसे समानता का व्यवहार करने की परिस्थिति में नहीं रहूंगा। तुम कहोगी, यह मेरी मूर्खता है। किन्तु मैं जानता हूं, फिर संसार मुझे तुम्हारा नौकर कहेगा और कुछ दिन बाद तुम भी अपने आपको उस प्रलोभन में गिरफ्तार पाओगी।'

'तुम ऐसा अनुभव करते हो ?'—इन्दिरा ने अनियमित उत्कंठा से पूछा।

'मैं गलत हो सकता हूं, किन्तु ऐसी मेरी भावना है। मैं नहीं चाहता, तुम मुझे ऐसी बात करने पर बाध्य करो जिससे मुझमें हीनता का आभास हो, चाहे स्नेह के ही

नाते सही ।'

भगवती चुप हो गया । इन्दिरा का हृदय क्रोध से भीतर ही भीतर जल उठा । ऊषा क्या कहेगी ? उसने भगवती का हाथ पकड़कर कहा—'तुम मेरा अपमान कर रहे हो ।'

भगवती ने शून्य दृष्टि से छत की ओर देखते हुए कहा—'भगवती स्नेह का प्रतिदान न दे सके, भले ही ऐसा हो, क्योंकि वह असमर्थ है, किन्तु स्नेह का अपमान करने की स्पर्धा करेगा, ऐसा वह पशु नहीं है । यदि तुम्हारे मन की बात न मानने में मेरा आनन्द है, तो क्या तुम वह भीख मुझे नहीं दे सकतीं ? दो, यदि तुम अपने भैया की भांति मुझसे स्नेह करती हो तो दो ! यह मेरी-तुम्हारी बात है । इसमें क्या मुझे कुछ मांगने का कोई अधिकार नहीं है ?'

इन्दिरा लाचार हो गई । उसने भगवती का हाथ छोड़ दिया । भगवती ने फिर पूछा—'नाराज़ हो ?'

इन्दिरा ने कहा—'नहीं ।' एक बार नीचे का होंठ फड़का जैसे वह रो देगी और फिर वह हंस दी । भगवती ने निरवधि उपेक्षा से देखा ।

तलवार दुधारी थी । यह भी काटा, वह भी और फिर जोड़ दिया । भगवती देखता रहा । इन्दिरा निस्तब्ध-सी कुछ सोचती रही ।

कमरे में एक क्लान्त नीरवता घूमने लगी, जैसे आकाश में एक बादल का भूला हुआ टुकड़ा घूमता है, भटकता है, सरकता है···

14

यद्यपि कामेश्वर ने कहा कि रहमान सनकी है, उसके यहां जाकर भी क्या होगा, वीरेश्वर ने उसकी बात को सुनकर अनसुना कर दिया । जिस समय वे रहमान के यहां पहुंचे, उन्होंने देखा, रहमान मेज़ पर बैठा, कुर्सी पर पैर रखे, सर झुकाए कुछ पढ़ रहा था । एक खाट एक कोने में बिछी थी, जिसपर एक सत्याग्रहियों का-सा बिस्तर बिछा था । एक मेज़ थी, जिसपर कोई मेजपोश नहीं था । कुछ किताबें मेज़ पर ही बिखरी हुई थीं । एक सुराही बेंच के नीचे कोने में रखी थी और ऊपर पुराना जूता और एक रंग-उड़ा ट्रंक रखा था । दीवाल के ताकों में धरी थीं—पैटस्लोन की 'रशिया विदाउट इल्यूजस', मिखायेल शोलोखोव की 'एण्ड क्वायट फ्लोज़ दी डान', मारिस हिंडस की 'ब्रोकन स्वायल', 'अण्डर मास्को स्काइज़', नेहरू की 'व्हिदर इण्डिया' और लेनिन के 'सेलेक्टेड वर्क्स', लाइन फ्यूकवेंगर की···

इतनी देर बाद रहमान ने कहा—'बैठो भाई, तुम लोगों के लिए जगह तो नहीं है···'

वीरेश्वर को यह आदत नापसन्द थी । क्योंकि अगर रहमान को अपनी कमी महसूस हुई, तो उसने अपनी कमी छिपाने में हमारे भरे-पूरेपन को नोच क्यों लिया ।

बैठ गए ।

'ये हैं हमारे दोस्त कामेश्वर ।' कामरेड रहमान—'आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई...'

वीरेश्वर कहने लगा—'कामरेड रहमान दो बार जेल हो आए हैं और आए दिन इन्हें अपनी ज़िन्दगी का खतरा है। मगर कामरेड, तुम्हें अपनी ज़िन्दगी में कुछ मज़ा आता है या नहीं ?'

'ज़िन्दगी,' कामरेड की आंखें चमक उठीं। वह झुका और उसकी पीठ की हड्डियों में एक चटक-सी मच उठी। उसने निराशा से इधर-उधर देखा और वह मुस्कराया, 'मज़ा ज़िंदगी में कहां से आया ? और वैसे तो कातिल के हर वार में मज़ा है।' वह एक सूखी हंसी हंसा। जिस हंसी की तरावट में अंडमान की हज़ारों आहें तड़प न उठें, वह समझता है, वह उससे कम हंसता नहीं। कामेश्वर के मन में आया, वह हंस दे। क्या फायदा इन बातों से। इनके बेवकूफ बनने से किसान-मज़दूरों को क्या फायदा ? फिर उसने अपने को संतोष दिया और वह मन ही मन कहने लगा कि ये लोग गरीब हैं, इनके पास कुछ है नहीं। पढ़-लिखकर कुछ संभल गए हैं और क्योंकि अपने आपको व्यक्तिरूप में बढ़ा नहीं सकते, समाज की हाय-हाय करते हैं। अमीरों से जलते हैं और हुकूमत को ज़ुल्म कहते हैं। सब बराबर कैसे हो सकते हैं ?

कामेश्वर सोच सकता है कि ये समाज के सामने एक भिखमंगे कोढ़ी को ला बैठाते हैं और ईश्वर के नाम पर वह कोढ़ दिखा-दिखाकर भीख मांगते हैं।

कामरेड रहमान सोच सकता है कि ये ही हैं वे लोग जिन्होंने अपनी ऊपर की सफाई के लिए समाज के एक बहुत बड़े हिस्से को कोढ़ी बना रखा है। वह कोढ़ जो इनके मन की असलियत है, ये उसे देखना नहीं चाहते। न ये उसे दवाई देते हैं, न देखना ही चाहते हैं, न उसके लिए कोढ़ीखाना बना सके हैं। ये उसे जानते हुए भी सोचना नहीं चाहते। आज की दुनिया नफरत पर खड़ी है और प्रेम के हलके झकोरे महलों में आग-सी भर देते हैं। लैला-मजनूं के अफसानों से इनकी ज़िन्दगी एक झूठी सुलगन में खाक हो रही है।

वीरेश्वर कुछ देर तक चुप रहा। फिर सिगरेट बढ़ाकर रहमान से बोला—'कामरेड, सिगरेट पीते हो ?'

'हां, हां,' उसने एक ले ली।

'लेकिन कभी पीते नहीं देखा।'

'हां, कोई पिला दे तो। वरना इतने पैसे कहां हैं ?'

कामेश्वर कोफ्त से भर गया। गरीबी का महत्त्व ताने कसना नहीं है ?

रहमान ने हाथ की किताब मेज़ पर रख दी। वीरेश्वर ने देखा, रेमौन सैंडर की 'सात खूनी इतवार' थी। कामेश्वर ने सिगरेट जलाई। उसने वीरेश्वर की ओर फिर बुझाकर दियासलाई रहमान की तरफ बढ़ा दी।

'ओह हो,' रहमान ठठाकर एकदम हंसा, 'एक सींक से तीन नहीं जलानी चाहिए, बुर्जुआ मोरैलिटी !'

'माफ कीजिए, ये उसे मानते हैं,' वीरेश्वर ने बीच में रोककर कहा। तीनों

सिगरेट पीने लगे।

'तो आप'—रहमान ने कामेश्वर से कहा—'पी० सी० एस० में बैठ आए ? वीरसिंह ने कहा था मुझसे। उसी ने कहा था कि विद्यार्थी-संघ में भी आपसे बड़ी मदद मिलेगी।'

वीरेश्वर को अचानक सब याद आ गया।

'मदद करने को मैं तैयार हूं,' कामेश्वर कह रहा था—'लेकिन पुलिस रिपोर्ट भेजती है बाद में।'

रहमान फिर हंसा। कामेश्वर जो बंजर का फूल बनता था उसे जैसे अचानक और अपने आप एक लू का झोंका लगा। वह झगर थी, जिससे केले के हरे-भरे पेड़ों में पानी देनेवाला माली सांझ को देखता है कि गर्मी से सब मुरझा गए हैं। यह झगर आज कोने-कोने में फैली हुई है।

होस्टल-मेस में बरतनों के मंजने की आवाज़ खिड़की से आ रही थी। एक छाया दरवाज़े पर दीख पड़ी।

'हलो'—रहमान ने चौंककर कहा—'वीरसिंह, अरे भाई आओ। तुमसे तो मुझे बहुत ज़रूरी काम था। तुम तो लड़कियों से फ़ुर्सत ही नहीं पाते। तुम्हारे दिल की चोटों से तो मैं परेशान आ गया।'

'बस-बस'—वीरसिंह बात काटकर बोला—'बहुत मत उछलो। अच्छा आप दोनों भी ? तब तो सब के सब बदमाश यहीं हैं।'

चारों ठठाकर हंस पड़े।

घण्टा बजने लगा। खुले किवाड़ों की राह उन्होंने देखा, क़ालेज के एक कमरे में प्रोफेसर मिसरा ने एक लड़की को रोक लिया और बरामदे में लाकर बातें करने लगा। ऊपर गेलरी में खिड़की के पास लड़कियां चुहल कर रही थीं। रहमान को यह अच्छा लग रहा था, मगर वह उनसे नफरत करता था और कामेश्वर को इन सबसे नफरत न थी, मगर उसे वह बुरा लगता था। एक मध्यवर्ग का मांस था, दूसरा ढांचा। इसी समय एक गीत साफ-साफ सुनाई दिया। गानेवाला उसे मार्चिंग गीत बनाकर गा रहा था—

मेरे गीतों को सुन
ज़र्रे-ज़र्रे में हो
इन्किलाब इन्किलाब !
खूनी शोलों से
आंचल पै
लिख दूं तेरे
इन्किलाब इन्किलाब !

'कामरेड सुंदरम !'—रहमान चीख उठा—'आओ भाई, आओ।'

'ठहरो, इस वक्त फ़ुर्सत नहीं है।'

'अच्छा !'

कामेश्वर ने सोचा, यही कामरेड लोगों की तमीज़ है। लेकिन फिरंगी ऐसी बात कहता, तो कामेश्वर शायद उसे वक्त की कद्र मानता।

'घड़ी है आप लोगों के पास ?'—रहमान ने पूछा ।

'मेरे पास नहीं है ।'

कामेश्वर के पास थी, मगर उसने जेब तक हाथ ले जाना फिजूल समझा। वीरेश्वर ने कहा—'दूसरा घण्टा ! ओह् सॉरी । एक बजे के करीब, क्या दो बजनेवाले हैं ?'

'तुम पौने तीन तक बठ रहना वीरसिंह । कामरेड ऊषा और कामरेड मुमताज ने आने को कहा है ।'

'यहां ?'—वीरेश्वर चौंक पड़ा ।

'नहीं,' वीरसिंह ने कहा—'हम लोग लाइब्रेरी के एण्टीरूम में मिलते हैं ।'

'हां, फिर ?'—वीरेश्वर बोला ।

'आज तमाम कांस्टिट्यूशन पर नज़र डालनी है कालेज के । तब लड़कियों के बारे में रिपोर्ट कामरेड मुमताज देंगी । इसके बाद सुन्दरम से लड़कों के बारे में पूछना है । ढाई सौ मेम्बर बने हैं । अब की कान्फ्रेंस में बाहर से किसी को बुलाने का इरादा है ? जाने आए या न आए कोई ।'

कामेश्वर बाहर देख रहा था । भगवती दरवाज़े के सामने से गुज़रा । उसके हाथ में बड़ी-बड़ी किताबें थीं और कुछ परेशान-सा बड़बड़ाता हुआ जा रहा था, जैसे हाल की पढ़ी हुई चीज़ दुहरा रहा हो ।

'इसने मारा फर्स्ट क्लास'—कामेश्वर कह उठा । मगर किसी ने जवाब नहीं दिया । फ्रांस की हार हो गई थी ।

बैठे-बैठे काफी देर हो गई । वीरेश्वर ही अधिकांश इधर-उधर की बातें करता रहा । तब सुन्दरम चुपचाप घुस आया । उसे देखकर रहमान ने कहा—'मुझे ज़रा काम है मिस्टर वीरेश्वर !'

न वीरेश्वर समझा, न कामेश्वर ।

'हां, मुझे ज़रा काम है । इनसे कुछ खास बातें करनी हैं ।'

'तो हम चले जाते हैं ।'

'हां, ज़रा तकलीफ तो होगी ही । भाई लाचार हूं । माफ करना ।'

दोनों उठकर दरवाज़े के बाहर आ गए । भीतर से आवाज़ आ रही थी—'भाई वीरेश्वर, बुरा न मानना, देखो, फिर कभी फुरसत में आ जाना । अच्छा ?'

दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा, झेंपे, शरमाए और ठठाकर हंस पड़े । प्रो० मिसरा अब भी लूसी को लिए खड़ा था ।

'क्या बातें करता है यह इतनी-इतनी देर तक ?'

'अरे, इसे तुम क्या जानो ? यूरोप से इसी फन में उस्ताद होकर लौटा है ।'

'सुनते हैं, हिन्दी बोलना भी भूल गया है ।'

'हां, हां, भगवती को शुरू में डांट दिया था इसने । लेकिन फिर मैंने आड़े हाथों लिया ।'

'देखो न, हैरान कर रखा है लड़की को । अच्छा एक काम करो ।'

उसने आंखों से पूछा—'क्या ?'

'तुम उधर से जाओ, मैं इधर से। दो-तीन बार जो गुज़रे कि बस बन गया काम।'

'उसने लूसी को छोड़ा कि मैं घेर लूंगा फिर।'

स्कीम शुरू हुई।

इधर वीरसिंह कह रहा था—'आज कालेज के लड़कों में बेहद बुज़दिली है। कोई भी काम करना पहाड़ हटाना है और धक्कों से वह मीनारों को नहीं गिरा सकता, वह चीतों की तरह गरजना भूल गया है। उसकी हुंकारों से सागर में तूफान नहीं उठ सकता। मगर वह सिर्फ एक काम जानता है—अंगरेज़ी पढ़ना। वह नहीं जानता कि सांझ की धूल में किसान कैसे थककर चूर हुए लौटते हैं। वह जवान है, उसके सिर पर भारत की ज़िम्मेदारी है। गदर की कराह अब भी हिमालय में गूंज रही है। उस एके की याद करके अब महासागर विक्षुब्ध हो जाता है और आज की फूट देखकर चट्टानों पर सिर पीटने लगता है। अकेले हिन्दुस्तानी के मुंह में चिनगारी चाहिए, वह इन्किलाब की चिनगारी जिससे कातिल का घर धू-धू करके जल उठे। मेरी कौम मुर्दा नहीं है, मेरा मुल्क ज़िंदा है, हिन्दुस्तान ज़िंदा है...'

दूर कहीं हंसिए-हथौड़े से रोशनी निकलकर जैसे इस मौत के मुंह में पड़े कीड़े में जान फूंक रही थी। कमरा धुंधला-सा लग रहा था। जाड़े आ रहे थे, लेकिन अभी कमीज़ सिर्फ एक कोट झेल सकती थी और छाया में पसीना नहीं आता था। तीनों चुपचाप सर झुकाए कुछ सोच रहे थे।

भगवती और ऊषा विज्ञान-विभाग से लौट रहे थे। भगवती मुस्करा रहा था। ऊषा हंस रही थी। उसने कहा—'आप हमारा विद्यार्थी-संघ पसन्द नहीं करते?'

'वह पैसे वालों की बातें हैं मिस ऊषा, हमारी उसमें क्या पूछ है?'

'वाह, यह आपने क्या कहा? आपके आने से तो हमें बड़ी मदद मिलेगी।' और उसने तिरछी नज़रों से भगवती को देखा। भगवती ने देखा भी और नहीं भी देखा। उसे अच्छा लगा। उसे न जाने क्यों यह लड़की अच्छी लगकर भी प्यार नहीं उपजा पाती थी। वह उससे ऐसे मिलता है जैसे किसी लड़के से और उसमें इतना साहस नहीं होता था कि वह उसे टाल जाया करे।

लीला ने क्लास में से देखा, कि भगवती के साथ ऊषा आ रही है, कि ऊषा भगवती को लिए आ रही है। एक लड़की एक लड़के के साथ आ रही है।

बगल के कौरिडोर से प्रो० मिसरा भुनभुनाता हुआ निकल गया। लेकिन वे जो दो सामने आ रहे हैं। वे दोनों ऐसे हैं जिन्हें प्यार नाम की गांठ बांध सकती है। लीला को एक जलन हुई। किन्तु क्यों? उसे तो उस गरीब से कुछ भी सम्बन्ध रखना फायदा नहीं पहुंचा सकता। फिर भी लीला की नारी एक प्यासी नारी थी। फैशन, दौलत और वासना में पली। भगवती उसे अच्छा लगता था। उसे वह थोड़ा-थोड़ा चाहने लगी थी। चाहने का मतलब प्यार नहीं है, सिर्फ अच्छा लगता है, चुम्बन नहीं मुस्कान है।

उसने देखा, मुमताज के मिलने पर ऊषा भगवती को नमस्ते करके चली गई।

फिर दो मिनट बाद भगवती नज़रों की ओट हो गया। लीला फिर प्रोफेसर का लेक्चर सुनने लगी—'सॉनेट दो तरह के होते हैं, एक एलिजाबेथन—यानी...'

प्रो० मिसरा उस समय किसी लड़के से कह रहा था—'आप पढ़ा कीजिए। कालेज में आप पढ़ने आते हैं और यही खास बात आप अक्सर भूल जाते हैं। सोचिए, आपके मां-बाप कितनी मेहनत करते हैं...'

लड़का टोक उठा—'हमारे पिता तो ज़मींदार हैं।'

प्रो० बिगड़ उठा—'तो फिर स्टूडेंट-फेडरेशन में शामिल हो जाइए, क्योंकि उसकी पहली मांग यही है कि इम्तहान के परचे लड़कों को एक महीने पहले से बता दिए जाएं, क्योंकि लड़कों को पढ़ने में बड़ी तकलीफ होती है...

हिटलर से चैम्बरलेन कह रहा था—'हम आज़ादी के लिए लड़ते हैं, तुम गुलामी फैलाते हो...'

15

समर न व्याकुल है, न उन्मन। वह उदास भी नहीं है। केवल निर्बलता के आवरण में छिपा हड्डियों का एक ढेर है। उससे किसी भी आलोक का प्रतिबिंब नहीं झलकता।

जब रात हो गई, स्वभाववश ही समर अपनी डायरी लिखने लगा—

'जीवन में अनेक क्षण आते हैं। उनका प्रत्येक में अपना-अपना महत्त्व है। यह जीवन एक उपन्यास नहीं, वास्तव में छोटी-छोटी कहानियों का समुदाय है।

'ठहरकर सोचनेवाला जीवन अपनी कायरता को भले ही अपने अज्ञान के अन्धकार मे ढकने का प्रयत्न कर ले, किन्तु गति की स्वच्छन्दता उसके लिए रुकी नहीं रह सकती और इसीलिए अतीत का समस्त तीव्र प्रकाश धुंधला होकर मिटता चला जा रहा है और आने वाला प्रत्येक पल अपने नवीन होने के बचपन से, चट्टान की तरह सिर उठाते हुए, पुकार-पुकारकर कहता है—'मैं भी हूं,' इसे सुनकर मनुष्य के समन्वय की भावना डोल उठती है—

'राह ही कितनी है जो मंज़िल से समझौता करूं?

'आ ही जाएगी अगर पांवों में मेरे ज़ोर है। तो क्या समन्वय वास्तव में 'संभवामि युगे-युगे' का सा विद्रोह है?'

समर ने फिर लिखा—

'शराब के नशे में आदमी कहता है—मैं अपने काम को पाप नहीं समझता। जो हो गया सो हो गया। पाप और पुण्य के इस विश्लेषण को मैं बेकारी का साज कहता हूं, जैसे प्राचीनकाल में राजा अथवा सामंत स्त्रियों के पैरों में पायल बांधकर उनका नृत्य देखकर मस्त होने की प्रतारणा में सिवाय अपनी प्रजा की हानि के कठिनता ही से कुछ करते थे। यही कामेश्वर है।

'वीरेश्वर भिन्न है। सम्बन्ध रखनेवाली समय की कड़ी तोड़कर मनुष्य

अन्धकार के अतिरिक्त कभी भी कुछ नहीं पा सका। उसका अज्ञान ही उसकी उत्सुकता का आधार है। किन्तु क्या उत्सुकता ही जीवन का लोभ अथवा अतृप्ति की पूर्तिसाधना की अभिलाषा नहीं है ?

'कला को देखकर मुझे स्वयं कौतूहल होता है। परिचय की दृष्टि पहला प्रमाण है। जब 'मुझे तुझे' की आवृत्ति का दोष एक राह चलती जिज्ञासा-मात्र रह जाता है। मनुष्य में एक स्वार्थ जो रहता है कि वह अपने व्यक्तित्व का किसी में पूर्ण समन्वय कर सके। किसमें ? पूछता है मनुष्य का इतिहास। और बोलती है पराजय··· अन्धकार ! अन्धकार ! ! किन्तु अन्धकार में खोजनेवाले व्यक्ति ! जीवन प्रकाश चाहता है, क्योंकि प्रकाश से कर्म की प्रेरणा मिलती है। अन्धकार में उसका अहं भी डूब जाता है।

'कामेश्वर और भगवती का यह मिलन सबमें आश्चर्य पैदा करता है। किन्तु ऐसा कुछ नहीं। पहला अपने सुखों को त्याग के दंभ में लपेट चुका है, जैसे कह रहा हो—मैं सब जानता हूं और दूसरा जैसे—मैं जानना चाहता हूं, मैं कुछ नहीं जानता। अज्ञान की सुबोध और सरल अभिव्यक्ति ही इस समाज में पाप की स्वीकृति है। किन्तु भगवती अच्छा कहे जाने के मात्र लोभ से ही उस पथ को स्वीकार नहीं कर सकता, जहां छीनकर दान करने के महायज्ञ में नरमेध को देवताओं का प्रसाद कहकर रुककर सिर पीटने को मनुष्य 'स्वस्तिवाचन' कहता है।

'दूर बाहर के घण्टे बज रहे हैं। उनके निनाद पर रात अलसा रही है। भगवती की यह आदर्शों की विवेचना उसकी परिस्थितियों का परिणाम है। यह तो मेरे सामने एक चित्र है, इसमें बुद्ध के तपस्तप्त शरीर के सामने सुजाता खड़ी है। प्रेम की खीर कहकर बुद्ध को उठानेवाले भूल गये थे कि बुद्ध को जीवित रहने की लालसा अथवा लोभ की वह एक करुण भीख मिली थी, जिसे संसार भी कभी नहीं भूल सकेगा।

'रात का अंधेरा हवा में हिल रहा है। आकाश में अनन्त तारे बिखरे पड़े हैं, जैसे रईस की लाश के पीछे कोई चमकते सिक्के बिखरा रहा हो और जब भिखारी अंधकार उसे लूटकर जीवित रहने को संघर्ष करता है, वह रह-रहकर उस दयनीय तृष्णा पर हंस उठता है।

'बनती-बिगड़ती रेखाओं का यह उन्माद चित्र का गीत बनकर फैल रहा है। मैं अभी भी जाग रहा हूं, क्योंकि जो नींद मुझे जीवनीशक्ति देने अभी तक नहीं आई, दूसरे पक्ष में वह मृत्यु की छाया है, जो जागरण के वृक्ष के पैर पकड़कर सूर्यास्त के समय एक करवट से लम्बी होकर सोने का विषादपूर्ण प्रयत्न करती है, किन्तु सो नहीं पाती, क्योंकि वह मृत्यु की भांति पूर्ण लय नहीं होती; होती है पानी से धुंधले किए गए अक्षरों की पंक्तिमात्र, जिन्हें न पढ़ सकने के कारण प्रेमी अपने मन के संतोष के अनुसार अपना अर्थ लगाकर धोखा खा जाता है।

'विषमताओं से भरे समाज में हम न बुद्धि का दावा कर सकते हैं, न अपने अज्ञान के बल पर सन्तोष की सांस ले सकते हैं और हम चलते चले जा रहे हैं, चलते चले जा रहे हैं···

'गति के इस प्रवाह को देखकर मेरा हृदय रोता नहीं; केवल इतना अवश्य होता है कि मैं पीछे न रह जाऊं, पीछे न रह जाऊं। उतरते उन्माद का पिछला पहर जैसे दिन की रेखाओं में कांपता हुआ, कभी सिर पीछे नहीं पटकता, बल्कि आगे बढ़कर सब कुछ पकड़ लेना चाहता है, मानो इस भूख का कहीं भी अन्त न हो···कहीं भी इसकी लघुता अथवा महत्ता की समाप्ति न हो···और पैर उठते रहें···पीछे पदचिह्न बनते जाएं, वह पीछे मुड़कर न देखे, चाहे पदचिह्न रह सकें या मिट जाएं···

'मुझे याद आ रहा है। एक बार गुरु ने कहा—तुम्हारी आयु पर नेपोलियन जनरल था। विद्यार्थी ने विनीत उत्तर दिया—किन्तु गुरुदेव! आपकी आयु पर वह सम्राट् था!'

'उपदेश! उपदेश का खोखलापन।

'मुझे लगता है, जैसे कोई बहुत बड़ा काफिला गुज़र गया है और मैं रेगिस्तान में उसके पदचिह्न ढूंढ़कर अपने-आपको बहला रहा हूं। 'अन्तिम ध्येय' की साधना का धोखा भी अपने ही मन को देकर बहुत-से लोग न जाने विभ्रम को सुलझन क्यों कहते हैं? अन्तिम अवस्था मरण है, वह चल मरण नहीं जिसमें तृप्ति की झलक दीखती है, वरन् वह जड़ता, जिसमें एक सड़ांध है, जो मनुष्य की घृणा का अज्ञान के अन्धकार में पलता रूप है। व्यवहार और क्रिया का पूर्ण समन्वय ही पथ को सरल बना देता है। पथ वह जो अपने-आपमें पूर्ण है—हरी—रानी—जिसकी अपूर्णता ही जिसका बल है—यहां मैक्सुअल नहीं, विनोदसिंह—वरदान है। हर मंज़िल जैसे एक मील का पत्थर है।

'मेरा जीवन ही क्या है? दिन-भर की बुद्धिमत्ता यदि संध्या समय मूर्खता करने लगे तो मनुष्य को कितना विक्षोभ होता है। भरा हुआ प्याला उठाने की देर नहीं कि वह रिक्त। निराशा की अति ही सन्तोष का प्रादुर्भाव है। अद्भुत है यह संसार। मन कहता है—हार मानो जीत पाओ! और क्षण-भर में ही नशा उतर जाता है फिर चलना ही एकमात्र सुख है, बूंद-बूंद करके सागर बनाने की स्पर्धा···

'लीला का जीवन एक Illusioned discrepancy है। इन्दिरा का Distorted vision। इतने बड़े जीवन के कितने ही पल व्यर्थ व्यतीत हो जाते हैं। उन्हें मनुष्य यों ही विस्मृत कर देता है और विस्मृति का मूल कारण है अविश्वास, जिसका माध्यम है धन, जिसका परिणाम दरिद्रता है, दया है, स्नेह है, संघर्ष है, भगवती, इन्दिरा, लीला···

'मनुष्य पृथ्वी पर रहकर अर्थ करता है या अनर्थ—यह स्वयं एक बचपन है। रहमान इसे नहीं समझ सकता। हो सकता है, वीरसिंह और सुन्दरम इस बात को कुछ समझें। किन्तु जहां ज्ञान कल्पना का सहारा लेता है, वहां वह आंशिक सत्य ही रह सकता है। अत: अज्ञान में भटकने का परिणाम है दु:ख। यदि मनुष्य उसे अनुभव न करके दर्प करता है, तो वह प्रोफेसर मिसरा है, ऊषा नहीं; क्योंकि ऊषा नीरस है, उसमें वह कालकूट की गरिमा नहीं जो महादेव के कण्ठ में अटककर न ऊपर चढ़े, न नीचे उतरे। कालेज के लड़के! अच्छे कपड़े, अच्छा फैशन! और उन्हीं को नियामत समझनेवाले। उनकी गुलामी उनकी गलतफहमियों और झूठे घमण्ड में छिप गई है।

प्रोफेसर मिसरा का क्या दोष है ? मैक्सुअल का भी कोई नहीं। निर्बल आत्मा तुरन्त गालियों पर उतर आती है। स्वार्थी सदा अपने को परमार्थी कहने का दावा करता हुआ स्वार्थी को किसी अच्छे नाम के नीचे Comouflage (ढांकने) करने का प्रयत्न करता है।

'किन्तु फिर भी हमारा समाज ऐसा है जिसमें हमें मनुष्यता का पाठ सीखने को मजबूर किया है। हम परस्पर घृणा करते हैं क्योंकि हम एक-दूसरे से डरते हैं। डरें न तो क्या करें ? हर कोई एक-दूसरे पर प्रहार करना चाहता है, जैसे बरसते पानी में भूखे भेड़िये पहाड़ की खोह में बराबर-बराबर बैठ जाते कहे जाते हैं। किसी के ऊंघने की देर नहीं कि सब उसपर टूट पड़ते हैं। घृणा से जब आदमी ऊब जाता है तब वह प्रेम की ओर बढ़ता है। यह प्रेम यौवन की मूर्खताओं से भरा प्रेम नहीं होता, जिसको सुनकर मनुष्य बाद में लज्जा करता है।

'सब सम्बन्ध सांसारिक हैं और जो सांसारिक नहीं वे प्राय: हैं ही नहीं। इस समाज में जो जितना बड़ा झूठ, जितनी कम हिचक के साथ बोल जाता है, उसी की चलती है।···उपर्युक्त स्थान पर चाहे कोई भी अपने हस्ताक्षर कर सकता है :

'दूसरी बात। Mediocrity (मध्यवित्तता) का जीवन में अपना एक स्थान है। उसके बिना न महानता है, न नीचता। मनुष्य की यह जघन्य प्रवृत्ति सरलता से दूर नहीं की जा सकती, क्योंकि ईर्ष्या के जल से सींचा हुआ विष है। अधिकांश इसी जाल में तड़प रहे हैं। कितनों के नाम लिखता रहूं ?

'दूर रेल सीटी दे रही है। इस समय भी जब चारों तरफ प्राय: सब सो रहे हैं, स्टेशन पर छोटी-मोटी भीड़ होगी; हाय-तोबा उसका स्वरूप होगा। ऊंघती रोशनी, ऊंघते आदमी, बदनसीब ज़िन्दगी की बोझिल परेशानियां, घिचर-पिचर, घिचर-पिचर, कीचड़ और अवसाद का अंधेरा ? भक् !'

समर ने एक लम्बी सांस ली और थककर कलम रख दी। सिगरेट जलाई और अपनी पतली बांहों पर बड़े एहतियात से हाथ फेरा कि कहीं कुछ चोट न आ जाए। दो-चार कश खींचते ही उसके मस्तिष्क में एक तीव्र कशाघात हुआ। सामने एक लड़की थी, जो लीला से ईर्ष्या करती है, इन्दिरा से भी। लड़कों को अपना खिलौना समझती है, भगवती की गरीबी जानकर उसकी ओर उपेक्षा दिखाती है और अपने रूप पर, धन पर, वंश पर जिसे एक पाशविक अभिमान है। किन्तु समर उसके प्रति आकर्षित है, ऐसे ही जैसे जान-बूझकर भी पतंगा जलना चाहता है। कितनी तीव्र है उसकी ज्योति जो आलोक नहीं देती, केवल भस्म कर देना चाहती है, जैसे चिता की भयानक अग्नि हो जिसके सामने कोई पक्षपात नहीं, Scruples (संशय) नहीं। किन्तु भगवती उसकी कौन चिन्ता करता है ? वह कभी उसकी चोट से नहीं तिलमिलाता। अपमान करने का गुरुत्व व्यर्थ है यदि उस चुनौती को चुनौती के ही रूप में स्वीकार न किया जाए। वह मद से भरी है···

और समर की हड्डियां तक उस हवाई आलिंगन की कल्पना-मात्र से कड़कड़ा उठीं। वह उसे नहीं छू सकता, क्योंकि वह फूल कांटों की सघन झाड़ियों के बीच उगा है जो कभी याचना करनेवाले की ओर नहीं झुकता। अपनी मस्ती में घमण्ड से झूलता

है, मानो सबको बुला रहा हो। भगवती उस झूलने पर मुग्ध नहीं है। किन्तु उसका दिलचस्पी लेना-न-लेना, कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। समर में झाड़ी में घुसने का साहस नहीं है। कामेश्वर के पास शक्ति है, किन्तु लगाव नहीं। वह उसकी ओर नहीं खिंचेगा। उसे तो पैसे खर्च करके चुपचाप नवीन स्त्री से मिलने में आनन्द आता है।

जितनी तलवारो में चमक है उनमें सबमें स्पर्धा है। वे सब समान गर्व से शून्य में चमचमाना चाहती हैं, रक्त से भीग जाना चाहती हैं। कभी वे शांति के लिए उठती हैं, कभी क्रान्ति के लिए! किन्तु बिला लगाव के देखा जाए, तो उनका काम हत्या है। हत्या का सापेक्ष रूप सामाजिक नियमों का बदलना है, बनना है, बिगड़ना है।

लवंग का विवाह होगा। यह भी एक अच्छा मज़ाक है। किन्तु यह मज़ाक ही प्रत्येक गम्भीरता का परिणाम है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

समर विवाह की स्मृति आते ही फिर चंचल हो गया। उसने फिर लिखा—

'न सांप था, न आदम, न हव्वा, न खुदा। जबर्दस्ती का बचपन है, और कुछ नहीं। अमरफल ही मनुष्य का सबसे बड़ा विष है। अत्यधिक आनन्द एक बहुत बड़ा धोखा है जिससे मनुष्य बहुत शीघ्र मर जाता है।

'घुटनों चलकर मनुष्य ने जब सीधा चलना सीखा, तो पूछा—कहां जाऊं? कोई उत्तर नहीं मिला। अत: उसने पद्मासन लगाकर अहं का पाषाण स्थापित कर दिया और लाचार होकर कहा—चलना व्यर्थ है, गति ही नास्तिकता है।

'और वह अमरता की प्राप्ति के लिए जीने लगा। उसने मृत्यु से भय किया। यही उसकी सबसे बड़ी निर्बलता थी, किन्तु यही प्रेरणा उसकी सबसे बड़ी शक्ति बन गई। क्यों? इसका भी अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला है। सृष्टि एक रेल की दौड़ है। यह मनुष्य बिना टिकट का यात्री है। इसी से वह स्टेशन से डरता है, क्योंकि टी० टी० आई० का खतरा बना रहता है। वह चलता जाए, सब गति के ज्वर में ऊंघते रहें, एक-दूसरे के सिर टकराते रहें···'

अन्त में समर ने लिखा—'ज्ञान-विज्ञान सब उपहास हैं, किन्तु हैं आवश्यक ही, क्योंकि उनके बिना और कुछ है ही नहीं। नवीन ज्ञान प्राचीन ज्ञान को अज्ञान कहता है। न हो तो अरस्तू को, न्यूटन को, आइन्स्टाइन को देखो; किन्तु मेरी असमर्थता कहती है—तू अपने-आपको देख, क्योंकि कल दर्पण भी महंगा हो जाएगा!'

16

आज लीला का वक्त नहीं कटता। भूल-भूलकर वह सोचने लगती है। घर पर कोई है नहीं। मामा और डेडी दोनों ही डा० धीरेन्द्र के यहां चले गए हैं और वह अकेली ही रह गई है। गर्मी ऐसी है नहीं, कि वह कमरा बन्द करके सो रहे। रह-रहकर उसे अपनी बेकारी पर झुंझलाहट आ रही है। क्या करे, क्या न करे? उसने पढ़ने की कोशिश

की। किताबें खोलकर बैठी। सिविक्स पढ़ूं ? मगर पालण्डे बड़ी ही खुश्क किताब है। इकॉनामिक्स भी ग्राज कोई पढ़ने का वक्त है ? इंग्लिश नहीं। धीरे से उसने अपना तस्वीर बनाने का सामान निकाला। सामान उठाकर वह बगीचे में ले गई और मोर-छली के पेड़ के नीचे सामान रखकर अधलेटी-सी तस्वीर बनाने लगी। दुष्यन्त और शकुन्तला बनाना कोई बड़ी बात न होगी। जीवन-संध्या खास्तगीर बना चुका है ? लैंडस्केप पेंटिंग में वह चाइनीज़ चित्रकारों की कृतियां जब देख चुकी है, तब से हाथ नहीं डालती। तब फ्यूचरिस्टिक चीज़ बनाई जाए। धीरे-धीरे उसकी पेंसिल चलने लगी। एक युवक बनाया उसने—एक वासना का रूप और उसके सामने विभोर-सी बनानी है नग्ना नारी। उसने स्केच बनाया। कुछ तबियत न भरी, रबर से सब मिटा दिया। फिर मिटे हुए पर बनाया, बनाकर फिर मिटा दिया। अचानक उसे मॉडेल रखने का ध्यान ग्राया। वह उठी और भीतर चली गई।

ड्रेसिंग रूम को उसने भीतर से बन्द कर दिया और ग्रपने कपड़े उतारने का विचार आते ही उसके गालों पर सुर्खी दौड़ गई। उसने देखा—'शीशे में एक रूप सी खड़ी थी। सुन्दर नयन, सुन्दर बाहु, सुन्दर, गोल, उठी हुई, अछूती कोमलता। उसने अपनी बगलों में हाथ फिराया, वह सिहर उठी। वह सुन्दरी थी। वह स्वयं नहीं। शीशे की नारी। किसी पुराकाल के तपोवन की कन्या-सी। उसके मन में आनन्द का प्रथम स्पन्दन हिल उठा। काश, सब उसी की ओर देखा करें। वह बादलों पर चले, हवा उसका आंचल बनकर फहरे। किन्तु वह सहसा ठिठक गई। एकाएक उसे स्केच की याद आ गई, उसने एक अंगड़ाई ली। दोनों हाथों को उसने ज़ोर से भींच लिया और उन्मत्त-सी अपने वक्षस्थल पर हाथ रखकर गोलाई, कोमलता ऊष्मा अनुभव करने लगी।

कालेज में लड़के इस रूप के कारण ही भुनगों की तरह जलने चले आते हैं और बूढ़े चाहते हैं कि वे इस विष को युवकों के कण्ठ के नीचे न उतरने दें। लीला को लगा जैसे वह एक जीवित-जाग्रत पाप थी। इसलिए समाज ने उसे बांध रखा था। नारी का विद्रोह यौवन के पहले पहरों में समष्टि के विरुद्ध जागता है और अन्त में स्पर्धा करते-करते वह व्यक्तिमात्र में निबद्ध होकर दासत्व स्वीकार कर लेता है। यही वह ठौर है जहां नारी पुरुष की दासी बन जाती है।

उसके रूप पर सब मरते हैं। उसने शीशे में फिर झांका। उसका आकर्षण तभी तक था जब तक ये दो गोल किसी के मन में टीस भर सकते हैं। दोनों आंखों के पीछे मन के सामने एक कल्पना होती है, दो आंखों के पीछे साड़ी की ओट में एक यौवन है, दो उन्नत उरोजों का जिसमें ज्वार है। वह मुस्कराई। झुककर उसने होंठों पर लिपस्टिक लगा लिया। भीतरी चेतना में लहर दौड़ गई। जैसे फ्रांस के महायुद्ध में सन् चौदह में लड़कियों के शरीर में सिफलिस का इन्जेक्शन लगाया गया था। वह कांप उठी। उसकी निगाह बाडिस में उन दो मतवाली चिड़ियों पर पड़ गई। यह मानव की बाढ़ को रोकने का प्रयत्न था। बाल उसके कानों पर खेल रहे थे।

दुनिया इस रूप पर मरती है, षोडशी गाती है, इन्दिरा नाचती है, लूसी बेह-तरीन चित्रकार है, विमला पढ़ने में तेज़ है, सभी कुछ न कुछ हैं। मगर वह कुछ नहीं

है। वह केवल एक लड़की है और उसकी नारी एक वास्तविक नारी। जीवन का जन्म उसके अन्त से सफल नहीं होता, उस धारा के प्रवाह के लय और ताल से सिद्ध होता है। वह उन्माद जो टीस भर दे और पागलपन का खुमार आंखों में झलका दे, वह जीवन है। यह सब क्या ? उसपर सब वैसे ही मरते हैं। कामेश्वर, प्रो० मिसरा तक ! उसने पराजितों की भीड़ को दिमाग में याचना करते हुए देखा। वह उनपर गर्व से मुस्कराई है। इनकी वह नहीं हो सकती। किन्तु वह किसी की भी क्यों हो ? जब वह पैदा हुई थी तब वह किसी की न थी, मरेगी तब भी किसीकी न होगी। फिर इस छोटे-से रास्ते के लिए उसे किसी को भी होकर क्यों रहना पड़े।

तब अचानक उसके कानों में कोई कह गया—औरत गुलाम होती है।

वह सांपिन की तरह चमक उठी।

'झूठ है, झूठ है !'—वह अपने आप फुंकार उठी।

मध्यवर्ग की नारी वैसा ही विद्रोह करती है जैसे पानी की बहती धारा में पत्थर से लड़कर एक बबूला पैदा हो जाता है। जब वह बहुत फैल जाता है, तो एकदम फट जाता है। उसको देखकर बहुत-सी स्त्रियां फिर वैसा नहीं सोचतीं। बचपन से वह प्यार से पली है। तब वह पार्टियों में जाती थी, सब स्नेह करते थे मगर अब वह पार्टियों में जाती है, तो रहस्य-भरी आंखें उससे कुछ कहने का प्रयत्न करती हैं और वह ऐसी बन जाती है जैसे अभी वह कुछ समझती ही नहीं। कैप्टेन सेन के भाई ने उससे कहा था—तुम मुझे अच्छी लगती हो। तब उसने कह दिया था—मुझे सब अच्छी ही कहते हैं, क्योंकि मैं अच्छी हूं।

जीवन में सब उसके पैरों पर आ-आकर लोट गये। एकाएक वह चौंक उठी। वह रहमान ? लेकिन वह तो सिड़ी है—कम्यूनिस्ट जो है न ? उससे हमें क्या ? कितना अजीब रहता है ! कोट पहनेगा तो एक कालर बाहर, एक अन्दर। कितना पागल-सा है ! इन सबसे कुछ नहीं। यह कोई हार नहीं थी। ऐसे लोगों को वह अपने से नीचा समझती रही है। राह का भिखारी खुदा के नाम पर भीख मांगता है, और न मिलने पर महल को गालियां देता है। महल का तो कुछ नहीं बिगड़ता ! महल तो भिखारी के विचारों की परवाह नहीं करता।

फिर भी जिस कमल को अपनी कोमलता पर गर्व होता है उसे भ्रमर के गुंजन पर कुछ हर्ष नहीं होता। वह चाहता है बादल, वह बादल जो बार-बार ऐंठन बनकर बीच-बीच में आए और झुक-झुककर हट जाए। ऐसा ही तो वह है। जीवन को रस-भरा मानकर भी इतना शुष्क रहता है। वह कौन है ?

लीला ने देखा, एक लड़की—ऊषा—सागर की रोर-सी उमड़न लिए सुन्दर नहीं, मगर अच्छी है। जिसकी नारी कालेज में बहुत ही उत्कट थी, बहुत ही अतृप्त, मगर जो उस अशांति को एक आत्मतेज से संभाले हुए थी। तो क्या वह सचमुच भगवती को चाहती है ? क्यों नहा चाह सकती। एक पुरुष…सुन्दर…जिसके ज्ञान की सब ओर धाक है…लेकिन जो सागर-तीर के पेड़-सा सुनसान जीवन बिताए जा रहा है।

अचानक उसका हृदय कचोट उठा। कहीं भगवती भी तो उसे नहीं चाहने लगा है ? किन्तु वह क्यों नहीं चाह सकता ? नहीं—लीला की विद्रोह-भरी अंतरात्मा

चीख उठी।—वह उसे नहीं चाह सकता।

तो क्या मैं स्वयं उसे चाहने लगी हूं ? नहीं, कभी नहीं हो सकता। वह प्रेम नहीं जानती, न जानेगी। वह खिलखिलाकर हंस पड़ी—प्रेम ? पश्चिम का प्रेम, एक प्याला शराब, एक चुम्बन; भारत का प्रेम···दिल की घुटन, तपस्या; फारस का प्रेम ···अरे मजनूं, जापान का प्रेम हाराकिरी, और पठान का प्रेम···पठान की पठानी।

वह यह सब क्या सोच रही है ? आखिर इसका मतलब क्या है ? वह फिर हंसी और हंसती रही।

ईंटों से मकान बनता है, और उन्हें जमाने को चूने की जरूरत पड़ती है। कुछ नींव होती है, उपर की दीवारें होती हैं। तूफान और वक्त उस घर को गिरा देते हैं। तब कुछ दिन कवि खंडहर पर रोने आता है और अन्त में मिट्टी में मिट्टी मिल जाती है। न वहां अमर आत्मा रहती है, न चेतना। संसर्ग से प्रेम बनता है। तब कल्पना उसे पक्का करने आती है, कुछ वासना होती है, कुछ सपना। ज़ंजीर कट जाती है और कुछ देर तक झनझनाहट होती है। हर एक व्यक्ति का कवि चीत्कार करता है।

लीला एक भूला हुआ गीत गुनगुनाने लगी। देर तक गुनगुनाती रही और अपने नाखूनों पर रंग लगाकर चमकाती रही। लाल, खूनी, लंबे और नुकीले।

उसके बाद वह उठी और अपने सामान के पास चली गई। बैठकर उसने फिर चित्र बनाना शुरू किया। पूरे वक्त वह गाती रही—

आमार वासना आजि,
त्रिभुवन उठे बाजि,
कांपे नदी वन राजि वेदना भरे,
बाजिलो कहार वीना मधुर स्वरे।

लकीरें बनीं और शक्ल बन गई। रंग चढ़ा और 'शेड' पड़ा। एक रूप बना। गीत की भावना मिली, चित्र ने एक झूमती हुई लय को अकस्मात् कर लिया। नारी को उसने बनाया जैसे अन्धड़···जैसे—

त्रिभुवन उठे बाजि···

चित्र बन गया। लीला उसे देखने लगी, मनोहर बना था। रूप था, भाव था, रंग था, प्यास थी, आकर्षण था और संक्षिप्त होकर भी अत्यन्त अथाह था। क्रोमैंगनस के पशुचित्र असाधारण हैं, लीला लीला का चित्र साधारण होकर भी असाधारण है, क्योंकि वह हृदय का बिंब है जैसे दार्शनिक चंचलता।

अचानक लीला चौंक उठी। यह तो वह स्वयं बन गई थी। वैसी ही ऐंठन जैसी अभी थोड़ी देर पहले शीशे में झांई मार रही थी और पुरुष···

उसे लज्जा हुई, क्रोध आया, शंका उठी, भय और संकोच ने हाथ पसार दिए···

वह भगवती था। कल्पना का एक वासना-भरा चित्र, एक सत्य लीला ने देखा और उसके नयन उसपर से न हटे। चित्र का पुरुष कितना सुन्दर था। वह चाहती थी कि अंधड़-सी वह किसी ऐसे तड़प-भरे उन्माद और वेग में खो जाए···उसने झुककर चित्र का पुरुष चूम लिया। अनुभूति का सुख मतवाला होता है। उसने उसे छाती से

चिपका लिया और वहीं लेट गई।

पेड़ पर कोयल बोल उठी। लीला ने चौंककर देखा। वह यह क्या कर रही थी! वासना : पाप? उसका मन ग्लानि से भर गया। यह क्या, वह भी ऐसी उत्तेजना से भरी थी? उसने सशंकित नयनों से चारों तरफ देखा। किसी ने उसे देखा तो न था? किसी ने नहीं। "आदमी को पशु-पक्षी के समाज से डर नहीं होता। आदमी को आदमी से डर लगता है।" ईश्वर देखता है, देखा करे। "वह कुमारी है, जिस पर वह गर्व कर सकती है। लीला ने तस्वीर देखी। वह उसे फाड़ देगी। ऐसी तस्वीर को अपने पास रखना खतरनाक है। लेकिन फिर भी चित्र कितना सुन्दर है। आखिर कौन-से हाथ से फाड़ सकेगी उसे! नहीं, उस चित्र को फाड़ना होगा।

वह उठी। उसने चित्र मोड़कर मुट्ठी में छिपा लिया और 'डैडी' के स्मोकिंग रूम में चली गई। वहां उसने अलमारी खोलकर एक दियासलाई निकाली, बेसिन के ऊपर तस्वीर खोली, जैसे प्रलय के बाद मनु ने फिर से पृथ्वी देखी हो। दियासलाई जली और तस्वीर में से एक झल्ल उठी जैसे चित्तौर का जौहर धकधका उठा हो।

रूप गीत बनकर आता है और सपना बनकर चला जाता है। क्या यह जीवन एक विराट् मस्तिष्क का भूला हुआ एक क्षण मात्र है? क्या आदमी उस दिमाग का एक भटका हुआ विचार है जो आता है, सराय की अधूरी नींद में पागल होकर चला जाता है।

आसमान में सफेद बादल छा रहे थे, उनकी छाया में जीवन-संचारिणी शक्ति थी, जो ज्योति बनकर कांप रही थी। एक नीला प्यार-सा लगती थी। विश्रान्त-सा आदमी का बनाया घर था और उसमें था एक मानव-हृदय। यह हृदय वैसा ही है जैसा आदिम पुरुष और आदिम नारी का था। यह चाहता है, दिमाग से हृदय जीत लिया जाए। मगर कितना कठिन है यह सब! मनुष्य अचम्भे में अब भी मिट्टी को देखता है, उसी तरह प्यार से हृदय से लगा लेता है और बेतकल्लुफी से उसमें घुलमिल जाता है।

लीला सोचती रही। आदमी धोखेबाज़ है। वह आकर्षण को प्रेम, स्नेह और वात्सल्य कहता है। समाज का ढांचा तीन चीज़ों पर खड़ा है—कमीनापन, ढोंग और झूठा घमण्ड! यह पतन का भय है। संसार का घमण्डी आदमी 'अणीमाण्डव्य' हो गया है। युग-युग से आदमी यूलिसीज़ की प्रतीक्षा कर रहा है।

घड़ी ने टन-टन करके पांच चोटें कीं। लीला ने चौंककर देखा। वह घड़ी मानो उसके भीतर ही बजी थी। मानो ये चोटें उसने अपने में ही सही थीं और उस शब्द के उतार-चढ़ाव से वह अपूर्व तृप्ति से भर गई थी। घड़ी फिर टिकटिक करके चलने लगी। उसकी यात्रा अथक थी। वह एक दिन बना दी गई थी और तब से चाबी लगने पर निरन्तर चलती रहती है। वह भी दृष्टि के लिए तीन Dimensions की है, कि साधना के ऐक्य से उसका चौथा Dimension ही प्रधान है—समय! किन्तु प्रकृति के सदा दो रूप हैं—एक प्रकाश, दूसरा अन्धकार! एक सौम्य शान्ति है दूसरा रात का अंधड़; एक रचना है, एक विध्वंस, इनके मिलन ही में पालन है। जीवन चलता है। इस संध्या की थकान में जब चिड़ियां घर लौटती हैं, आते हुए अन्धकार से डरकर

मनुष्य मनुष्य को खोजता है, बर्फ के कण एक हो जाते हैं, किन्तु फिर भी वह पास नहीं लगता। दूर-दूर की दो बर्फीली चोटियों-सा वह अस्तित्व भी मुस्कराता है। भावना में श्रद्धा, कर्म में कुरूपता।

लीला खिड़की में से झांकने लगी। सुदूर वहां पेड़ों के अंचल में भैंसें धूल उड़ाती लौट रही थीं, विश्रात, थकी-मांदी। छाया का धुंधलापन सीरी हवा को श्रमश्लथ बना रहा था। लीला ने देखा, कितनी सुन्दर थी वह सत्ता। धन की ग्लानि उन्हें नहीं मालूम। वे स्वतन्त्र नहीं हैं, तो भी उन्हें सुख है कि वे हैं, न इतनी चेतना ही है कि वे कुछ जानें; फिर भी आत्मविश्वास है कि प्यास लगने पर पानी पीना है, भूख लगने पर खाना खाना है। उनका जीवन एक प्रकृति का नियम है, आधार पूरा है, किन्तु !!! जिसकी सांस घुटती है वह विद्रोही है। ताकतवर कमजोर को सांप कहकर स्वयं न्यौला बन जाता है। यह है असल में जीवन! आत्मा का वास्तविक हनन युगान्तर का निर्वाण है।

सांझ आने लगी थी। हवा के झोंके बागीचे के फूलों को सहलाकर उनकी गन्ध से भर जाते थे। लीला चुपचाप खड़ी रही।

यौवन चंचल है, किन्तु क्यों? क्योंकि जीवन एक गति है। मृत्यु मृत्यु नहीं है। अमीबा की सत्ता-सा परिवर्तन! वह केवल लय है। प्रकाश और अंधेरा, अंधेरा और प्रकाश। पक्षी कलरव कर रहे थे। थकान मिटाने को एक गीत हो रहा था। कोमल शब्द में मानिनी शकुन्तला का अभागा सुहाग बिखरा पड़ता था।

लीला ने हटकर एक गिलास पानी पिया। सांझ का सुहावना समय था। वह फिर कोई गीत गुनगुनाने लगी। कुछ देर तक चुपचाप टहलती रही। मगर नूरजहां को वह हरम अब पसन्द नहीं आया। वह जाकर कपड़े बदलने लगी। एक बार फिर उसने शीशे में देखा। कितना मांसल शरीर, सुगठित! एक अतृप्ति से उसका मन फिर उदास हो गया।

उसने गैरेज से मोटर निकाली, सैल्फ लगाया और चल पड़ी। डैडी और मामा के आने पर निरंजन चाय पिलाएगा। वह डेविड होस्टल में ही कहीं पी लेगी। एक बार फिर क्लियोपैट्रा चल पड़ी थी दिग्विजय करने। सर्र-सर्र कार बढ़ने लगी, मोड़ पर मुड़ती गई, धीमी होती गई, मगर वह बढ़ती ही गई।

वह मोटर थी वैभव की जगमग निशानी; वह लीला थी रूप की जलती निशानी···

राह में कालेज के सामने कुछ लड़के वातें कर रहे थे। मोटर का हार्न सुनकर उन लड़कों ने मोटर की तरफ देखा। लीला उन नजरों की मालकिन थी; वह धनी थी, रूपगर्विता थी, अपराजिता, समझनेवाली, किन्तु आज न जाने क्यों उसमें यह भावना भर गई थी कि कोई उसकी उपेक्षा कर रहा है, उसे कुछ नहीं समझता, वह कुछ नहीं है।

डेविड होस्टल आ गया। वह मोटर भीतर छोड़कर होस्टल के दुमंजिले पर लूसी के कमरे का दरवाजा थपथपा उठी। भीतर से किसी ने कहा—'ठहरो, कौन है? और साथ ही एक लड़की ने द्वार खोल दिया। वह लूसी थी और लीला ने चाहा कि वह

लूसी न होती कोई और होता और वे दोनों अकेले होते···

खिड़की में से सड़क दिखाई देती थी। यही वह जगह थी जहां भूखे दिल आकर प्यासी आंखों में होस्टल की छत पर खड़ी लड़कियों को देखते और जहां से न दिखने के लिए लड़कियां सामने आकर खड़ी होती थीं। एक कर्मक था, दूसरा अकर्मक; न कर्मक कर्मक था, न अकर्मक अकर्मक।

इसके बाद एक रोर से तमाम जगह भर गई।

लूसी चिल्ला उठी—'रेल आएगी, रेल! चलो देखेंगे, जल्दी-जल्दी···।'

दोनों खड़ी हो गईं। रेल आई। जिस डिब्बे पर सैकिण्ड क्लास लिखा था उसमें से दो सिर झांक रहे थे। दोनों व्यक्तियों ने हाथ जोड़ दिए। इन दोनों ने भी मुस्कराकर नमस्ते की। रेल निकल गई।

लीला ने लूसी की तरफ देखकर कहा—'कौन थे? एक कामेश्वर था, दूसरा—?'

लूसी ने बात काटकर कहा—'कामेश्वर तो था ही। साथ में था समर। शिमले जा रहे हैं सैर करने।'

'इम्तहान के दिनों में?'

'ये एम० ए० में हैं न, इनके तिमाही नहीं होते। न इन पर जुर्माना होता है। इनकी मौजों का कोई ठिकाना है? सीनियर हैं, तबियत आए सो करते हैं।'

लीला चुपचाप सुनती रही।

लेकिन भगवती तो जूनियर था!!!

17

पहले टर्म का अन्तिम दिन था। सांझ खत्म हो गई थी। घण्टा बजने लगा। वही काना चपरासी अपना काम किए जा रहा था। लड़के बातें कर रहे थे।

टन-टन···लड़कियां और लड़कियां, लड़कियां और प्रोफेसर···लड़कियां और लडके फिर लड़कियां और लड़कियां···

टन, टन, टन, टन···

आज दशहरा-पार्टी थी। इम्तहान आज सुबह ही खत्म हुए थे और उस तवालत से छुटकारा मिलते ही सैनिकों ने आनन्द मनाना शुरू कर दिया था। नतीजे की इस वक्त किसी को फिक्र नहीं है।

कालेज के हाल के विशाल दरवाज़े खुले हुए थे। दो लड़के द्वार पर सबका स्वागत कर रहे थे।

नौकरों में बातचीत हो रही थी। बूढ़ा हरप्रसाद जो पचास बरस से कालेज की नौकरी कर रहा है, बोला—'भाई, ये सब भी क्या कोई मतलब की बातें थोड़े ही हैं, मगर हमारी सुनता कौन है···'

'अजी पूछो मत,'—चन्दा कह रहा था—'इन लड़कों को क्या है ? लड़कियां देखनी हैं प्रोफेसर और लड़कियों को तो मिठाई ठीक तरह मिल भी जाती है, मगर लड़के तो चिल्लाते ही रह जाते हैं। आखिर वह मिठाई जाती कहां है ?'

'वारडन साहब को भूल गए शायद।' बूढ़े हरप्रसाद के होंठों पर पकी हुई हंसी खेल गई। 'पहले जो लड़के आते थे, एक-एक का सीना चक्की का पाट होता था, चन्दा बेटा, चक्की का पाट। मगर अब देखो, तुम कै बरस के हो ? तेरह के। पेट से निकले नहीं कि रटना शुरू कर दिया···ए, बी, सी, डी···'

मिठाईवाले पहलवान ने राय दी—'पहले लड़के खाना जानते थे, अब कहां ? पैसा कहां है ? कर्ज़ा लिया, खाया-पिया क्या, सिगरेट का धुआं उड़ाया। पान खाकर मुंह रचाने में ही सारा ऐश रह गया है।'

'भैया, बखत-बखत की बात है, पहले अंग्रेज़ी हमने इतनी नहीं सुनी, अब तो बात-बात में गिट-पिट···'

'अजी अब तो यों कहे हैं कि भगवान् क्या ? यह किसी चिड़िया का नाम है ?'

'और लड़कियों ने तो बस रहा-सहा सब पूरा कर दिया।'

हाल में भीड़ बढ़ती जा रही थी। यह गुप्त साम्राज्य के महानायक का सभा-मण्डप नहीं था, न वालहला का विशाल हाल था, न था यह मुगलों का वैभव से पीड़ित विराट् दरबार, यह केवल मध्यवर्ग की खोखली सुन्दरता के नंगे दिवालियेपन की एक नशे की जूठन में त्रस्त दीवाली की झिलमिल थी।

लड़के आते थे, बंट जाते थे। इसके बाद लड़कियां दो-दो करके कतार में आने लगीं और एक ओर बैठने लगीं। उनके बाद प्रोफेसर और पीछे-पीछे उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी। बाकी जगह खचाखच भर गई।

वीरेश्वर रेशम का सूट पहने बैठा था। रोशनी उसके माथे पर पड़ रही थी। वह कुछ उदास था।

उसकी बगल में था रहमान। सर के बाल मुश्किल से कढ़े हुए, रूखे। कोट का एक कालर हमेशा की तरह बाहर, दूसरा अन्दर; काला, अच्छा नहीं।

कमल। अविश्वास से दबा, ऐंठ खोकर सर झुकाए बैठा है। उसकी उंगलियां कभी-कभी अपने आप हिल जाती हैं तब वह सांस खींचता हुआ कोट के बटन लगाने लगता है। आज के-से दिन उसमें उदासी, एक लाचारी है, क्योंकि वीरेश्वर की पूरी मदद प्राप्त होते हुए भी वह प्रेज़ीडेंट न हो सका और आज जहां उसे होना चाहिए था, वहां सज्जाद बैठनेवाला है। उस उदासी को छिपाने के लिए वह बनावटी हंसी हंसता है, जिसे देखकर सहानुभूति नहीं उपजती। पहले वह आदमी था, अब केवल हिन्दू है।

हरी, जो रानी रेनोल्ड की तरफ़ छिपी नज़रों से देख लेता है, फिर कोई अज्ञात बन्धन उसे झकझोरता हुआ जगा देता है। वह चौंककर इधर-उधर देखता है। वीरेश्वर पर निगाह पड़ते ही उसका विक्षोभ उमड़ आता है। आज वह पराजित बैठा है। कैसा धोखा दिया गया था उसे। दोगला वायदा करके वीरेश्वर ने यह पासा फेंका था। पासा कैसा ही गिरे, मगर वह तो पहले ही खत्म हो गया। दूर जो मैक्सुअल बैठा है। किन्तु उसको तो हरी ने ही हार दी है। रानी मुझसे ही प्रेम करती है, मैक्सुअल से नहीं। मैक्सुअल

का भी अजीब दावा है कि ईसाई को ईसाई से ही प्रेम करना चाहिए। किन्तु वह अपनी सूरत नहीं देखता। फिर कोई भूली-सी करुण मुस्कान उसके होंठों को घेर लेती है।

वीरसिंह उद्विग्न। रहमान बनने का प्रयत्न करता है। भावुक क्रान्ति का उलझा हुआ स्वरूप। विद्रोह चाहिए, किन्तु प्रेम भी आवश्यक है। शब्द बड़े होने लाज़मी हैं, मतलब जितना कम निकले उतना ही अच्छा। हर मीटिंग में मौजूद। कोई बात नहीं; सब बहुत कुछ है।

लीला की आंखें किसी को खोजने लगीं और वह कहीं नहीं था।

ऊषा ने कहा—'किसे खोज रही हो लीला?'

लीला सिहर उठी—'किसी को भी तो नहीं।'

'मालूम है तुम्हें, समर को संग लेकर कामेश्वर शिमले गया है। मुझसे वीरेश्वर ने कहा था।'

'नहीं।'—उसने अनजान-सा जवाब दिया, किन्तु उसकी आंखों के सामने दो चित्र गुज़र गए। कामेश्वर, सुन्दर, स्वस्थ, धनी, विचारशील, किन्तु स्वार्थी, जिसकी उच्छृङ्खलता छिपती नहीं, जो सदा प्रसन्न है, मगर जिसकी प्रसन्नता में एक उदासी टुकुर टुकुर झांका करती है। बस जीवन का अभिनेता है और उनमें है जो अपना रास्ता बाधाओं के बावजूद निकाल लेते हैं। उसका काम चलना है, लेकिन उसकी गति न पैरों की है, न दिमाग की। वह साहसिक है, किन्तु फिर भी पराजित।

इसके वाद लीला ने देखा, एक दुर्बल क्षीण रूप। बैठे हुए गाल, नाक पर चश्मा, हड्डियों पर कांपता-सा। उठी हुई ठोड़ी, नाक, गले की बनावट सब हड्डियों में काट-कर वनाई गईं। तूफानी लहरों पर जैसे टिमटिमाती चमकती नीली आंखों से देखता है चारों ओर का वैभव, मानो उसमें स्वयं कुछ कमी है, जो विशाल साम्राज्य को पैरों तले पाकर भी उसका राजा नहीं बन सकता। कुत्ता अपने मालिक के प्रीतिपात्र के सामने और कुछ न समझकर अकर्मक रूप में उस अतिथि के पैरों पर जा लोटता है, वैसे ही, वैसे ही···

'लीला,' ऊषा ने चौंका दिया, 'देखो न? तुम्हें आज ही सब कुछ सोचना है क्या? बात क्या है? सुहागरात है तुम्हारी आज की रात?'

लीला हंस पड़ी।

'तुम भी ऊषा, तुम्हारे लिए तो सुहागरात मामूली बात हो चली है।'

और लीला के सामनें रेल के पहिये पटरियों पर से घूमते हुए निकल गए सुख की ओट, वैभव की ओट···और वह अभागिनी-सी अकुला उठी।

भीड़ में से कोलाहल उठ रहा था। प्रो० एल्फ्रेड गृहीन अपना एक आंख का चश्मा, जो बिजली की रोशनी में चमक रहा था, ठीक कर लेते थे। उनकी भूरी मूंछें और नुकीली चिबुक पर ही समाप्त होनेवाली उनकी दाढ़ी, उसकी दमक से उनके चौड़े मुख को समाप्त कर रही थीं। अंग्रेज बाप ने जर्मन स्त्री से कुश्ती लड़कर इसकी रचना की थी। वह अपने बापों की तरह अपने आपको ईसा मसीह का खास बेटा साबित कर सकता था, क्योंकि हर अंग्रेज की तरह वह अपनी बात बेहतरीन शब्दों के आडम्बर में कह सकता था। अपनी मांओं की तरह उसमें एक हूशपन था, जिसकी तारीफ करना

ऐंग्लो-इण्डियन की जातीय वीरता थी। हिन्दुस्तान के लम्बे-चौड़े देश और उसके टूटे-फूटे आदमियों में उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह चुपचाप ठोढ़ी को हथेली के उल्टी तरफ गड़ाकर झुकी नज़रों से घूर रहा था। ब्रिटिश साम्राज्य की—यानी अपनी रोटी की—वह बहुत तारीफ करता था।

प्रो० मिसरा, एक हिन्दुस्तानी, जो प्रगति के नाम पर अपनी दकियानूसी पशुता के हाथों घिसट रहा था। जो अपनी अक्ल के सामने अपने से ऊंची तनख्वाह पाने वाले की अक्ल को ज्यादा समझना धर्म समझता है, जो घिस देने के बाद एक नकली नाक लगाए है···

एकाएक एक बहुत जबर्दस्त शोर मचा। प्रोफेसर, लड़के और लड़कियां सब ठठाकर हंस पड़े। नौकरों ने काम करते-करते सर उठाकर, कौरिडोर में से झांका। लीला उधर ही देखती रही···

ऊषा हंसकर कहने लगी—'देखो तो, व्यास को लड़के तंग कर रहे हैं। कैसा मजा आ रहा है।' और वह हंस पड़ी। फिर भी लीला को आज कुछ अच्छा नहीं लगा। उसकी नज़रें फर्श पर बैठे लड़कों में कुछ ढूंढ़ने लगीं।

ऊषा कह रही थी—'आज सुबह बड़ा मज़ा आया। इम्तहान शुरू होने के पहले वह व्यास हाथ में स्याही की दवात लिए जा रहा था। किसी ने इसे छेड़ा तो यह भागा। उधर से आ रहा था भगवती। उसी से टकरा गया और भगवती के कपड़ों पर स्याही फैल गई। भला इससे कोई क्या कहे?'

लीला ने कुछ नहीं कहा।

'आज भगवती आया नहीं।'—ऊषा ने इधर-उधर देखकर कहा।

'कोई काम होगा।'—कहकर लीला चुप हो रही। वह देखती रही।

प्रेज़ीडेंट सज्जाद ने कहा—'अब आपको मिस्टर इन्द्रनाथ अपनी कविता सुनाएंगे।'

कविजी ने गाना शुरू किया:

'पीर है मेरे हृदय में
सुमुखि, टूटे पंख ही हैं, रत्न इस उजड़े निलय में'

युगान्तर का टूटा राग गूंज उठा। इसके बाद तालियां पिटीं, भीषण कोलाहल मच उठा और कविजी को लौट आना पड़ा; क्योंकि हिन्दी का ऐसा रोमांटिसिज़्म कोई सुनना पसन्द नहीं करता। वे उदास होकर बैठ गए।

तब मिस्टर यूसुफ ने गज़ल सुनाई, जिसको एक बार नहीं, लोगों ने बार-बार सुना:

'माशूक की जगह भैंसा नज़र आता है।'

हंसी के फव्वारे छूटते रहे।

फिर खाना हुआ और तब बहुत-से लड़के जो फर्श पर बैठे थे, ठीक से कुछ न पा सकने के कारण, चिल्ला-चिल्लाकर, हक पाने के लिए स्टीवार्ड्स को अपनी दोस्ती की तरफ इशारा करके बार-बार देखते थे, मगर ओहदा ओहदा ही होता है···

चांदनी रात में बिखरती बिखर उठी थी। लीला ने बाहर आकर अपनी मोटर

को स्टार्ट किया। आज वह उदास थी। ज्वार आने के पहले जैसे महासागर शांत हो जाता है। उसने देखा, रानी रेनोल्ड से हरी कुछ बातें कर रहा था। मैक्सुअल खड़ा-खड़ा घुन्ना रहा था। उसे हंसी आई, किन्तु फिर मन भारी हो गया। वह अकेली थी।

मोटर एक आवाज़ करके चल पड़ी। लीला ने हार्न बजाना शुरू किया। राह पर भीड़ हो गई थी। लड़के हंस-हंसकर बातें करते चले जा रहे थे, जो हार्न सुनकर लहरों की तरह बंट जाते थे। पीछे से व्यंग्य कसना विद्यार्थियों का गहरी चोट करने-वाला हथियार समझा जाता है। किन्तु लीला निर्विकार रही, जैसे औरों पर भी उसका कुछ असर नहीं पड़ता। वह विश्रांत हो उठी। सड़क मोटर के पहियों के नीचे फिसलती चली जा रही थी। उसके पांव ब्रेक और एक्सेलरेटर पर कोई मशीन का ही भाग बने धरे थे। हाथ मानो स्टीयरिंग-व्हील पर चिपक गए थे। पेड़ स्वप्न की तरह आते और गायब हो जाते थे। क्षण-भर को चौराहे की ज्योति मिली। अपनी ऊंची जगह खड़े सिपाही ने हाथ दिखाया, मोटर चलती चली गई। इसके बाद वही चांदनी···भिखारी, अंग्रेज़, हिन्दुस्तानी, अमीर, पुरुष, स्त्री जो भी पैदल थे, सड़क पर सब बह रहे थे, लीला की दृष्टि में एक-से। हवा उसके माथे पर टकरा रही थी। ओस की बूंदों से ठण्डी और भारिल। यह भी जीवन था। इसमें तूफानों की गति थी, किन्तु भीतर बिल-कुल शून्य; जैसे माया से घिरा वैष्णवों का सच्चिदानन्द परमेश्वर!

बड़े-बड़े तूफान उठते हैं, सागर कोलाहल कर उठता है, किन्तु कुछ ही हाथ नीचे विश्रांत पानी स्तब्ध रहता है। धूल का गुबार लेकर उठती आंधी के चक्करों के बीच ही सुनसान शांति रहती है। लीला स्त्री थी।

उसने मोटर की गति बढ़ा दी। सर्र करके हवा को मोटर ने काटना शुरू किया और हवा अधिक वेग से उसके मुंह पर बज उठी। इसके बाद एक मोड़ था। यहां पेड़ों के कारण गहरा अंधेरा था। रास्ता इतना संकरा था कि मोटर मुश्किल से निकल सकती थी। उसने 'गियर' बदला और मोटर को मोड़ दिया। अचानक ही लीला सर से पांव तक सिहर उठी। बल लगाकर ब्रेक को उसने पूरा ऊपर खींच लिया। गाड़ी एक-दम रुक गई। प्रकाश में एक व्यक्ति खड़ा था। उसकी आंखें चकाचौंध हो उठी थीं। लीला ने बत्तियां बुझा दीं और तब अन्धकार में वह कोमल कण्ठ से कह उठी—'मिस्टर भगवती!'

व्यक्ति रुक गया। वह आगे बढ़ा। मोटर के आगे की खिड़की पर उसने कोहनी टेककर भीतर झांका। क्षण-भर को दोनों की आंखें मिल गईं। भगवती की गर्म श्वास लीला के खुले कंधों पर कांप उठी।

'मिस लीला, आप यहां?'

'घर जा रही थी। आप भी अचानक ही मिल गए। कहां जा रहे हैं?'

'होस्टल।'

'घूमकर लौट रहे हैं क्या?'

'जी हां, ज़रा सोचा घूम आऊं।'

लीला का गला भर-भर आ रहा था। भगवती का गला सूख रहा था। दोनों घबराए हुए थे।

लीला ने फिर कहा—'आप घूमने जाते हैं ? मैं तो समझती थी कि दुनिया में अगर कोई चीज़ है तो सिर्फ केमिस्ट्री, लेकिन प्रकृति से भी आपको प्रेम है, इसका मुझे बिलकुल ध्यान न था। देखिए, कितना मीठा और सुहावना चांद है जिसने उंडेल-उंडेलकर सुधा बहा दी है।'

पेड़ के अन्धकार में लीला के शब्द मूर्ख की कहानी-से मंडरा उठे।

'कहां ? यहां तो कोई चांदनी नहीं है !'

'देखिए तो, हाय रे ? आप भी बड़े वे हैं। यहां उसे पेड़ों ने ढंक रखा है। आइए, बैठिए न मेरे साथ, मैं आपको चांदनी में ले चलूं।'

भगवती कुछ सोचता रहा। लीला ने फिर कहा और अब की वह लीला बनकर बोली तो सारे तकल्लुफ अपने आप बह गए—'बहुत दिनों से तुमसे मिलना चाहती थी, मगर कैसे मिल सकती थी। आज अचानक ही ईश्वर ने कैसा मिला दिया। चलोगे ? अभी आधे घंटे तक मुझे आज़ादी है। देर न होगी तुम्हें, चलो।'

भगवती इस 'आप' से 'तुम' तक की यात्रा पर ही गौर कर रहा था।

'माफ कीजिए,'— उसने खाकी कोट के रोल्ड कालर पर हाथ रख दिया। लीला इतना ही देख पाई कि वह कोई काला-काला निशान था। उसे कुछ याद आ गया। 'आप पार्टी में क्यों नहीं आए ?'

भगवती ने उसे अधमुंदी आंखों से देखते हुए कहा—'इस चांदनी रात के मुकाबिले में कुछ अच्छा नहीं लगता था। मिस लीला, आपको मेरी तरह कोल्हू का बैल बनकर पढ़ाई में जुतना नहीं होता। आपके लिए पढ़ाई कविता है, मेरे लिए रोटी। तब आज जब मैं उस अन्धकार से छूटा, तो मेरा जी उस कैदखाने में जाने को न हुआ। दीवालों पर फारमूला, प्रिपरेशन, प्रोपर्टीज़ और टेस्ट्स लिखते-लिखते आंखें सींग की हो गई हैं। मिस लीला, ज़िन्दगी एक नीरस तन्मयता होकर नहीं चल सकती। रस-भरा गन्ना रेगिस्तान में नहीं पनप सकता। कालेज के युवक-युवतियां जीवन का प्याला भर-भरकर पीते हैं, मैं उपेक्षा दिखाता हूं। लेकिन क्या वह रस पाने को मेरे होंठ कभी-कभी व्याकुल नहीं हो उठते ? इस यज्ञ की बलि बनने का दंभ और गर्व मैं कभी स्वीकार नहीं कर सकता। गरीबी में उन्मुक्त होकर इम्तहान के बाद, इस लम्बे जीवन ने केवल एक ही क्षण बस, मैंने चांद को देखा और देखीं उस धुले हुए आसमान में चांदनी की लहरें। मैं चाहता हूं कि यह चांदनी मेरे मन में ऐसी भर जाए कि अगले तीन महीने तक जब मैं शीत-भरी लैब में कारबन, सिलीकन और बोरीन बका करूं, तब एक टीस-सी कविता इस मरु-हृदय में कुछ ठण्डक दिया करे।'

'आप इतनी मेहनत क्यों करते हैं ?'

'क्यों करता हूं ? आपके सामने मुझे यह कहते संकोच नहीं होता कि कल आराम से रोटी पाने के लिए।'

'लेकिन मिस्टर भगवती, नौकरी आजकल मिलती कहां है ? आप फर्स्ट क्लास फर्स्ट आएं, तो भी कोई गारण्टी नहीं है कि आपको कोई अच्छी जगह मिल ही जाए।'

'इस पूंजीवादी समाज ने मुझे विधवा बना दिया है। इसीलिए मैं सुहागिन का ढोंग नहीं रच सकता। तो क्या आप चाहती हैं कि मैं वेश्या बन जाऊं ? यों तो मैं भी

तरकीबें जानता हूं। ब्रिज और टेनिस सीखकर ही दो जोड़े नये अच्छे सूट बनवाकर रईसों की चाकरी करके मैं उनका दोस्त हो सकता हूं, उन्हें ठग सकता हूं, मगर जाने क्यों उस झूठे उन्माद से यह सूखी जलन अच्छी लगती है। न मैं रहमान की तरह कम्यूनिस्ट ही हूं, क्योंकि बुर्जुआ समाज की घृणित व्यवस्था न मुझे डरा सकी है, न दहला सकी है। मैं जानता हूं, मैं एकदम व्यक्तिवादी हूं और इसीलिए मैं विद्रोह नहीं जानता। घृणा करना जानता हूं, और जानता हूं कि मेरी घृणा एक प्रबल विद्रोह है। वह खेल मेरे लिए आहुति हो जाएगा। आप नहीं सोच सकतीं कि लैब से लौटकर एक रोज़ पानी पीकर न केवल प्यास बुझानी पड़ती है, बल्कि भूख भी। दिलचस्पी न होते हुए भी गुलाम तबियत के गन्दे मज़ाकों को हां में हां मिलाकर सराहना पड़ता है।'

लीला चुप थी। वह अजीब परेशानी में फंस गई थी। खैर, अब तो जैसे भी हो निभाना ही पड़ेगा। किन्तु वह जब बात करता है, तो कितना अच्छा लगता है। बच्चों की तरह समझता है कि वह बहुत बड़ी बात कह रहा है। और ऐसे बोल रहा है जैसे शेक्सपियर के पात्र लम्बी-लम्बी बातें करते थे, कवित्व-भरी। शेक्सपियर जानता था कि वह बेवकूफ था और यह अभी इसे नहीं समझ पाया कि हम सब बेवकूफ हैं:

A tale told by an idiot.
full of sound and fury
signifying nothing.

उसने मुड़कर अधमुंदी आंखों से देखा और जैसे अनजान में उसके हाथ ने शीशे पर धरे भगवती के हाथ को ढंक लिया। हवा सीरी-सीरी बह रही थी, उनकी सत्ता की घोर उपेक्षा उसमें गूंज उठती थी। भगवती चुप खड़ा रहा। तब लीला कहने लगी—'भगवती, जीवन वास्तव में आजकल बहुत ही घृणित है। मैं करोड़ों को भूखा देखती हूं और देखती हूं, ये मुट्ठी-भर लोग जो जीवन को यातना दे रहे हैं, अमीरों का अधिकार उनकी बेबसी है। लेकिन ईश्वर की जब मर्ज़ी है, तब आदमी पंख फड़फड़ाकर क्या कर सकता है? तुम कुछ भी मानो, लेकिन विश्वास करने से क्या होता है? जितना खोते हैं, उसके सामने यह प्राप्ति है ही क्या?'

'तुम अपने सुखों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो। इसीलिए तुम ईश्वर से इतना डरती हो।'

'और तुम'—लीला ने कोमल स्वर में कहा—'ईश्वर को ठोकर मारकर भी अपने सुखों के लिए कुछ छोड़ना नहीं चाहते।'

वह हंस उठी जैसे न मानना। 'मैं तो तुम्हें नाराज़ देखना चाहती हूं, तब शायद तुम और भी अच्छे लगो।' कुछ देर दोनों चुप रहे। तब भगवती ने कहा—'अच्छा अब मैं चलूं?'

लीला कुछ देर बोली नहीं। उसके मुंह से एक ठण्डी सांस निकली। भगवती ने उसे सुन लिया। वह बोली—'आज अचानक इस गुलाम जीवन में एक आज़ादी का पल कैसे मिल गया। आज तक सब धोखा था। वे किसान मज़दूर कितने सुखी हैं।'

भगवती ठठाकर हंस पड़ा। लीला चौंक पड़ी। आज वह पहली बार इतना खुलकर हंसा था। लीला अपलक देखती रही, जैसे यह तो अब तक मालूम ही नहीं था।

वह कहने लगा—'मुझे खुशी नहीं हो रही है। आप कहेंगी, ये मगरमच्छ, कुत्ते आज़ाद हैं। पिंजडे का बन्दी अच्छा होता है या बेदिमाग झुंड की झुंड भेड़ें, जिनकी इच्छा के बिना अपने परमात्मा के लिए उनकी कुर्बानी दी जाती है ! और शायद आप उसे निभा भी जाएं, क्योंकि आपकी चेतना पर यह बात सदा हावी है कि आपके पीछे त्याग का यश है।'

'मिस्टर भगवती'—लीला चीख उठी। यह चीखना रंगीन होकर भी क्या पत्थर ही है ! ध्वनि भगवती के हृदय में विक्षोभ बनकर उतर गई और साथ ही पुरुष का वह अभिमान जाग उठा, जो उसे नारी के अन्तस्तल पर चोट करके उसे तिल-मिलाया देखकर पैदा होता है।

'आप जा रहे हैं क्या ? आइए, आपको पहुंचा दूं।'

'नहीं, माफ कीजिए'—वह फुंकार उठा।

'भगवती'—लीला की पराजय पुकार उठी।

'लीला'—भगवती लुट गया था।

दोनों एक-दूसरे को बहत देर तक देखते रहे। लीला का हाथ भगवती के हाथ पर गर्म हो गया था।

जेल के घण्टे ने टन-टन करके नौ बजा दिए। दोनों उस नींद से जाग उठे। लीला की आंखों में एक तरलता खेल उठी। उसने अपना हाथ उसके हाथ पर से हटा लिया। भगवती फिर भी वहां से न हटा। लीला ने कहा—'चलो।'

'नहीं,' भगवती ने क्षमा मांगते हुए कहा। उसने देखा, लीला का रूमाल नारी की दो आंखों को चुपचाप सोख उठा। लीला चाहती थी कि या तो वह साथ आकर बैठ जाए या चला जाए।

सहसा उसने कहा—'छुट्टियों में आप कहीं जाएंगे तो नहीं ?'

'जी नहीं, डा० कुमार ने मुझे छुट्टियों में भी लैब में काम करने की इजाज़त दे दी है। अच्छा···नमस्ते !'

'नमस्ते,'—चिड़िया ने पंख खोल दिए थे—'मिलते ही रहिएगा न ?'

'कहां ? आपसे मुलाकात कैसे होगी ?'

'ईश्वर कराएगा, आपने किसी बात का बुरा माना हो, तो माफ कर दीजिए।'

'ओह,'—वह हंस पड़ा—'मैंने ही आपसे कुछ कठोर बातें कही हैं।'

वह चलने लगा। लीला ने गाड़ी स्टार्ट कर दी। चांदनी ने ज़मीन-आसमान एक कर दिया था। हवा के झोंके भगवती के बालों को अस्तव्यस्त करने लगे। छाया बार-बार रूप बदलती थी।

कालेज निस्तब्ध खड़ा था, अकबर का मकबरा ! दिन में, सांझ में कितनी चहल-पहल थी। घास ओस से भीग रही थी। चौकीदार की लालटेन उस विशाल कालेज में धीमे-धीमे धुंधली-सी टिमटिमा रही थी, अंधकार में प्रकाश की एक किरण, मानव के गतिरोध की एकमात्र आशा···

रात को भगवती सोते समय अनजाने ही, पहली बार तकिया सीने से लगाकर सो गया।

लीला जागती रही। उसके हृदय में रह-रहकर एक शूल-सा चुभता था। भगवती ने उसका अपमान किया था। क्यों वह इन्दिरा से स्नेह रख सकता है? इन्दिरा के प्रति लीला को मन ही मन जलन हुई। लवंग ठीक है, जो कभी झुकना नहीं जानती और झुकती है, तब उसे स्वयं ही अनुभव नहीं करती। फिर याद आया। कला की तरह वह शब्दों का जाल भी नहीं बना सकती। कारण? लीला नहीं समझ सकी। वह व्याकुल हो उठी और अपनी असमर्थता पर अपने आप रो उठी। किन्तु भगवती का चित्र उसके सामने एक विराट् पहाड़ की तरह खड़ा रहा और वह देखकर भी कुछ नहीं सोच सकी।

18

वह अपना पत्र खोलकर पढ़ने लगा :

प्रिय कामेश्वर,

बड़े अजीब आदमी हो तुम? जाते वक्त मिले भी नहीं और साथ में ले गए हो किस टेसू को। मैं जानता हूं, एक न एक जानवर पाले बिना तुम्हें खाना भी नहीं पचता है। दशहरे के बाद तुम आ ही जाओगे। बड़े किस्मतवर हो। पहाड़िनें रंग ला रही होंगी। कभी समर को भी सैर कराई या नहीं? मैं समझता हूं, वह अब कुछ ही दिन के मेहमान हैं। तन्दुरुस्ती दिन पर दिन सुधर रही है न? बड़े-बड़े गुल खिले हैं। सुना तुमने? नायाब मियां समर इश्क भी करते हैं। पता नहीं, वह लड़की क्या होगी! अन्दाज से कहा जा सकता है कि हड्डी का ढांचा जरूर उनसे मुहब्बत कर सकता है। लेकिन यह सब कुछ नहीं। प्रो० मिसरा की एक नौकरानी की लड़की से फंस गए थे बेचारे। खुदा रहम करे। बार-बार दुनिया में ज़लज़ले आना ठीक नहीं वरना फरिश्तों को अहसान करने को कोई भी न मिलेगा। अब सुनते हैं मिस लवंग खातून पर नज़र है।

यहां एलेक्शन की बुरी सदा बाकी रह गई है। कमल ज़ोरों से अविश्वास का वोट पास कराने की तैयारी कर रहा है। मैं देखता हूं, मैं कुछ नहीं कर सकता। क्या होगा पता नहीं। विनोद को तो नहीं भूल गए होगे। मैंने तो उससे कह दिया कि बड़े भाई, चक्करों में फंस गए, तो कहीं के नहीं रहोगे। कालेज की लड़कियों को पहचानने में भूल कर गया, उसके कपड़े ज़रूर फट जाएंगे, नतीजा कुछ नहीं निकलेगा। मगर वे अड़े हुए हैं। आपका कहना है कि रानी रेनाल्ड आप पर धीरे-धीरे आशिक हो रही है। मैंने कहा—हरी को भूल गए? हरी और मैक्सुअल! भला कोई बात है? लेकिन आपकी राय है कि वे दोनों सिड़ी हैं; असली इश्क आपसे ही होनेवाला है। फिर बताओ हम क्या करें? पारसाल याद होगा तुम्हें, उसने हिन्दुओं को एक कर दिया था, ईसाई होकर भी। अब देखें, क्या रंग आते हैं? इब्दताए इश्क है।

प्रेसीडेंट होकर भी मैं देख रहा हूं, कुछ खास बात नहीं हुई। कालेज में हम लोग आते हैं और चले जाते हैं, बिरले ही प्रोफेसर और लड़के-लड़कियां हमपर असर

डालते हैं। और फिर जो कालेज की जन्नत के बाहर पैर रखता है, तो आटे-दाल का भाव मालूम पड़ जाता है। हिन्दुस्तान में ज़िन्दा रहना कोई आसान बात नहीं है।

हां, एक बात है। सलीम ने कहा है कि एक चिड़िया आई है। नाम है नादानी; एकदम तमंचा ! मैं देख भी आया हूं। उसकी नायिका ने कहा कि जाड़ों में वह उसे ले जाएगी। तब चाहो तो महीने-भर के रुपये दे दो। वह नहीं जाएगी। तुम कहोगे मारो गोली। मगर भाई, मुझमें अब ताब नहीं है, क्योंकि एक बार उसे देख चुका हूं। क्या बात है ! वैसे तुम्हारे Sentiments और Emotions कभी-कभी तुम्हारे man of action को बिल्कुल दबा देते हैं। फिर भी इस दुनिया की बुज़दिली को ही करुणा और दया कहा जाता है। जब अपनी ज़िन्दगी के गुनाह को हम खुद खराब समझते हैं तब दान-पुन्न करते हैं।

शिमले के क्या ठाठ हैं ? तुम गए क्या कि शहर की लड़कियों ने खाना छोड़ रखा है। अब तो आ जाओ मेरे खंजर !

तुम्हारा
पुराना—
सज्जाद !

कामेश्वर मुस्करा उठा। उसके होंठों से स्नेह का स्वर निकला—'लोफर !'

वह उठकर बाहर निकला। देखा, समर धूप में बैठे कुछ पढ़ते-पढ़ते ऊंघ रहा है!

वह लौट आया। उसे इस व्यक्ति पर दया आती थी। अब कौआ यह चाहे कि मोरनी उसके पीछे-पीछे चला करे; तो आज तक तो ऐसा हुआ नहीं। फिर भी वह चाहता है कि समर उदास न हो, कुछ उसकी तफरीह हो जाया करे।

समर थोड़ी देर बाद जागकर फिर पढ़ने लगा और तन्मय हो गया। पढ़ते-पढ़ते उसने किताब बन्द कर दी और आंखें बन्द करके सोचने लगा।

नीत्शे बायालोजी के Survival of the fittest को लेकर चलता है। ताकतवर कमज़ोर को कुचल दे, यह उसकी राय में बिल्कुल ठीक है।

यह मानव पूंजीवादी संस्था में रहकर अपनी सामाजिक असमर्थता और कमज़ोरियों को खुदा पर ढकेल देता है। वह वैज्ञानिक रीति से जड़ को खोज निकालने से डरता है।

वह एक भूला हुआ गीत गुनगुनाने लगा—

'उस दिन के लिए तैयार हो जाओ जब यह अपूर्ण सभ्यता अपने कच्चे उत्कर्ष पर पहुंच जाएगी और उसके बाद अचानक ही लुढ़ककर ढह जाएगी।

'उस दिन को तुम्हीं देखोगे जब आदमी अपनी आज़ादी के लिए तुम्हारे अन्दर पलनेवाले जानवर से लड़ेगा।

'वह दिन आ रहा है जब हर एक दाने को निचोड़ने पर तुम्हारी थाली में किसानों और मज़दूरों का ख़ून टपक आएगा।

'वह समय पास है जब क्रान्ति चिर सत्य को रुंधी मनुष्यता के बीच से बाहर खींच लाएगी।

'जागो, अब भी जागो, अन्यथा तुम कभी नहीं जागोगे। गरीबों की गर्म आहों से आसमान फट रहा है। यह कपड़ा इतना जर्जर है कि बार-बार सीने से भी तन नहीं ढंक सकता। आदमी नंगा हो रहा है। यह घर भुतहा है, इसमें अपनी ही छाया से डर लगता है।

'नई नींव डाल, नया घर बना, नया कपड़ा बुन, नई भोर होनेवाली है अन्यथा नये प्रकाश में तुझे लज्जा आएगी।'

कामेश्वर ने गीत का गुंजन सुनकर ठहाका लगाया और बाहर आकर कहने लगा—'मियां, अभी तो दम तोड़ रहे थे और अब यह जोश ?'

समर मुस्करा दिया।

शाम की धूप पेड़ों पर चढ़ने लगी थी। कामेश्वर ने कहा—'चलो, आज तुम्हें 'वाइल्ड फ्लावर हाल' ले चलें।'

कामेश्वर के सामने समर मना करने को एकदम भूल जाता था।

उसने केवल कहा—'चलो, कपड़े पहन लें।'

दोनों कपड़े बदलने लगे।

Wild Flower Hall, ख़ूबसूरती, हुस्न और अदा, दौलत और शानो-शौकत, वैभव, यानी रक्तभेद, वर्गभेद। यह शिमला है। यहां वायसराय रहता है। हिन्दुस्तान के शहंशाह का प्रतिनिधि, जिसके सामने चालीस करोड़ आदमी हैं और जिनकी आवाज़ उसके सामने भेड़ों की 'में-में' से कुछ अधिक महत्त्व नहीं रखती। उसे सुख है। वह सुख भोगने ही के लिए भारत भेजा गया है।

आसमान में बादल छा रहे हैं। काले, सफेद, ऊदे, नीले। हंस रहे हैं, टकरा रहे हैं। अब थोड़ी ही देर में टपक जाएंगे, रो पड़ेंगे। मेज़ों पर ठाठ से आदमी बैठे थे, जिन्हें देखकर याद आती है उन लोगों की जिनकी गर्दनें फ्रांस और रूस के गुंडे काट चुके हैं।

वेटर ने आकर सलाम बजाया। समर को याद आया, उसने किसी से कहा था कि अंग्रेज़ों के आने पर तीन जात बढ़ गई हैं : एक आई० सी० एस०, दूसरे वेटर और बेयरर, तीसरी आया! और यह वेटर है। वेटर के मुंह से निकला—'हजूर!

कामेश्वर ने पूछा—'तुम क्या पिओगे समर ?'

'मैं ?'—समर सोचने लगा।

कामेश्वर ने ही कहा—'टेनेन्ट्स बियर ठीक रहेगी। अच्छा हटाओ, सोलन ले आओ। तुम्हारे लिए और कुछ ठीक नहीं। और मैं, मैं,' वह सोचकर उंगली हिलाते-हिलाते कहने लगा—'काकटेल! काकटेल लाओ।'

वेटर चला गया। कामेश्वर कहता गया—'वैसे शिमले में शैम्पेन का मजा है, मगर मुझे व्हिस्की और रम के खास मेल में जो मज़ा आता है वह और किसी में नहीं...'

शिमले की ठण्ड, मालरोड की शान! 'बियर भी कोई शराब है ?'

मगर जब दोनों पीने बैठे, नशा ऊपर के वैभव की तरफ फौरन चढ़ने लगा। जीवन का 'लोअर बाज़ार' अब कहीं नहीं है। घिचिर-पिचिर, काले गंदे हिन्दुस्तानी,

आदमी साथ नहीं देगा। वीरेश्वर भी अलग हो चुका है। वह तुम्हें सज्जाद के पक्ष में खींचना चाहता है। इसलिए दोनों अपने-अपने दांव लगा रहे हैं और तुम चूंकि कालेज में प्रसिद्ध होना चाहते हो, इन छोटी-छोटी बातों में अवश्य फंस जाओगे और दोगले करार दिए जाओगे। क्या मैं गलत कह रही हूं? तुमने कभी जीवन की गम्भीरता को नहीं परखा। तुम्हारी वेदना तुम्हारी मानसिक निर्बलता ही रही है।'

हरी अप्रतिभ हो गया। उसने क्रोध से कहा—'न मैं वीरेश्वर की बातों में आऊंगा, न कमल के चक्करों में फंस सकूंगा। मुझे तुमसे मतलब था। लेकिन तुमने जो इतनी सरलता से मुझे दूध की मक्खी की तरह निकाल फेंका, वह मेरे लिए एक महान् शिक्षा है। और मुझे उल्लू बनानेवाली से मैं यदि कहूंगा कि वह और कुछ नहीं और ईसाइनों की तरह चालबाज है, तो वह क्रोध करेगी और प्रेम तुरन्त घृणा के रूप में बदल जाएगा।

'लेकिन यह गलत है,'—रानी ने बात काटकर कहा—'मैं तुम्हें अब भी प्यार करती हूं।'

हरी ठठाकर हंस पड़ा। उसकी इस हंसी में उसके हृदय का कितना भारी हाहाकार छिपा था, रानी ने उसे बहुत थोड़ा अनुभव किया। उसके इस अविश्वास से वह सिहर उठी। उसने कहा—'मैं जानती हूं, तुम विक्षुब्ध हो, तभी इस प्रकार हंस उठे हो। किन्तु एक बात पूछती हूं, उत्तर दोगे?'

हरी ने सिर उठाकर उसकी ओर प्रश्न-भरी आंखों से देखा।

'क्या तुम्हारा प्रेम अपने-आपमें पूर्ण है, समाज से स्वतन्त्र है?'—रानी पूछकर उसको निर्निमेष दृष्टि से देखती रही। जिससे हरी की बुभुक्षित आकांक्षा कुण्ठित हो गई। उसने उसी भाव से उत्तर दिया—'मेरा प्रेम यदि केवल तृष्णा है, केवल आनन्द की धारणा है, तो भी तुम्हें उसका अपमान करने का कोई कारण नहीं। क्या वह तुम्हारे लिए भी तृष्णा और आंगिक सुख की भावना मात्र नहीं है? क्या तुम समझती हो, मैं कुछ अधिक प्राप्त कर सकूंगा और तुम नुकसान में रह जाओगी? यदि तुम्हारा विचार इतना जघन्य है, तो तुम वास्तव में अपने स्वत्वों को वेश्या का अधिकार मात्र समझती रही हो।'

'हरी!' रानी जिल्ला उठी—'तुम शायद होश में नहीं हो। उचित-अनुचित का तुम्हें तनिक भी ध्यान नहीं रहा है। मैं तुम्हें क्षमा करती हूं।'

हरी, जो यह जानकर प्रसन्न हुआ था कि रानी तिलमिला गई है, इस विचार से पुनः अवरुद्ध हो गया कि वह अपने-आपको उसकी तुलना में इतना उच्च समझती है कि उसमें क्षमा करने की महत्त्वाकांक्षा होना अनिवार्य है। रानी ने कहा—'हरी!' उसके स्वर में कोमलता थी, दृढ़ता थी और निरासक्ति का एक ऐसा गहन जाल था जो हरी शीघ्र ही समझ नहीं सका। उसने आंखें उठाकर कहा—'तुम समझदार हो मुझे तुम पर विश्वास है, मैं जानती हूं तुम मेरी हानि करना नहीं चाहते, क्योंकि तुम स्वयं समझदार हो। किन्तु क्या यह सब ठीक हो गया। जो है सो तो है ही।' फिर वह होंठ भींच गई जैसे उसने बलात् कुछ भीतर ही रोक लिया जो शायद तनिक-सी असावधानी से बाहर निकल आता। स्त्री वही कहना चाहती है जिसमें उसकी बात अद्भुत

लगे, जैसे बाजीगर 'अब्बां' करके मुंह से बड़े-बड़े लोहे के गोले निकाल देता है। किन्तु वास्तव में स्त्री इतनी बेसमझी की बात करती है कि वह उसे स्वयं नहीं समझ पाती। उसे जो यह विश्वास व्यर्थ ही हो जाता है कि वह जो कर रही है, सब ठीक है, क्योंकि उसका मान बहुत उच्च है, वह पवित्र है, यही सब मूर्खताओं का मूल है। वह बहती है, डूबने लगती है, इसीसे बचानेवाले की गर्दन पकड़कर उसे भी तैरने से असमर्थ कर देती है। उसके बन्धन ही उसकी समस्त अधूरी तृष्णा के मानसिक व्यभिचार हैं।

रानी कहती गई—'लेकिन···लेकिन तुम्हीं बताओ हरी, तुम स्वयं समझदार हो। यह गलत है, मैं इतना ही जानती हूं। यह जो है वह तो है ही, उसको तो बदला नहीं जा सकता।

हरी का क्रोध दु:ख में बदल गया। उसने देखा कि यह स्त्री जो अपने-आपको बहुत बढ़ा-चढ़ाकर ज़बर्दस्ती अपनी ही समझ में इतना महत्त्वपूर्ण बना रही है, वास्तव में वह और कुछ नहीं, इसकी दयनीय अवस्था है। यह कुछ नहीं, केवल एक गाय के समान है। ईसाई होने की जो स्वतन्त्रता की भावना इसको नये तौर से रटाई गई है, वह वास्तव में एक छलना है। यह उतनी ही पर्देदार है जितनी मुसलमान औरत और उतनी ही रूढ़ है जितनी हिन्दू औरत। उम अंधकार में इसे एक विलायती तृष्णा मिल गई है, जिसके कारण यह न घर की रही है न बाहर की।'

हरी ने हंसकर उससे एक कठोर बात कही—'तुम मेरी राय में मैक्सुअल से शादी कर लो।'

रानी क्रोध से कांप उठी। उसने कहा—'तुम मेरा अपमान कर रहे हो?'

हरी ने कहा—'आप मेरी बड़ी इज्ज़त कर रही थीं।'

रानी की आंखें तमतमाई-सी लाल हो गईं। उसने भर्राई आवाज़ में कहा—'घृणा, हरी, घृणा। इस संसार में घृणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तुम मेरी परवशता को जानकर मुझे मुक्ति की छलना में नहीं रहने देना चाहते?'

हरी ने कहा—'मुझे क्षमा करो।' किन्तु बात ने जैसे कोई प्रभाव नहीं डाला।

रानी ने कहा—'मैं मैक्सुअल से घृणा करती हूं और अंत:करण से घृणा करती हूं। उसने मेरा सुख-स्वप्न चकनाचूर कर दिया है। उसने मुझे बदनाम किया है। उसने मेरे पिता को गुमनाम चिट्ठियां लिखी हैं। लेकिन मैं इससे नहीं चिढ़ी, मैं विक्षुब्ध हूं उसकी विजय की अनुभूति पर। वह जो यह समझता है कि इन सबसे उसने मुझे कुचलकर अपने को हावी कर दिया है, यही मैं नहीं सह सकती। उसने ईसाइयों को इकट्ठा करके उन्हें बताया है कि वे लोग घृणित हैं और ईसाइयों ने उसके घृणा के प्रचार को, साम्प्रदायिकता के दायरे में, स्वीकार किया है, अपनी रक्षा का एकमात्र न्याय समझकर मैं उसी पर कुठाराघात करना चाहती हूं। इसके लिए मुझे अपना सुख त्याग देना होगा। मुझे तुमसे सम्बन्ध तोड़ देना होगा, तभी मैं अपने कार्य में सफल हो सकूंगी।'

हरी ने व्यंग्य से पूछा—'तो महारानी क्या करेंगी?'

रानी ने कहा—'जो करूंगी वह तो तुम भी देखोगे। जो तुम पुरुष होकर नहीं कर पाए वही मैं स्त्री होकर कर दिखाऊंगी। स्त्री की शक्ति क्या है, यह तुम भी देख

लेना। हरी का मन नहीं भरा। उसकी अजीब हालत हो गई। उसने ऐसे देखा जैसे यह लड़की अपने-आपको आखिर समझती क्या है? रानी उसकी इस अवस्था को देखकर मन ही मन हर्षित हुई। उसने कहा—'मैक्सुअल ने जो मेरी ज़िन्दगी हराम कर दी है, इसका बदला मैं उसकी ज़िन्दगी हराम करके लूंगी। जो तीर उसने मुझ पर चलाए हैं, मैं उन्हींको उनके विरुद्ध कर दूंगी। जो कुत्ते उसने मुझ पर छोड़े हैं, वे उसे ही काटने को दौड़ पड़ेंगे और इसके लिए मैंने अपने दिमाग में एक नक्शा बना लिया है। जिस तरह क्रान्ति करने के लिए षड्यन्त्र होता है, उसी तरह मैं भी एक कुचक्र रचने वाली हूं। मैंने अपने काम के लिए एक आदमी चुना है और वह ऐसा है जो यदि मेरे बस में आ गया, तो बाज़ी इधर की उधर कर देगा।'

हरी ने कहा—'वह कौन है जिस पर तुम इतनी दृष्टि लगाए बैठी हो? और वह तुम्हारे वश में आएगा ही क्यों?'

रानी हंस पड़ी। उसने आंखें नचाकर कहा—'मैं उससे प्रेम जो करूंगी। तुमने मुझे सिखा जो दिया है।'

हरी ने उद्विग्न होकर पूछा—'वह है कौन?'

'वह? विनोद को जानते हो?' रानी ने पूछा—'वह इन चक्करों में नहीं पड़ता। लेकिन मुझे आशा है, उसे मैं पागल बना दूंगी। तव जो मैं आशा करती हूं वही पूर्ण होगी।'

'और यदि वह तुमसे सचमुच प्रेम करने लगे तो?' हरी ने आंखें विस्फारित करके देखा।

'तो उसे आध्यात्मिक बनाने का प्रयत्न करूंगी। आंगिक प्रेम नश्वर होता है न? जैसा हमारा-तुम्हारा। आध्यात्मिक होने से प्रेम चलता है।' वह हंसी। उसके घुंघराले बाल कांप उठे। हरी ने देखा, उसके सामने एक रहस्य खड़ा था। जो प्रतिशोध के लिए कितना पागल है, संसार को झूठ बोलकर बनाने के लिए कितना व्यग्र है; उच्छृङ्खल की सीमा को पार करना चाहता है।

रानी ने कहा—'जिस दिन विनोद मुझ पर हावी होने लगेगा, मैं उससे सम्बन्ध तोड़ दूंगी।'

हरी ने उस भय की आकांक्षा से विचलित होकर कहा—'तो विनोद का क्या हाल होगा?'

रानी ने मुस्कराकर कहा—'होगा क्या? कुछ नहीं। मैं तो बदनाम हूं ही और बदनाम हो जाऊंगी। मुझे किसी से क्या लेना? लेकिन विनोद को जो ठेस पहुंचेगी वह मेरा सबसे बड़ा संतोष होगा। वे सब मेरे अपमान से प्रसन्न हुए हैं। उनके अभिमान के चूर होने पर क्या मुझे प्रसन्न होने का अधिकार नहीं है? इसमें मैक्सुअल तो कहीं का न रहेगा!' उसने निश्चय से सिर हिलाया—'वह तो बिल्कुल निरीह, घृणित साबित हो जायेगा। उसकी इतनी हिम्मत कि उसने मेरी ओर उंगली उठाई? विनोद का दिल टूटेगा, मैं हंसूंगी। ईसाइयों पर चोट होगी, मेरे लिए यही एक तृप्ति का कारण होगा।' फिर चुप रहकर पूछा—'राजसोहन को जानते हो?'

हरी ने कहा—'जानता तो हूं।'

2426

'उसकी विनोद से मित्रता है। वह अपने सिद्धान्तों पर अटल है। वह प्रेम भी नहीं करता, क्योंकि उसके पास समय नहीं है। वह भी ईसाइयों से घृणा करता है।'

हरी ने पूछा—'क्यों ?'

रानी ने हंसकर कहा—'क्योंकि पहले वह जिस लड़की को चाहता था, वह मैक्सुअल की बहिन थी। इसी मैक्सुअल के कारण सब समाप्त हो गया। वह भी काम देगा।'

वह हंस पड़ी। हरी ने देखा, वह बीभत्स थी। क्या सोच रही है वह यह सब। अपनी ही जड़ों पर आघात करके यह कहां गिरेगी, इसका इसे कोई ज्ञान नहीं है। विनोद के विरोध की गुरुता इसकी समझ में नहीं आई है।

रानी ने आकाश की ओर देखते हुए कहा—'मैं घृणा के सहारे जीऊंगी, क्योंकि मुझे यही सिखाया गया है। मेरे पिता धर्म के लिए नहीं, पादरी के सिखावे में आकर धन के लिए ईसाई हुए थे। उसके बाद भी अंग्रेज़ पादरी ने उन्हें कभी बराबरी का दर्जा नहीं दिया। यह ईसा का उपदेश नहीं है।

रानी ने सांस लेकर फिर कहा—'दुःख कायर करते हैं। अभी तुम्हारे सामने समस्त जीवन पड़ा है। उसे बरबाद क्यों करते हो ? जीवन में यदि कभी तुम्हें मेरे स्नेह की आवश्यकता पड़े, तो मुझे याद करना। मैं सदा तुम्हें मदद दूंगी, या कहो तुम्हारी सेवा के लिए तत्पर रहूंगी। क्रोध से तुम मेरा क्या, अपना भी कोई लाभ नहीं कर सकते।'

हरी ने सुना। उसका हृदय भीतर ही भीतर जलकर भस्म हो गया, जिसके भीतर हड्डियों की तरह स्मृतियों का एक ढांचा पड़ा था। एक दिन वे स्मृतियां सजीव थीं, उस दिन जीवन स्वर्ग था, और आज ? उसने बायें हाथ से अपनी आंखों को ढंक लिया और उसके मुंह से निकला—'बर्बर ?'

रानी ने सुना और उसकी आंखों से दो बूंदें टपक पड़ीं। हरी ने देखा और विस्मय से आंखें फाड़े देखता रहा।

20

बाढ़-पीड़ितों की सेवा करने के लिए कालेज के विद्यार्थी गांव में डेरा डाले हुए हैं। काम करने के बाद विश्राम करने की जगह है। कई कुर्सियां पड़ी हैं। एक बड़ी-सी बीच की मेज़ ढलती धूप में चमक रही है। एक ओर एक स्टूल पड़ा है जिसपर वाश-बेसिन रखा है। कपड़े और टोप टांगने की एक खूंटी भी वहीं रखी है।

वीरसिंह आकर बेसिन के पास खड़ा होकर चिल्ला उठा—'महाराज, हाथ धुला जाओ।'

बुड्ढा महाराज आकर लोटे में से पानी डालने लगा। अभी वह हाथ धुला ही रहा था कि वीरेश्वर ने आगे बढ़कर कहा—'महाराज, मेरा हाथ धुला दो और

इनका भी।'

वह कला थी।

महाराज पानी डालने लगा। वीरेश्वर ने कहा—'बड़े भाई, ज़रा पानी धीरे-धीरे डालो।'

'अच्छा बाबूजी!'

'लाओ,'—वीरेश्वर ने पूछा—'लाए हो? लाओ-लाओ।' और तौलिया लेकर बोला—'मिस कला, इजाज़त हो तो मैं···'

'ज़रूर-ज़रूर,'—वह मुस्कराई—'आप तकल्लुफ भी कर लेते हैं?'

वीरेश्वर ने कहा—'वीरसिंह! तुम्हें तो शायद फिर जाना है?'

'जाना तो तुम्हें भी है,'—वीरसिंह ने चोट की।

'मगर मैं'—वीरेश्वर कहने लगा—'जा कब रहा हूं? न भाई, बहुत थक गया हूं, अक्ल चकरा गई है।

'इतने ही से?'—कला ने पूछा।

'इतने ही से?' वह चौंक पड़ा, 'कह दिया न आपने? मैं तो जानता था कि आप यही कहेंगी। मगर आपको यह भी मालूम है कि हमें क्या-क्या करना पड़ता है? जहां आप ज़ख्मी से दो मीठी बातें करके पट्टी-वट्टी बांधती हैं वहां हमें स्ट्रेचर उठाना पड़ता है। या खुदा, वीरसिंह, वह कितना भारी था कमबख्त! सुअर से तो उसके बाल थे और प्रोफेसर मिसरा को देखकर समझा, डाक्टर साहब आ गए। नहीं भाई, मैं नहीं जाऊंगा।'

वीरेश्वर एक कुर्सी पर डटकर बैठ गया। वीरसिंह कहने लगा—'अच्छा तो आप बैठिए मिस कला! मैं अभी हाज़िर हुआ।'

कला ने धीरे से कहा—'अच्छा, जल्दी आइएगा न?'

वीरसिंह चला गया। कला मेज़ पर ही बैठ गई और वीरेश्वर को देखने लगी। वीरेश्वर ने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला और सिगरेट मुंह से लगा ली। हाथ बढ़ाकर वीरेश्वर बोला—'आप पीती हैं?'

लाल रंग उसके गालों पर फैल गया। वह कह उठी—'जी नहीं, पीती तो नहीं, मगर···'

एक सिगरेट निकालकर उसने मुंह से लगा ली।

वीरेश्वर ने सिगरेट जलाकर दियासलाई उसकी तरफ बढ़ाकर कहा—'लीजिए।'

कला ने सिगरेट मुंह से निकालकर कहा—'आप लोगों को तो कुछ भी नहीं मालूम। लड़कियां कहीं सिगरेट पीती हैं?' और वह हंस पड़ी। उसकी हंसी का छोर पकड़कर वीरेश्वर कहने लगा—'ओहो, तो आप लड़की हैं! लड़कियां तो पर्दे में रहती हैं, फिर आप बाहर कैसे हैं! अच्छा समझ गया, यह Morality के खिलाफ है। लाइए, वापस कर दीजिए, डेढ़ पैसे की आती है।'

उसने सिगरेट लेकर रख ली, मगर कहता गया—'लेकिन लड़कियां क्यों नहीं पी सकतीं?'

'बस अब रहने दीजिए'—सुनकर वह बोल उठा—'अच्छा।' दोनों चुप हो गए। नेपथ्य में ही कहीं सुदूर आंखों के पर एक रोने की आवाज़ गूंज उठी। इस आदमी को अपना घर लुट जाने पर कितना अफसोस होता है! वह समझता है कि जो उसके बाप-दादा ने बनाया था वही अच्छा था, उसका स्वयं बनाया घर अच्छा नहीं होगा!

रोना उस सन्नाटे में भयंकरता से गूंज उठा। कला सिहर उठी।

ऊंटों पर दो सवार रेगिस्तान में जाते हैं। वहां एक तूफान उठता है। अरब के उस तूफान की आंधी से कोई नहीं बचता। तब सवार देखा करते हैं। उसके बाद जब क्षीण चांद निकल आता है और सन्नाटा छा जाता है तब दर्दनाक आवाज़ें उस खामोशी को भेदने लगती हैं और सवार मदद करने को ऊंटों पर से उतर पड़ते हैं। कला ने दर्द-भरी आवाज़ में कहा—'कौन रो रहा है?'

किन्तु वह चौंक पड़ी। वीरेश्वर कह रहा था—'रो रहा है? रो रहा होगा कोई, जिसका कोई मर गया होगा! आपको किस बात का अफसोस है?'

'आपको किसी की मौत पर अफसोस नहीं होता?' वह पूछ बैठी।

वीरेश्वर निर्विकार बनकर बोला—'क्यों? मौत पर अफसोस क्यों होने लगा? जब Organic cells काम करना बन्द कर देती हैं, तो आदमी मर जाता है। एक ज़माना वह भी था जब मौत थी ही नहीं। एक रन्ध्र का अमीबा मरता ही न था।'

'लेकिन'—कला ने उदास होकर कहा—'आदमीयत भी तो कोई चीज़ होती है।'

'आदमीयत अगर रोना है, तो वह आपकी जायदाद बने। ज़ख्मी को दवा पिलाने तक मेरी आदमीयत है और मरने पर फूंक देने में।'

'तो आप मुहब्बत जैसी चीज़ को भी नहीं मानते?'

'जी, मानी तो वह चीज़ जाती है जो असल में होती है'—उसने फूंककर मुंह के चारों तरफ एकत्रित धुआं इधर-उधर उड़ा दिया।

'ज़मीन सूरज के चारों तरफ घूमती है, चांद ज़मीन के गिर्द घूमता है, तो कहिए कि सूरज को ज़मीन से इश्क हो गया है। खिचाव प्रकृति का एक नियम है: औरत और मर्द भी एक-दूसरे को चाहते हैं, वह बाप बनना चाहता है, वह मां बनना चाहती है।'

कला प्रतिवाद करने लगी—'लेकिन मां तो अपने बच्चे की तरफ खिची रहती है।'

वीरेश्वर मुस्कराया। 'वह खुदगर्ज़ी है। मिस कला! आप अपने हाथ को चाहती हैं, मां बच्चे को चाहती है। वफादारी, प्यार, खिचाव और नाज़ुकदिली निकाल दीजिए और फिर बताइए मुहब्बत क्या है।'

कला हंस पड़ी। उसने कहा—'हाथ, पांव, आंख, कान, नाक, निकाल दीजिए और कहिए कि आदमी क्या है?'

'नहीं मिस, आदमी एक भौतिक पदार्थ है और आपका प्रेम केवल एक विचार है, एक वासना है। मुझे बताइए कि युवती-युवक एक-दूसरे को हमउम्र क्यों खोजते हैं। प्रेम का एक कायदा है और आप व्यर्थ बात का बतंगड़ बना रही हैं।'

'तो आप यहां आए किसलिए हैं ? हमदर्दी दिखाना तो दूर रहा, बेकार ही एक इल्लत और मोल ले ली।'

'आप मेरा मतलब नहीं समझीं। मरते सब हैं, मगर बाढ़ में, गरीबी में मरना बुरा है···' फिर वह कुछ सोचते हुए बोला—'और बुरा-अच्छा भी कुछ नहीं होता, लेकिन यह न्याय नहीं है।'

'तो आप'—कला पकड़ बैठी—'ग़रीबों के लिए नहीं, वरन् अपने रुपये-पैसे के पाप का प्रायश्चित्त करने आए हैं ?'

वीरेश्वर कह पड़ा—'ऊंहूं, आप समझीं नहीं।'

'नहीं समझी,'—कला बिगड़कर बोली—'आप बड़े कमाल की बात कह रहे हैं ! साफ-साफ कहिए कि आप उनसे नफरत करते हैं !'

'बिलकुल गलत समझा आपने। आप नफरत और मुहब्बत को बिलकुल अलग-अलग दो चीज़ें मानती हैं, मैं दोनों में ज़रा-सा फर्क देखता हूं।'

'जी, वह क्या ?'

'ठीक पूछा आपने। देखिए, प्रेम में आदमी एक-दूसरे को ज़्यादा समझने लगता है और घृणा में अपने-आपको ज़्यादा समझता है। बात वही है। वास्तव में न कोई बात सच्ची है, न झूठी। एक बाज़ार-भाव है, एक असली कीमत। असल कीमत के ही चारों तरफ बाज़ार-भाव घूमता रहता है। जब मजनूं लैला में मिल गया था, तब वे दोनों दो न रहकर एक हो गए थे। मजनूं को लैला ही लैला नज़र आती थी, यानी लैला होकर भी उसका ही अपनापन निखर आया था, यानी कि अपने आपको खुद ज़्यादा समझने लगा था। और नफ़रत में यह शुरू ही से हो जाता है। प्रेम प्रारम्भ होता है इच्छा पर और समाप्त होता है त्याग पर। नफरत में भी यही होता है। अर्थात् एक घर जल चुकने पर छोड़ता है, तो दूसरा वैसे ही। युगों से मनुष्य प्रेम-प्रेम कहकर अपने-आपको धोखा देता आ रहा है और घृणा अगर बुरी लगती है, तो इसीलिए कि आपने यह शब्द सदा बिना समझे बुरा मान लिया है।'

सांझ आ रही थी। रोने की आवाज़ फिर अंधियारे की तरह बढ़ रही थी। कला कह पड़ी—'आप तो हैं पत्थर। मुझसे तो नहीं सुना जाता। मेरा तो दिल दहलता है।'

'दिल !' वीरेश्वर कहने लगा—'यह क्या चीज़ होती है ?'

कला ने बात काटकर कहा—'रहने दीजिए, बस रहने दीजिए। चलिए देख आएं। जाने किसपर क्या आफत पड़ी है, चलिए न !'

वीरेश्वर ने उठकर कहा—'चलिए।' और घिरते अन्धकार में दोनों एक तरफ बढ़ गए। दूसरी तरफ से दो लड़के आकर बैठ गए।

एक ने कहा—'यार मैक्सुअल, मैं तो काम करते-करते तंग आ गया।'

मैक्सुअल ने कहा—'कोई फिकर नहीं है, दोस्त ! काम करने का सर्टिफिकेट तो मिल ही जाएगा। सिगरेट दो न यार !' उसने ऐसे कहा जैसे फिर ले लेना।

'जी हां, शुक्रिया !' और उसने अकेले मुंह में सिगरेट लगा ली। एकाएक मैक्सुअल ने फुसफुसाकर कहा—'मिसरा आ रहा है मिसरा। बुझा दे इसे।'

प्रो० मिसरा ने मेज़ के सामने बैठकर अपनी सिगरेट जलाई और पुकार उठा—'महाराज !'

'जी बावूजी, आया।'

शाहंशाह ने फिर कहा—'चाय और टोस्ट !' दोनों लड़के आदाब अर्ज़ करके वहीं बैठ गए। महाराज खाने-पीने का सामान रख गया।

मैक्सुअल ने कहा—'काम तो खूब चल रहा है।'

प्रो० मिसरा ने सुना नहीं। वह चाय बनाकर प्याला उसकी ओर बढ़ाते हुए बोला—'लीजिए।'

'ओह, थैंक्यू सर' कहकर उसने प्याला कृतार्थ होते हुए ले लिया। साथी के लिए कृतज्ञता दिखाने को शब्द ही नहीं रहे। वह दिल में मैक्सुअल को कोसने लगा।

मैक्सुअल ने फटा दामन सीने की कोशिश की—'उम्मीद है, यहां का काम कर तक खत्म हो जाएगा।'

प्रोफेसर मिसरा में चाय पीकर जान पड़ गई। कहने लगे—'ज़रूर ! अब की ज़्यादा काम सिर्फ दो ने किया है, कला और वीरसिंह ने। बड़ी हुशियार लड़की है।'

मैक्सुअल ने दबी ज़बान से कहा—'जी' और चुपचाप चाय पीता रहा। उसका कहीं कोई ज़िक्र नहीं था।

फिर एकाएक उसे कुछ ध्यान आया। वह बोला—'मगर वीरेश्वर...'

प्रोफेसर चमक उठा। 'किसकी बात छेड़ दी आपने भी ? वे कुछ करने-धरने के हैं ? उन्हें तो कई साल हो गए न कालेज में ?'

'जी हां'—मैक्सुअल ने सिर हिलाया—'सात साल का तजुर्बा है। ज़रा मुंह-फट है...'

'जी नहीं, तमीज़ उनमें ज़रूरत से ज़्यादा है।' प्रोफेसर हंसा, उसकी हंसी में लड़कों की बनावटी हंसी डूब गई।

कहीं से वीरेश्वर चुपचाप आकर बैठ गया। उसके मुंह की सिगरेट ने छिपना कभी नहीं सीखा था। प्रोफेसर पर निगाह पड़ते ही वह सिगरेट मुंह से निकाले बिना ही बोला—'हलो सर ! कहिए मिज़ाज तो अच्छे हैं ?'

प्रोफेसर ने बात करते हुए कहा—'आइए-आइए। इनायत है बड़े लोगों की। आप तो एकदम आसमान से टूट पड़े !'

वीरेश्वर हंसा। उसने कुछ भी नहीं कहा। उसकी हंसी एक बहुत बड़ी बदतमीज़ी बनकर फैल गई।

प्रो० ने गम्भीर होकर पूछा—'मिस कला कहां हैं ?'

'यहीं कहीं पट्टी-वट्टी बांध रही होंगी।'

प्रोफेसर ने कहा—'आप और वह तो साथ-साथ गए थे न ?'

'जी हां,'—वीरेश्वर ने कहा—'देखा था आपने ?' 'आपने' के पीछे के प्रश्न-सूचक चिह्नों की गणना करना उसके स्वर के व्यंग्य से ही हो सकती है। केवल एक प्रश्न और वह भी बहुत बड़ा।

'लड़कियां...' प्रोफेसर ने कुछ कहना चाहा, किन्तु वह बात काटकर बोला—

'ठीक है, आपका मतलब मैं समझ गया। मैं भी यही सोचता था। देखिए न ? कालेज में पढ़नेवाली लड़कियों की कितनी आफतें हैं ! अगर वे किसी से नहीं मिलती-जुलती, तो वे बनती हैं, अपने आपको कुछ समझती हैं और अगर सबसे मिलती-जुलती हैं, तो उनका चाल-चलन खराब है, वे आवारा हैं और अगर खास-खास आदमियों से मिलती-जुलती हैं, तो दाल में काला नज़र आने लगता है। वाह रे हिन्दुस्तान ! बलिहारी है तेरी लड़कियों पर। तिसपर प्रोफेसर चाहते हैं कि लड़कों से लड़कियां बिलकुल बातें न करें।'

'क्योंकि···'

वीरेश्वर उसे टालकर कहता गया—'मगर व्यक्तिगत रूप से मैं लड़कियों को परमात्मा की कोई चतुर रचना नहीं समझता। वे भी आपस में फोश बकती हैं, मगर लड़कों के सामने भीगी बिल्ली बन जाती हैं। जैसे मां के सामने जाकर कॉलेज के हज़रत लड़के, क्यों क्या राय है आपकी !'

मैक्सुअल इस चुप्पी को न सहकर बोल उठा—'वह तो होगा ही, क्योंकि मर्द मर्द है और औरत औरत ही है।'

वीरेश्वर ने कहा—'खूब कहा आपने ! मैं जानता था। मुझे मालूम था।'

प्रोफेसर ने कहा—'तो आप प्रेम जैसी चीज़ से भी जानकारी रखते हैं ?'

वीरेश्वर घिर-घिराकर कह उठा—'प्रेम ? क्यों, आप बुरा समझते हैं ? मैं एक दिमागी सतह तैयार कर लेना चाहता हूं, क्योंकि गुलामों को प्रेम में पड़कर गुलामी को भूल जाने का कोई अधिकार नहीं है। खैर जाने दीजिए। अरे, अंधेरा हो गया। अरे भाई महाराज, कुछ रोशनी-ओशनी का इन्तज़ाम करो।'

महाराज ने कहा—'अच्छा बाबूजी !'

कुछ देर सन्नाटा घूमता रहा। मिस लवंग ने अचानक ही आकर कहा—'नमस्ते !'

सब चौंककर बोल उठे—'ओहो, नमस्ते, आइए, आइए।'

वीरेश्वर ने कहा—'कहिए, मिज़ाज अच्छे हैं ?'

'कृपा है आपकी'—कहती हुई वह एक कुर्सी पर बैठ गई।

मैक्सुअल ने टाई की गांठ ठीक करते हुए पूछा—'अब आपकी तबियत तो ठीक रहती है न ?'

लवंग हंस पड़ी, मानो उसे यह तकल्लुफ भाता है। वह ऐसे आदमियों को पसन्द करती है जो उसके बैठने के बाद बैठें, उसके खड़े होने पर स्वयं खड़े हो जाएं।

वीरसिंह भन्नाता हुआ आया। उसने कुछ नहीं कहा। महाराज चाय की दूसरी केटली लाकर रख गया। उसने दो कप बनाकर, एक लवंग की तरफ बढ़ाते हुए कहा—'लीजिए।'

लवंग ने मुस्कराकर कहा—'शुक्रिया।'

कुछ देर चुप्पी खेलती रही। तब लवंग वीरसिंह से कहने लगी—'अब तो आप सेवा कर रहे हैं न ?'

'जी हां,'—उसने विश्वास से कहा—'प्रयत्न है।' और एकदम जोश में आकर

कह उठा—'मैं एक नया समाज बना देना चाहता हूं। देखिए, आप एक अछूत हैं...।

लवंग नें चौंककर कहा—'जी नहीं, मैं तो...'

वीरेश्वर हंसने लगा। मगर वीरसिंह ने बात काटकर कहना जारी रखा—'मान लीजिए न ! कुछ हर्ज है ? तो आपको भी मैं एक ब्राह्मण के साथ बिठाना चाहता हूं। मैं एक ऐसा समाज बना देना चाहता हूं जहां बराबरी हो, जहां हृदय और शरीर की शक्तियां एक-दूसरे पर निर्भर हों।'

लवंग ने कहा—'भूलिए नहीं मिस्टर वीरसिंह, सूअर फिर भी सूअर ही रहेगा।'

वीरसिंह तिनक गया। वह चेतकर बोला—'लेकिन एक मेहतर और अंग्रेज के सूअर में कितना फर्क होता है मिस लवंग, अगर जान पड़ जाए तो पत्थर बोल सकता है।'

'अगर ही का तो सवाल है।' वह चीख उठी।

वीरसिंह ने कहना चाहा—'सुधार', किन्तु वीरेश्वर बिना सुने कहने लगा—'कितने घण्टे सोते हो वीरसिंह ? नींद तो पूरी हो जाती हैं न ? क्यों मिस लवंग ! आप इन बातों में कुछ खास दिलचस्पी नहीं लेतीं ?'

'क्यों नहीं ?'—लवंग ने कहा—'दिलचस्पी तो दिल से ली जाती है न ?'

वीरसिंह बड़बड़ाया—'और ये हाथ कब काम आते हैं ?'

लवंग हंसी और हंसते-हंसते कहने लगी—'क्या बात है ! ठीक ही है, ठीक ही है। लेकिन क्या बात है कि आप समाजवादियों की तरह 'हम' न कहकर 'मैं' कहते हैं ?'

वीरेश्वर ने कहा—'Beautiful (सुन्दर)।'

प्रोफेसर ने जवाब दिया—'अभी ये उतने बक्की नहीं हुए हैं।' फिर कुछ रुककर उसने कहा—'चलिए मिस लवंग, आपको भी दिखलाएं।'

वीरेश्वर ने उसे पक्का किया—'ज़रूर, ज़रूर !'

सबके चले जाने पर वीरेश्वर और वीरसिंह उस बढ़ते अंधियारे और भीगी हवा में रह गए। वीरेश्वर ने कहा—'थक गए हो वीरसिंह ?'

वीरसिंह चिढ़ा-सा बोल उठा—'थका तो नहीं हूं, मगर...'

वीरेश्वर ने टालते हुए कहा—'रहने दो।'

वीरसिंह ने दृढ़ता से कहा—'वीरेश्वर, ज़िन्दगी इतन आसान खेल नहीं है, जितना तुम समझते हो।'

'क्या मतलब ?'—वीरेश्वर पूछ उठा।

'तुम्हें मालूम है, सब लोग तुमसे नफरत करते हैं।

'क्यों ?'

'क्योंकि तुम्हें दूसरों की कमज़ोरियों से खेलने में मज़ा आता है। शायद तुम कहोगे, तुम्हें इन बातों की परवाह नहीं है।'

'नहीं, भला मैं ऐसा क्यों कहने लगा ? तुम पूरी बात तो कहो।'

'क्या तुम समझते हो कि कला तुम्हें चाहती है ? लेकिन मैं तुम्हें बता दूं कि वह तुमसे नफरत करती है।

वीरेश्वर हठात् कह उठा—'वह तो मुझसे कह चुकी है यही बात।'

लवंग लौट आई। वीरसिंह ने कहा—'कहिए, कैसे लौट आईं? थक गईं, क्यों?'

लवंग ने कहा—'जी हां।'

वीरसिंह चलते-चलते बोला—'अच्छा, नमस्ते।'—लेकिन लवंग ने ध्यान न दिया। वह वीरेश्वर से कह रही थी—'मिस्टर वीरेश्वर, आप समझते हैं कि कला को आप इस तरह अपने वश में कर लेंगे। मगर जो हमदर्दी नहीं दिखा सकता वह किसी की सहानुभूति क्या पा सकेगा?'

'मैंने आपका मतलब समझा नहीं। साफ-साफ कहिए।'

'आप बुरा मान जाएंगे।'

'कतई नहीं।'

'तो आप समझते हैं कि कला को आपकी बातचीत अच्छी लगती है?'

'बुरी लगती है, ऐसा तो उन्होंने कभी कहा नहीं!'

'कहने ही से सब कुछ होता है क्या? आप इस तरह खिंचे रहने का ढोंग करके समझते हैं कि वह आपकी तरफ खिंच आएगी? एक बात पूछूं?'

'ज़रूर!'

'आप इतना बनते क्यों हैं?'

'बनता हूं!'

चारों ओर फिर कोलाहल मच उठा। लवंग ने चौंककर पूछा—'क्या हुआ?'

वीरेश्वर ने निर्लिप्त होकर कहा—'कौन जाने?'

इतने में कला को स्ट्रेचर पर लिटाए हुए वीरसिंह आदि ले आए। वीरसिंह हांफ रहा था। उसने सांस इकट्ठी करके कहा—'वीरेश्वर! कला के बायें कन्धे पर कुछ ईंटें गिर पड़ीं। मैंने इनसे पहले कहा था कि वे वहां न जाएं।'

वीरेश्वर का गम्भीर घोष कूक उठा—'कला! बहुत चोट लगी है?'

स्ट्रेचर ज़मीन पर उतार दिया गया। वीरेश्वर पास जा बैठा। कला ने आंखें खोल दीं।

एकाएक लवंग पूछ बैठी—'मि० वीरेश्वर, आप इतने परेशान क्यों हैं?'

'जी?' वीरेश्वर चौंक उठा—'कहां? मैं तो परेशान नहीं हूं!'

वीरसिंह स्तब्ध खड़ा था। लवंग ने कहा—'आपमें से किसी के पास पट्टी-वट्टी है?'

मैक्सुअल ने कहा—'पट्टियां तो मिस लीला के पास रहती थीं। वे चली गई हैं यहां से दो मील दूर के गांव धनरौली।'

वीरेश्वर ने कहा, 'ले लीजिए न यह?'

और उसने स्कार्फ खोलकर दे दिया। झिलमिला रेशम कला के मस्तक पर रक्त से भीग गया, और इसके साथ ही वीरेश्वर उठकर अंधकार में चला गया।

महाराज ने आकर कहा—'वीरेश्वर बाबू, रोशनी आ गई है। आज आप कैसे अंधेरे में घूम रहे हैं, पहले तो आपको रोशनी बिना चैन नहीं पड़ता था?'

प्रोफेसर मिसरा ने विस्मय से देखा कि वह हंसता हुआ लौट आया। उसने कहा—'मैं कुछ अचानक ही भूल गया था,' और इसके साथ ही दियासलाई की सींक के छोर से उठी रोशनी में सिगरेट, माथा और नाक अंधेरे में चमक उठे। प्रोफेसर के हृदय का विद्वेष एकबारगी धुलकर बह गया। कैसी जली रस्सी की ऐंठ है, कैसे निर्बल लड़के हैं, इनसे बराबरी करना अपने आपका अपमान करना है। कुछ नहीं केवल वातें, और समाज में इनका कोई स्थान नहीं, कुछ नहीं, मां-बाप के बल पर ऐंठे, अपने को अफलातून समझनेवाले, बच्चे, मूर्ख···निरीह···दयनीय···।

उसे पहली बार अनुभव हुआ कि वह उन सबके पिता की आयु का था, ये उसके लड़के थे···हठी, चंचल और दुलार से बिगड़े हुए···।

21

जब दरिद्रों को झोंपड़ी बनाते-बनाते पैसे मिल गए तब मध्यवर्ग के खंडहर-सुधार का काम छोड़कर तफरीह के लिए निकल पड़े। सांझ हो गई थी। आसमान और सुदूर क्षितिज पर सुन्दर बादल छा रहे थे, जिन पर डूबते सूर्य की किरणें मनोहर सोने-चांदी की तस्वीरें चित्रित कर रही थीं। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। उस ठंडी सिहरन में किसान थके-मांदे लौट रहे थे।

शहर में रूप होता है—साम्राज्यों का वैभव उनकी उच्च अट्टालिकाओं में छिपा रहता है; लेकिन नीचे ही तीव्र अंधकार कोनों में गुर्राया करता है। दूर-दूर तक फैलती छाया—गांवों में मनुष्य केवल जीवित रहता है। वृद्ध अपने जीवन से बेजार हो जाते हैं, युवक अपनी भूख और वासनाओं को मिटाने की ही इच्छा में झुक जाते हैं, औरतों की छाती नाज़ करने के पहले ही ढल जाती है और बच्चे गन्दे, घिनौने-से राह पर कुत्तों के साथ खेला करते हैं। मध्यवर्ग इस गांव की झूठी सादगी पर मरता है। रईस वहां प्रकृति का सौंदर्य देखने जाते हैं। पर्वत का मनोरम दृश्य कौन नहीं जानता? किन्तु उसमें जो पशु प्रकृति की कठोर दया पर गुफाओं में पलता है, वह कभी सुखी नहीं होता।

कुत्तों ने कर्कश आवाज़ से भौंकना शुरू कर दिया था। गायें धूल उड़ाती हुई लौट चली थीं। भैंसों की कतार जोहड़ के गन्दे पानी में से निकलकर लकड़ी के कुंदो-सी सरक रही थीं। दस-दस बरस के बालक-बालिकाएं पानी में कूद-कूदकर नंगे नहा रहे थे, जो शहर के लोगों को देखकर छिपने की कोशिश करने के प्रयत्न में पानी में फिर से कूद जाते थे।

हवा से ऊंचे-ऊंचे खेत, जिनका कुछ भाग कटना शुरू हो गया था, सिहर उठत थे। यह नहर प्राण की धारा बनाकर गांव में लाई गई थी, किन्तु जमींदार के कारिन्दो की कृपा, भारत की अमीरी और नहर-विभाग के अफसरों की जनता के प्रति सहानुभूति आदि के कारण वह किसान के लिए लाभकारी होते हुए भी एक आफत हो

गई थी।

लेकिन बन-बटोहियों को उन बातों से कोई मतलब न था। प्रो० मिसरा कैंप में ही रह गए थे। उन्होंने कहा था, 'ऐसी जवानी के दिन कभी के बीत गए थे।' वीरेश्वर, वीरसिंह, मैक्सुअल, लवंग, लीला। बाकी लोगों को घर प्यारा था।

एक जगह सब बैठ गए। वीरसिंह ने एक किसान को आते देखकर पूछा—'यह रास्ता किधर गया है ?'

बूढ़ा किसान था। उसके साथ एक छोटी बच्ची थी, जो उसके पीछे घास का छोटा गट्ठर सिर पर धरे गीत गुनगुनाती चली आ रही थी। बूढ़े ने बिना दिलचस्पी लिए कहा—'बीहड़ को।' और वह रुककर बच्ची को पुचकारकर बोला—'थकाय गई बिटिया ?'

बच्ची ने मुस्कराकर कहा—'कितेक दूर और है ?'

'आध कोस है।'

वह चलने लगा। पीछे-पीछे गीत गाती बच्ची—

'चौमुख दिवला बार···'

इस संगीत में मध्यवर्ग का विलास नहीं था। मध्यवर्ग अनन्त उसे ही कहता है है जिसमें भौतिक को झुठानेवाली एक भटकती आत्मा का गीत होता है और प्रेम, विरह, सेक्स तथा ऐश्वर्य की चर्चा होती है।

लीला को बैठी देखकर लवंग ने कहा—'चलो, अभी से बैठ गईं तुम तो ?'

वीरेश्वर ने कहा—'थक गईं ? बूढ़ों को भी मात कर दिया ?'

वीरसिंह उठकर खड़ा हो गया और बोला—'चलो घूम आएं।' किन्तु मैक्सुअल ने लीला को न उठते देखकर कहा—'मैं तो क़सम खाता हूं कि एक कदम भी अगर चल पाया।' लीला के एकांत पाने की इच्छा ने उसे आशा से भर दिया था। लीला जाना तो नहीं चाहती थी, किन्तु मैक्सुअल के साथ एकान्त उसके लिए असह्य था। वह उठकर बोली, 'अच्छा, चलो।'

मैक्सुअल अकेला रह गया। चारों चल पड़े। चलते वक्त लीला ने कहा—'बुरा तो नहीं मानिएगा न ? माफी मिल गई ?'

मैक्सुअल ने शांत भाव से कहा—'कोई बात नहीं।' वह जलकर देखते-देखते खाक हो रहा था।

रात को चारों जब लौट आए तब चांद आसमान में उमंगें ले रहा था। उसकी लहरें पृथ्वी को चूम रही थीं। पेड़ हवा में हिल रहे थे। पत्ते हवा से हट जाते थे तो वीरसिंह के मुंह पर चांदनी खेलकर छिप जाती थी।

कैंप में उस वक्त सब सो रहे थे। केवल वीरसिंह जाग रहा था। वह एक पत्थर पर बैठा था। लीला आकर उसके पास घास पर बैठ गई और सब उस समय इतना शांत था, इतना निस्तब्ध···

रात थी और अद्भुत रात थी। अभी कल ही यहां महानाश का ताण्डव छाया हुआ था। बाढ़ आ गई थी। आदमी को रहने को जगह न थी। वह समझता है, पाप बढ़ जाने से ईश्वर की ओर से दण्ड मिलता है। किन्तु वह भूल जाता है कि ईश्वर—

उसका ईश्वर भी आदमी की कल्पनाओं में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं लेता और इस समय सौन्दर्य बिछा हुआ था; ऐसे ही समय वाल्मीकि का राम व्याकुल हो उठा था। लीला ऊंघने लगी वीरसिंह ऊंघता-सा देखता ही रह गया। उसी समय दूर पर कहीं बांसुरी बजने लगी। शायद कोई विरही बजा रहा था। लीला चौंक उठी। कुछ देर तक वह चुपचाप सुनती रही, जैसे संगीत उसके रोम-रोम में समाया जा रहा था। धीरे-धीरे वह कहने लगी—'मिस्टर वीरसिंह ? एक बार मैं एक नई जगह गई थी। तब मैं सिर्फ चौदह वर्ष की थी। वहां एक विराट् जल-प्रपात था। मैं क्या कहूं कि कितना विराट् था वह जल-प्रपात ? अभिमानी मनुष्य को वहां जाते ही मालूम हो जाता था कि वह कितना हीन है ! वह केवल महिमा थी। इतनी जलधारा आकाश को और भूमि को एक कर रही थी कि उठान में फेन दूध-सा स्वच्छ था। अविराम निर्झर एक महान्, धीर, गम्भीर गति में गूंज रहा था। वह एक सरकन मात्र थी। उसमें से एक निर्घोष दिग्दिगन्त में व्याप्त हो रहा था, मानो वह मानव के युग-युगान्त के चीत्कार का घोर उपहास था। तब मैं अनबूझ-सी खड़ी थी कि कानों में ठीक आज ही की-सी एक वंशी ध्वनि गूंज उठी। आह ! कितना करुण संगीत था। ऐसा प्रतीत होता था, मानो सिद्धार्थ आज महाभिनिष्क्रमण के मोह में व्याकुल हो उठा था। मुझे धीरे-धीरे उस गीत ने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अन्धकार में मैं बढ़ती चली गई थी। वायु तेज़ और भीनी, शीतल और मादक बह रही थी। मैं बढ़ती ही गई। वहां एक निर्झरी सघन निकुञ्जों में घिरी चांदनी में चांदी-सी चमक रही थी। मैंने देखा, एक व्यक्ति बांसुरी बजा रहा था। सच कहती हूं, मैं रो उठी थी।'

लीला तन्मय होकर गा उठी। वीरसिंह सुनता रहा।

'अब नहीं, अब नहीं माधव। अब कोकिल की फेरी नहीं सही जाती। आग लगाता हुआ जो मलय बह रहा है, अब मेरे लिए असहनीय है। लो यह हृदय ले जाकर भस्म कर दो।

'कालिंदी के तल में बैठकर भी पाषाण का हृदय द्रवित नहीं होता। क्या तुम मेरे मन की जलधारा से तनिक भी नहीं पसीज सकते ?

'आग लगा दो मेरे शरीर में, भस्म कर दो यह हृदय, ऐसे कि अन्तराल भी हाहाकार कर उठे। वज्रों के प्रहार से भी झुक सकेगा मेरा अभिमान, क्योंकि मैंने तुम्हें प्यार किया है। मेरा प्यार उस गुफा के समान है जिसको पहाड़ों का विराट् भार भी नहीं लड़खड़ा सकता।'

लीला रो रही थी। वह कहने लगी—'उफ ! मानो वह प्रपात केवल उसका गम्भीर, अथाह, अजस्र करुण संगीत था। कुछ देर वह मुड़ा और, वह मुझे देखकर निर्दोष नयनों से मुस्कराया। उसने कहा—बालिका, यहां क्यों आई है ? वही गीत, वही रागिनी इस समय भी बज रही है। जब-जब वैसी ही कोई वंशी प्रतिध्वनित होती है, मैं कांप उठती हूं।'

दोनों फिर चुप रहे। बांसुरी चुप हो गई। तब किसी की बहुत ही शिथिल आवाज़ दूर से गूंज उठी—

तुझे अपनी-अपनी पड़ी रहे,
मुझे तेरा भी तो खयाल हो,
मेरी जीस्त एक विदा हुई,
मुझे आज किसका मलाल हो !
तेरी ज़िन्दगी का नशा चढ़े,
तब मुझमें बाकी खुमार हो…

आवाज़ केवल गूंज बन गई और कुछ सुनाई नहीं दिया। वीरसिंह ने कहा—यह गाना एक भग्न हृदय का चीत्कार है। जैसे इस करुण तान को सुनकर समस्त संसार की विभूतियां केवल एक केन्द्र पर इकट्ठी हो जाती हैं।'

लीला चौंककर देखने लगी। यह लड़का जिसने जीवन की कोई बात शायद कभी सोचकर गम्भीरता से नहीं की आज वह कैसे ये सब बातें कह रहा है, लेकिन वह यह नहीं समझती कि प्रेम की वासना का स्वप्न पशु में भी कवित्व भर देता है, क्योंकि वह एक ऐसी तड़पन है जो एकीकरण की अनन्यभूत आत्मा होती है। लीला चुप हो रही। वीरसिंह ने सांस भरकर कहा—'हम गरीबों के लिए आए थे और हमने टूटी झोंपड़ियों में दबकर मरनेवालों को बाहर खींच लिया।'

'इसके बाद'—लीला कह उठी—'हम-तुम अलग हो गए।' फिर वह सोचकर कहन लगी—'समाज ने ही तो हमें ऐसे बांध रखा है मिस्टर वीरसिंह ! हम एक-दूसरे के पास आने की कोशिश करते हैं, किन्तु आ नहीं सकते। देखिए, एक चिड़िया का बच्चा है जिसके पंख, उगते हुए पंख कतरकर चिड़िया कहती है—बेटा उड़। किन्तु बच्चा उड़े तो कैसे उड़े ? चल पड़े तो रुके कैसे ? या तो हम लोगों की मशीन पहले फेल कर दी जाती है, ताकि स्त्री-पुरुष एक विशेष आयु तक आपस में एक-दूसरे से अविश्वास के दायरे खींचकर घृणा करते रहें और जब विवाह हो जाये, तो दो अजनबी आदमियों की तरह एक-दूसरे को प्यार करने का ढोंग करें और अगर ऐसा नहीं है तो मशीन को ढाल पर इस तेज़ी से लुढ़का दिया जाता है कि उसका परिणाम केवल टकराकर दुर्घटना की मौत होती है। एक वेग है, आंधी है, मृत्यु है; दूसरी स्थिरता है, उमस है, वह कायर अत्याचार है। तब हम कैसे मान लें कि आज़ादी से सोचने को दिमाग दिया जाता है, जो बड़े कहते हैं वही हमें करना पड़ता है। मगर सोचो तो उनके बड़े होने में उनकी तकदीर ही है, कुछ महत्त्व तो नहीं। एक खास उम्र तक बच्चे को शिक्षा और खाने की आवश्यकता होती है, उसके बाद उसकी आत्मा का हनन प्रारम्भ हो जाता है। आजकल तुम सुनते होगे कि पढ़-लिखकर लड़का बाप से अलग हो गया। मैं उन बातों को छोड़ती हूं जब लड़का यूरोप का होने का दावा करने लगता है। लेकिन नब्बे फीसदी यह होता है कि जब लड़के का दिमाग खुलने को होता है और वह स्वतंत्र होना चाहता है तब उसे ज़ंजीरों में बांधने का ज़्यादा से ज़्यादा प्रयत्न होता है। सोचो, अगर तुम्हारा कोई पिता है, तो क्या तुम उसके गुलाम हो ? न यह बाप के लिए कुछ घमण्ड की बात है कि उसका लड़का ऐसा है, न लड़के के लिए कि उसका बाप कैसा है ? वह एक प्रकृति की अकस्मात् होनेवाली घटना से जुड़ा रहता है। अन्यथा पिता-पुत्र का स्नेह कोई विशेष बात नहीं है। जब समाज में मातृसत्ता थी तब

सब पिता थे, सब पुरुष समाज में समान थे। हिन्दुस्तान की गुलामी को पक्का करनेवाले मां-बाप इतने दकियानूस होते हैं कि अपने बच्चे को उड़ने नहीं देना चाहते। असल में यह पूंजी है। स्त्री पति पर निर्भर है क्योंकि वह उसे रोटी देता है। बच्चा बाप को चाहता है, क्योंकि बाप उसे पालता है, मां को क्योंकि वह उसकी नर्स होती है, और मां-बाप भी लड़के को इसलिए चाहते हैं कि वह एक पूंजी होता है। वह... वह एक मशीन है। भविष्य में आमदनी होने की आशा से जिसमें अभी पूंजी लगाई जा रही है। लेकिन लड़की का कोई सवाल कहीं भी नहीं है। लड़की क्योंकि घर की पूंजी होकर नहीं रहती, इसलिए न उसे मां-बाप ही इतना चाहते हैं, न भाई-बहन ही। क्या यह हो सकता है कि प्रेम की दुहाई देनेवालों में उसके प्रति स्वाभाविक आकर्षण कम हो? नहीं। समाज के कायदों में दिमाग बनता है। बचपन से मां-बाप सिखा जाते हैं कि लड़की किसी की होकर नहीं रहीं है। उसे मनु ने पाप कहा है, नीत्शे ने कोड़ों से पीटने लायक पशु, तुलसीदास ने ताड़न का अधिकारी; किन्तु क्यों युगान्तर से यूरोप ने नारी से कुछ पाने की आशा की है? क्यों उसे रहस्य कहा है? सिर्फ इसलिए कि उन्होंने औरत को रुपये और पूंजी की तरह माध्यम बना लिया है, मान लिया है और उसे दबा-दबाकर स्वयं उसे ही यह महसूस करा दिया है। नारी को लूटनेवाले पुरुषों का कमीनापन नारी को बाज़ार में रखकर भी तृप्त न हुआ। अब स्त्री का दिल स्वयं इतना गुलाम है कि वह औरत को मुंह खोले नहीं देख सकती। कैनीबाल नरमांस खाकर प्रसन्न होता है, उसके सामने इससे बढ़कर सत्य ही नहीं। यही स्त्री की दशा है। मां कहकर नारी का गला घोंटा गया है। मैंने महाभारत में पढ़ा है, किसी समय स्त्रियां गायों की तरह स्वतन्त्र थीं।'

लीला हांफ रही थी। वीरसिंह नारी के उन्माद को बैठा चुपचाप देख रहा था। वह कह रही थी—'श्वेतकेतु ने पहले-पहल स्त्री को वेश्या समझा। उसने स्त्री की स्वतंत्रता को समाज के पुरुष-स्वार्थों में जकड़ दिया है। महाभारत पांचवां वेद है, किन्तु जैसे चार वेद समाज को रूढ़ियों और घृणित अन्धकार से न बचा सके वैसे ही यह निरीह पांचवें वेद का दम्भ भी नहीं बचा सका। तुम स्त्री की सत्ता का क्या न्याय दे सकते हो? उसे पुरुष ने सतीत्व के जाल में फंसाया है।'

वीरसिंह चौंक उठा। उसने सोचा भी न था कि भारतीय कन्या कभी ऐसा कठोर सत्य कहने का साहस कर सकेगी। किन्तु उसने कुछ कहा नहीं। वह सुनता रहा—

'सतीत्व कहता है, संभोग पाप है, यानी प्रकृति का नियम पाप है, यानी उसके ईश्वर की माया पाप है यानी आदमी पाप है, तब आदमी का बनाया पुराण भी पाप की ही उपज है। फिर देखो यह इंग्लैंड के Puritans की-सी बात। वे स्त्री को एक लाइसेंस देते हैं कि तुम्हें एक आदमी मिलता है, जैसे एक साइकिल को। चाहे वह पुरुष को चाहे या घृणा करे, आदिम आग की प्रदक्षिणा करके उसे उस लाइसेंस पर दस्तखत करने पड़ते हैं, अपने दिल के खून से। उस लाइसेंस का मतलब है, वह रात-रात-भर अपनी मर्ज़ी के खिलाफ उसके साथ नंगी नाचे। प्राचीनकाल की बेवकूफियों को नहीं, कमीनेपन को अक्लमन्दी माननेवाला भी एक घृणित अन्धकार है। तुम गन्दगी

को गन्दगी से नहीं धो सकते। सामन्ती राज्य की स्त्री एक वेश्या है। घर की बेजान चीज़ों की स्वामिनी और जीवित मनुष्य की दासी। आर्थिक परतन्त्रता से उसे बांध दिया गया था। वह क्या जीवन है जब अपने पर नहीं, दूसरों पर गर्व किया जाए ? ज़िन्दा रहना क्या कोई बात है ? कुत्ता ज़ंजीर से बांधकर भूखा रखा जाए तो वह कैसा भी मांस खा सकता है और जब उसे मालूम हो जाए कि वह मांस उसको चौकीदारी किए बिना नहीं मिलेगा, तो वह भौंकने के लिए भी तैयार हो जाएगा। कहो वीरसिंह ! सतीत्व पूंजीवाद को बनाए रखने का ढकोसला है, रूढ़ि-भरे धर्म की एक दाई है न ?'

लीला अनवरत कहती चली गई थी। वीरसिंह ने उसकी आंखों में आंसू देखे। हवा बहुत ठण्डी चल रही थी। लीला सिहर उठी। वीरसिंह ने कहा—'यह क्या मिस लीला, जाड़े के मारे कांप रही हो ? लो, मेरा यह कोट ओढ़ लो।'

हठात् लीला कठोर स्वर में कह उठी—'जी नहीं, धन्यवाद !' वीरसिंह चौंक उठा। वह तो कहनेवाला था कि आप विद्यार्थी संघ की सदस्या हो जाइए और यह क्या ?' वह उठकर चलने लगा। लीला चुप बैठी रही। वीरसिंह चला गया। लीला बैठी रही। कांपती रही।

चांदनी भूमि पर फैल गई थी, उमड़ गई थी, निरञ्जन आकाश शुभ्र फैला हुआ था। लीला बैठी रही।

वीरेश्वर कैंप में लेटा हुआ सोच रहा था।

वीरेश्वर, वीरसिंह, लीला, लवंग और मैक्सुअल घूमने चले हैं। मैक्सुअल अकेला रह गया। लीला भी चल पड़ी है। मैक्सुअल के साथ बैठने की उसकी इच्छा नहीं है। क्यों ? क्यों भगवती······

मैक्सुअल ने बुरा माना होगा। ज़रूर माना होगा। मगर वह व्यक्ति रूप में भी इतना नहीं है। हर एक आदमी में कुछ न कुछ अच्छाई होती है। उसमें भी कुछ होगी, किन्तु अभी तक जो ज़ाहिर नहीं हुई। हम किसी से नफरत करते हैं उसे अपने से हीन समझकर, किसी से जलते हैं उसे अपने आपसे ऊंचा समझकर। क्या वह ठीक है ? क्या मनुष्य को मनुष्य से घृणा करने का अधिकार है ? क्यों नहीं। जिसमें जिसका स्वार्थ है वही उसे रखना चाहता है, क्योंकि अपनी सत्ता को कौन बनाए रखना नहीं चाहता ! तब भगवती लीला की अन्तश्चेतना में इतना कैसे घुल-मिल गया ? वह गरीब, यह कैप्टेन की लड़की। नारी भी अजीब वस्तु है।

पांच व्यक्ति चले। सब एकत्व लेकर। खेतों की हरियाली, यौवन की तरंगें, उन्माद का पवन: ग्रामीणों की गरीबी; मध्यवर्ग की एक, एक झूठी आशंका, संतोष का पाप···

वे टूटे-से कच्चे घर, गन्दे घिनौने आदमी, औरत; अधकचरे, घृणित···मध्य-वर्ग की करुणा का उनके लिए एक रुद्ध अभिशाप। किन्तु फिर भी कुछ नहीं कर सकते ? व्यक्तिगत रूप में यह नहीं हो सकता। तो क्या सामूहिक रूप में मनुष्य इस संसार के सामाजिक दु:ख को मिटा सकेगा ? इसके लिए उसे दिमाग खोलना पड़ेगा। बीसवीं सदी का बर्बर असल में अभी सभ्यता की भोर में है। अभी तक वह जानवरों की तरह

रहा है।

आदमी इतना रुद्ध क्यों है? जब वह पैदा होता है तब केवल एक मांस का लोंदा होता है। उसकी संज्ञा-शक्ति धीरे-धीरे मस्तिष्क के रूप में बढ़ती है। किन्तु अपनी कलुषित सीमाएं उसे दाबती हैं। चीन की औरत की तरह लोहे का जूता उसके पैरों में पहना दिया जाता है। जो भी बढ़ता है, वह टूटता है।

हम केवल प्राकृतिक कोपों का भय करते हैं।

हम पदार्थ और चेतना हैं, दोनों का परिणाम एक है। वैज्ञानिक उसे Sichi कहता है। क्या वह केवल विचारमात्र है?

शृंखला टूटी। वीरेश्वर ने करवट बदली।

हम परिवार बनाकर रहते हैं। परिवार एक आदिम चिह्न है, बर्बरता की निशानी है, हर कदम पर बांध है। परिवार मन की जड़ों तक घंसा पूंजीवाद की घृणा का भूठा प्रेम है।

वीरेश्वर उद्विग्न हो गया। नींद बहुत दूर चली गई थी। वह बेचैनी से उठकर टहलने लगा। बाहर निकलकर उसने देखा, लीला चांदनी में बैठी सिसक रही थी। जाने क्यों वह लौट आया और फिर सोने लगा।

22

बड़े-बड़े पादरी, लड़के-लड़कियां और प्रोफेसर दो-दो की कतार में चैपिल में होकर बड़े हाल में घुसने लगे और अपनी-अपनी औकात से बैठने लगे। घण्टा बजने लगा। जब प्रतिध्वनि भी मौन हो गई, एक अंग्रेज पादरी उठा और अंग्रेजी में कहने लगा—'आज हमारा कैंप चौथी बार लगा है। सन्त आर्नल्ड स्वर्ग में भी हमारे छोटे प्रयत्न और विराट् आयोजन को देखकर कितने सुखी होंगे। भगवान् की कृपा से हमारा साहस अक्षुण्ण है। हमें गर्व है कि हम उसके मतानुयायी हैं जिसने मानवता के त्राण के लिए अपने हाथों से अपनी सूली उठाई थी, जिसने सूली पर भी भूले हुए मानव को क्षमा किया थां।'

तालियां पिट उठीं। लड़कियों और लड़कों में एक चंचलता उकस उठी। उनकी आंखों ने पर खोल दिए।

पादरी कहने लगा—'संत आर्नल्ड ने अपने जीवन का सुख हिन्दोस्तान के लिए बलिदान कर दिया था और उसी के परिणामस्वरूप आज मैं देख रहा हूं कि आप लोग साम्य, स्वतन्त्रता और शान्ति का पूर्ण उपभोग कर रहे हैं। हमने यहां आकर पांच साल में अभी तक साढ़े चार हजार ईसाई बना लिए हैं। वे गरीब पहले हिन्दुओं में भंगी और चमार माने जाते थे। हमने उनकी मर्जी से ही, बिना लालच दिए, ईसा का पाक नाम सुनाकर उन्हें अन्धकार में प्रकाश दिखाया है, उन्हें बराबरी का संदेश सुनाया है। आज वे ब्रिटिश साम्राज्य में अफसर बनने के योग्य हो गए हैं। परसों ही

एक व्यक्ति का सब-इन्सपेक्टर के लिए चुनाव हो गया है। आज उनकी आंखों की पट्टी खुल गई है।'

फिर तालियां बजीं और निगाहों के भटकने को अपने-अपने केन्द्र ढूंढ़ लिए। पादरी बोलता गया—

'कल हमने गरीब लड़कों के खेल कराकर उन्हें इनाम बांटे थे। आज उनमें से चार ईसा के कदमों पर आ गए हैं। वे अब बुतपरस्ती में विश्वास नहीं रखते। उन्हें मालूम हो गया है कि रक्त और रंग के फर्क से इंसान जानवर नहीं हो जाता, अंग्रेज़ों ने इसे साबित कर दिया है। आज उनकी आंखों के सामने से बादल फट गए हैं...'

तालियां बजीं और लड़के-लड़कियों में इशारेबाज़ियां शुरू हो गईं। आंखों के तीर दिलों पर चलने लगे। काले चेहरों पर स्नेह ने एक चमक-सी पैदा कर दी थी और रंग-बिरंगी लड़कियां अपने वक्ष को टेढ़ी नज़र से देखकर मुस्करा रही थीं।

पादरी बहुत खुश हो गया। वह बोलता गया—'अब हमारा हस्पताल बड़े मज़े में चल रहा है। जब से लड़कियों ने सहायता दी है, काम बहुत तेज़ी से चलने लगा है। सच तो यह है कि ईसाई लड़कियों में अंग्रेज़ लड़कियों की-सी तहज़ीब और अक्ल आ जाती है। फर्क सिर्फ होता है पूर्व और पश्चिम का। ईसाई लड़की लजीली भी होती है। हिन्दुस्तान की बाकी औरतें कण्ठा थापना और बुर्का ओढ़ना जानती हैं। वे आज़ादी क्या जानें?'

लड़कियां उल्लसित। जैसे चिड़ियां अब उड़ने ही वाली हैं।

'ये लड़कियां वहां 'मदर' के नाम से पुकारी जाती हैं। हाल ही में एक आदमी पर ईसू की कृपा-दृष्टि हुई। उसे लाटरी से बहुत रुपया मिला। तब सच्चे ईसाई के रूप में एक 'मदर' ने उससे विवाह करके उसे ईसाई बना लिया। हम खुदा से इस जोड़ी की बड़ी उम्र चाहते हैं।'

'हमारा कैंप इस साल भी बड़ा सफल रहा है।'

तालियां तुमुल-ध्वनि कर उठीं। कहीं-कहीं से 'हियर-हियर' की आवाज़ भी मच उठी। पादरी रुककर बोला—'अब हम अपना आज का काम शुरू करते हैं। कुछ लड़कियां आपको ईसा का सन्देश सुनाएंगी।'

लड़कियां सामने आकर खड़ी हो गईं और अंग्रेज़ी लय-तान पर एक उर्दू गाना गाने लगीं। जब होस्टल में उन्हें हिन्दुस्तानी गानों की मनाही हो गई थी तो उन्होंने हिन्दुस्तानी फिल्मी गानों को अंग्रेज़ी लय पर सेट कर लिया था। धार्मिक गीतों की साधारण रूप से शब्दहीन गूंज मंडराकर लौट गई, उस दिमागी खुदा के पास ही जिसकी वे उपज समझी जाती थीं।

विनोदसिंह ने बगल में बैठे राजमोहन से कहा—'राजा, दो वोट से क्या होगा?'

राजमोहन धीरे से बोला—'घबराने से भी क्या होगा, विनोद! कम से कम मुझे उम्मीद है, रानी तो तुम्हारा साथ देगी ही।'

विनोद ने मुस्कराकर पूछा—'क्यों?'

राजमोहन ने कहा—'इसका जवाब मैं नहीं दे सकता। तुम, तुम जो बोलोगे।

जल्दी तैयार हो जाओ।'

'मैं तो तैयार ही हूं।'

कुछ देर हाल में सन्नाटा रहा। अंग्रेज़ पादरी उठकर बोला—'अब मिस्टर विनोदसिंह आपके सामने एक अपना प्रस्ताव उपस्थित करेंगे। उन्होंने उसे अभी प्रकट नहीं किया है। इसलिए मैं प्रार्थना करूंगा कि खड़े होकर सब बातें जो वे ज़रूरी समझें, कह जाएं।'

विनोद खड़ा हो गया। इधर-उधर देखकर वह कहने लगा—'भाइयो! और बहनो! आज मैं ईसा के बच्चों के सामने कुछ अर्ज़ करने के लिए खड़ा हुआ हूं। मुझे ऐसा लगता है कि अजीदी भी शैतान से इतना परेशान न होता जितना मैं अब हूं। भेड़ों का चरवाहा केवल अपनी बुद्धि पर विश्वास रखने के लिए लाचार होता है। मैं नहीं जानता, आप मेरी बात पसन्द करेंगे या नहीं?'

जन-समाज क्रुद्ध-सा फुसफुसा उठा और कुछ खुश नज़र आने लगे।

विनोद कहता गया—'हम आज अंग्रेज़ पादरियों का दामन पकड़े खड़े हैं। हम नहीं जानते कि हमारी सांस्कृतिक राह क्या है? हम ईसा मसीह के असली बच्चे होने का गर्व कर सकते हैं, क्योंकि हम सिर्फ भेड़ें हैं। संसार बढ़ रहा है, किन्तु हम अभी तक चुप बैठे हैं। हममें से कितने हैं जो ईसा को समझने का दावा रखते हैं? हम ईसाई हैं, अंग्रेज़ नहीं। संसार मेरी आंखों के आगे घूम रहा है। एक दिन ईसाई रोमन अत्याचार से पीड़ित होकर भारत आए थे। उस दिन इन्हीं लोगों ने हमें शरण दी थी, जिनपर आज हम नाक सिकोड़ते हैं। हम गरीब हैं, इसी से हमारी कोई ज़रूरत भी महसूस नहीं करता, जैसे कम होकर भी पारसियों की सब पूछ करते हैं। साम्यवाद और धर्म का ढोंग करके पूंजीवादी अपना मतलब सिद्ध कर रहे हैं। पश्चिम में भयंकर विनाश छाया हुआ है। वहां भी ईसाइयों का शांति-सन्देश है। नफरत करनेवाले का एक अन्त है—सब उससे नफरत करते हैं। हमारे जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना है, पादरी। लम्बे-लम्बे चोगे पहने, शक्तिशाली 'शब्दों' के हथियार लिए, ढोंग के कवच ओढ़कर वे अंग्रेज हमें सांस्कृतिक और राजनीतिक पराजय दे रहे हैं। आज भेड़ों में भी लड़ाई हो रही है। हम एक साम्राज्य के गुलाम हैं जो विदेशी है। मिशन बूढ़े अंग्रेज पादरियों की हिटलरशाही है और यूरोप की गन्दी औरतें हमारे देश में धर्म की प्रचारिणी बनकर आती हैं। जीवन-भर उनकी कामतृष्णा का हनन होता है और भारत में आकर व खाना पाती हैं।'

हाल में एकाएक ज़ोर से तालियां पिट उठीं। पादरी स्तब्ध बैठे रहे। क्रोध से वे पागल हो उठे थे। किन्तु लड़कियों में रानी के सिवाय सब असन्तोष से भर उठीं।

'उनके स्वदेशीय जीवन की तुलना में यह जीवन एक स्वर्ग होता है और रात को? कभी-कभी मैं सोचता हूं, क्या नारी कभी इतनी विकृत हो सकती है? पुरुष भी तो बड़े त्यागी होते हैं! उन पादरियों के आराम में क्या कमी है? वायसराय की भी तो तनख्वाह पूरी नहीं पड़ती और अंग्रेज पादरियों की जगह सिर्फ अंग्रेज पादरी ही ले सकता है। वे तो कहते हैं कि वे राजनीति और देश के छोटे बन्धनों से परे हैं। फिर? लेकिन हिन्दुस्तानी पादरी कभी इसका विरोध नहीं करते। आखिर फिर वे

खाएंगे क्या ? धर्म की आड़ में हमारे नाम बदले जाते हैं, किन्तु वे भी पूरी तरह स नहीं। ताकि हम कहीं साहब लोगों में घुलमिल न जाएं, हम न इधर के हैं, न उधर के।

'अंग्रेज़ पादरियों ने धर्म की ओट में हिन्दुस्तान में ठाठ करने की दृढ़ दीवार बनाई हुई है। वे यह जानते हैं कि पददलित को कैसे अधकचरा अण्डा बनाया जा सकता है। लोगों का मत दल और फरेब से बदलवाना ही श्रद्धा की माप है ? वे जिन्हें न हिन्दूपन से लाभ था, न ईसाईपन से लाभ हो सकता है—पैसे के कारण नाचते हैं। ये पादरी धार्मिक नहीं, सामाजिक और राजनीतिक मतपरिवर्तन करा रहे हैं। ये बेवकूफों को लूट रहे हैं।'

'ईसाइयत की पहली बात है आज़ादी—आज़ादी चाहिए हमें। क्योंकि हिन्दुस्तान आज़ाद नहीं होना चाहिए ? क्योंकि गांधी के बहकावे में हमें नहीं आना चाहिए ? राजनीति में भाग लेनेवाले ईसाई समाज में बहिष्कृत कर दिए जाते हैं। हम निर्जीव प्राणी बना दिए गए हैं। जीवन हमारे लिए एक अभिशाप बन गया है। आज मैं धर्म के दावेदार, सत्य के हकदार, ईसाइयत के बाने में छिपे फरसीज से पूछता हूं कि हमारे कल के हिन्दुस्तान में क्या हालत होगी ?

'साथियो ! अब मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।'

विनोद कागज़ उठाकर पढ़ने लगा—

'हम ईसाई जो राजनीति में हिस्सा लेने से रोके जाते हैं, जिन्हें समाज से मसीह की मुखालफत करने का फतवा मिलता है, हम भी राजनीति में सहयोग दे सकें। हमें रोकने का भावी परिणाम यही होगा कि हम यूरोप के यहूदी बन जाएंगे।

'अब मैं आप से,' उसने सांस लेकर कहा—'अपने दिमाग से सोचने की प्रार्थना करूंगा। आप सब बन्धनों से परे, सब भय को छोड़कर, इसे विचारिए। मुझे आशा है कि जो कुछ मैंने आपसे कहा है, वह ऊसर का बीज साबित नहीं होगा, धन्यवाद !'

विनोद बैठ गया। भयंकर कोलाहल मच उठा। दो-चोर स्टूआर्ट्स इधर-उधर चुपचाप घूमते रहे। कोलाहल रुकने में प्राय: पांच मिनट लग गए। पादरियों के मुंह पर विष तमतमा रहा था। आज काले मुंह के लंगूरों ने लाल मुंह के बन्दरों पर जैसे अपनी शक्ति का दण्ड तोल दिया था। अंग्रेज़ पादरी क्षण-भर ठिठककर बोला—'आपने अभी मिस्टर विनोदसिंह का प्रस्ताव सुना। इसके बारे में मुझे अधिकार है कि मैं इसके रखे जाने की स्वीकृति दूं या इसे रद्द कर दूं...'

उसने क्षण-भर रुककर इधर-उधर देखा और देखा कि सभा में इसपर कुछ क्रोध है। वह एकदम बोल उठा—

'लेकिन मैं हाथ धोकर इसके पेश किए जाने की अनुमति देता हूं। जो पक्ष में हैं वे दायें बैठ जाएं, जो विपक्ष में हों वे बायें।'

लोग उठ-उठकर अपनी जगहें बदलने लगे। हर्ष से पागल राजमोहन विनोद के पास आ गया।

'विनोद तीन वोट से अब कितने वोट हो गया ? न बोलता तो क्या यह सब होता ?'

विनोद ने कहा—'पादरी तो सब उस तरफ बैठे हैं।'

'हां, उनके साथ ही वे भी हैं जो अंगरेज़ों को जाते देखकर कहेंगे, हमें भी इंग्लैंड ले चलो।'

दोनों हंस दिए।

इतने में पादरी बोल उठा—'अब मैं दोनों स्काच पादरियों से प्रार्थना करता हूं कि वे वोट गिन लें। आशा है आप शान्ति रखेंगे।'

हाल में सन्नाटा छा गया। राजमोहन ने धीरे से कहा—'मैंने गिन लिए हैं, हम दो वोट से जीत गए।'

तीनों पादरियों ने गिन-गिनकर वोट लिखकर बड़े पादरी को दे दिए। उसने कहा—'समय कम है, काम अधिक है,' और उसके मुख पर मुस्कान खेल गई, 'मैं आपको परिणाम सुनाता हूं। प्रस्ताव के समर्थक हैं—63।'

विनोद—'बिलकुल गलत...'

राजमोहन—'सुनो चुप...'

पादरी—'और प्रस्ताव का विरोध करनेवाले हैं—64। अब मैं आज की सभा का विसर्जन करता हूं।'

तुमुल कोलाहल मच उठा। सब उठकर चले गए। हाल सूना-सा रह गया। एक क्षण खड़ा रहकर विनोद धीरे से मुस्करा उठा। यह सलीब के सामने हुआ था, यह मसीह के बच्चों का न्याय था, यह विश्वशान्ति के विराट् महल की नींव थी।

बाहर रानी विनोदसिंह की प्रतीक्षा में खड़ी थी। उसने गर्व से विनोद की ओर मुस्कराकर देखा, जैसे जो कुछ हुआ, बहुत अच्छा हुआ। ईसाइयों के अन्धविश्वास पर प्रहार करके उसे हार्दिक प्रसन्नता हो रही थी। मन में भाव उठा। किन्तु वह तो अब दूर हो चुका है। ये मुर्गे तो सिर्फ तमाशे के लिए लड़ाए जा रहे हैं। काश वह भी हिन्दू होती, तो इन्दिरा की तरह स्वतन्त्र होती, लीला की तरह मुक्त होती और वह क्षण-भर को ठिठक गई। याद आया। ये लड़कियां धर्म के कारण नहीं, धन के कारण स्वतन्त्र हैं।

रानी की स्वतन्त्रता का अपना विचार सांप की तरह कुण्डली मारकर, फन उठाकर उसी की ओर देख उठा। वह कांप गई।

23

रात गहरी और अंधेरी थी। बादल छा रहे थे। पानी पड़ चुका था। ठण्ड काफी थी। हरी कालेज की सीढ़ियों पर बैठा था। कल वह जीवन में बह रहा था और खोया हुआ था, आज वह उस धारा को देखकर उदासी से मुस्करा उठा था।

दूर सड़क पर बिजली के खम्भों पर लट्टू जल रहे थे। उनमें से प्रकाश उमड़ रहा था। फील्ड पर पानी झलमला रहा था, उसपर प्रकाश की लम्बी-लम्बी धाराएं बही जा रही थीं। सुनसान कालेज के हृदय में चौकीदार अपनी मद्धिम लालटेन जलाए

बैठा था। वह निस्तब्धता हरी के हृदय में डूबने लगी। हवा सीरी और मादक चल रही थी। वह शान्ति में उसके भीतर की सारी उथल-पुथल मौन हो चुकी थी। सामने डेविड होस्टल की खुली खिड़कियों में प्रकाश था, एक बहुत ही मनोहर प्रकाश। उस प्रकाश का निर्जन प्रतिबन्ध सामने फील्ड के पानी में वैसा ही पड़ रहा था।

वह रात एक रोमांस की रात थी, जब दो हृदयों को मिलकर रहना अच्छा लगता है। किन्तु हरी आज अकेला था। वह चुपचाप देखता रहा। कभी-कभी कोई भूली-भटकी बूंद आसमान से टपक पड़ती थी। रात की भयद निर्जनता में हवा एक अपना अलग राग फैलाती हुई झूम रही थी।

अचानक उसने दूर पर एक संगीत सुना। कितना मनोहर था! डेविड होस्टल की लड़कियां सांझ की प्रार्थना कर रही थीं। उस ईसा से प्रार्थना कर रही थीं जिसको किसी ने सुनकर उसे सूली पर लटका दिया था, जिसके रक्त से रंजित होकर भी संसार पहले से कहीं अधिक विषम हो गया। पश्चिमी गीत अपनी लयगति के आरोहण-अवरोहण में वायु पर चढ़कर आया जैसे कोई उन्माद हो और उसके हृदय का तार-तार झंकृत कर गया। वह सिहर उठा। फिर उसने देखा कि एक के बाद एक करके लड़कियां एक-एक जलती मोमबत्ती लेकर सड़क पर आ गईं और चैपिल की ओर मुड़ चलीं। उनके हर कदम पर मोमबत्ती की लौ थरथराती थी और अपने-अपने बायें हाथ से वे उसका अंचल बनाए थीं। वही कोमल और मधुर शब्द, वही लय-ताल-गति और वही सुमधुर स्पंदन। गीत उठा, उसने बादलों में एक गड़गड़ाहट मचाकर उन्हें छुआ और चैपिल में जाकर डूब गया। प्रकाश की रेखा का लय हो गया। उसमें एक चेतना जाग उठी। उसने देखा, दूर कहीं वहां पेड़ों के पीछे एक झिलमिल प्रकाश अंतराल में द्रिम-द्रिम कर घुला जा रहा था।

वह लड़कियों का होस्टल है जिसके सूने कमरों में अब आबादी है, मगर वह सत्ता जो मन में स्वयं सूनी है, वहां सृष्टि को रचनेवाली रहती है, वह प्रकाश है।

वह हंस पड़ा।

मूक स्तब्ध यह इमारत खड़ी रहती है। संध्या की सतरंगी बेला जब आकाश में छाई रहती है, छत पर लड़कियां खेलती हैं। वह यौवन का उत्साह है जैसे केवल बहती धारा का उच्छृङ्खल प्रवाह। कोई अपनी टीलों में सिसकती होगी। कोई अपनी आंखें मीचकर बादलों से बातें करती होगी।

आत्मचिरंतन यह प्रकाश भागता है, रुकता है, किन्तु फिर भी चल है। मानव का हृदय क्षण-भर अकस्मात् ही यौवन में आकुल हो उठता है। लेकिन ये लड़कियां इस प्रकाश की चेतना से दूर हैं। यह बन्दीगृह है। संस्कारों के अन्धकार में बद्ध समाज की निर्जीव बन्दिनी। ये विमुक्त चेतना का स्पंदन नहीं सुन सकतीं। इनका जीवन स्वतन्त्रता के नाम पर रुद्ध इच्छा है, किन्तु फिर भी इनमें एक अज्ञान है जो इनकी सत्ता का सबसे बड़ा सामंजस्य है।

ये पुरुष से समता करती हैं, किन्तु वास्तव में ये केवल अबलामात्र हैं। आज ये भगिनी हैं, कल पत्नी होंगी, परसों माता, किन्तु इनकी विजय ही इनकी सबसे बड़ी पराजय है। इनके शृंगार में नारी रूप-लज्जा करती है। आत्मरूप सबसे बड़ा सौंदर्य है,

किन्तु वह चांचल्य नहीं, एक गम्भीर सागर है।

हरी ने सिगरेट निकालकर मुंह में लगाई और दियासलाई जलाई। उस उजाले से एक आदमी चलते-चलते रुक गया और उसके पास आकर बैठ गया। हरी ने देखा, वह वीरेश्वर था। उसने कहा—'हरी! मैंने तुम्हें आज कितना ढूंढ़ा, किन्तु तुम हो कि मिले ही नहीं।'

हरी ने उत्साहित स्वर से कहा—'क्यों? क्या काम है?'

वीरेश्वर चकरा गया। कहा—'तुम्हें हो क्या गया है?'

हरी ने कहा—'वीरेश्वर, मैं सदा के लिए तुमसे क्षमा मांगता हूं। मैंने जो आज तक तुम्हें सुख दिया है अथवा केवल दुःख दिया है, सब साफ दिल से मुझे वापिस कर दो। अब मुझे अपने-आपसे घृणा हो गई है। रहमान ने एक दिन मुझसे कहा था कि हिन्दुस्तानी प्रेम में फंसकर जीवन बर्बाद कर बैठते हैं और सचमुच मैंने सब कुछ खो दिया है।'

वीरेश्वर चुप रहा। हरी कहता गया—'सब अपनी-अपनी पढ़ाई में लग गए हैं, दोस्तों में से कोई भी दिखाई नहीं देता, फिर मैं ही क्यों ज़िन्दगी बरबाद करूं?'

वीरेश्वर ने कहा—'कालेज में मशहूर होकर कोई इतना बेफिक्र नहीं रह सकता। हम निर्णायक थे और रहेंगे।'

'निर्णायक! नियंता!' हरी ने हंसकर कहा—'नहीं वीर, यह सब कुछ नहीं। यह झूठ है।'

वीरेश्वर ने बदलकर कहा—'तुमने सुना, लवंग कॉलेज छोड़ गई! पता नहीं एकाएक बीच टर्म में कैसे छोड़ दिया।'

हरी ने कोई जवाब नहीं दिया।

वीरेश्वर बोलता गया—'विनोद फिर ज़ोर में आ गया है। वह किसी के सामने नहीं आता था। अब फिर रंग आए हैं। यह तुम्हारी रानी रेनोल्ड का किस्सा क्या है? कुछ समझ में नहीं आता। कुछ दिन सुना था मैक्सुअल पर कृपा दृष्टि है, अब सुनते हैं विनोद का एक नया दावा है।'

हरी मुस्कराया। वह बोला—'वीरेश्वर! तुम समझ ही नहीं सकते। मैं तो यही कहूंगा कि रानी फिर भी अच्छी लड़की है।'

वीरेश्वर हंसा और हंसी के बीच में से उसकी आवाज़ निकलने लगी—'क्यों नहीं? तीन-तीन को चुना जाये, और Canine love (कुत्तों का प्रेम) किसे कहते हैं? मगर तुम तो कहोगे ही। जान चली जाए, मगर मजाल है कि लैला के कानों में आवाज़ पहुंचे, कहीं उसके दिल को चोट न लगे।'

हरी ने मुस्कराकर धीरे स्वर में कहा—'तुम चाहे कितने भी सुधारवादी, समाजवादी बन जाओ लेकिन तुम्हारी संस्कारों में बंधी हुई बुद्धि नारी को संपत्ति मानने की भावना से दूर नहीं हो सकती। प्रेम की अनुभूति से उत्पादित करुणा और व्यापकता को तुम नहीं पा सकते। कला का क्या हुआ?'

वीरेश्वर ने सिर नीचा कर लिया। कहा—'कुछ नहीं, वह मोह था। दो-एक पत्र भी लिखे थे उसने। लेकिन मैंने जवाब नहीं दिया। बातचीत ज़रूर की थी।'

हरी ने पूछा—'फिर ?'

वीरेश्वर ने जवाब दिया—'फिर कुछ नहीं। उसके पिता को प्रोफेसर मिसरा के इशारों से मालूम हो गया। तब से उसने भी पंख समेट लिए। लेकिन तुमने रानी की बात नहीं बताई ?'

हरी ने उदासी से कहा—'बताने को है क्या ? उसको ईसाइयों ने परेशान कर दिया कि वह हिन्दुओं से क्यों मिलती-जुलती है। आखिर कहां तक सुनती मेरे पीछे ? लेकिन विनोद से उसका प्रेम केवल प्रतिशोध है। विनोद ईसाइयत के खिलाफ है, उससे संसर्ग बढ़ाना जले पर नमक छिड़कना है। उससे सब ईसाई चौंकते हैं।'

विस्मित अबोध-सा वीरेश्वर देखता रहा। फिर बोला—'उसने गलती की है हरी ! जानते हो ?' विनोद इसको बहुत सच समझने लगा है। विनोद अब तो पहले जैसा नहीं रहा। उसने मुझे अपने पास आए प्रेम-पत्र दिखाए, सब टाइप से छपे थे। लड़की भी कितनी चालाक है ! कोई भी खत पकड़ नहीं सकता। मुझे लगता है इसका नतीजा अच्छा नहीं निकलेगा।'

'कामेश्वर क्या कर रहा है आजकल ?'—हरी ने टोककर पूछा।

'डटकर पीता है, और क्या करेगा ?'—वीरेश्वर ने एक घृणित इशारा किया। हरी चुप रहा। वीरेश्वर ने रुककर कहा—'सज्जाद को आफत से बचाना होगा। लोग उसको प्रेज़ीडेंट नहीं रहने देना चाहते। तुम अलग नहीं रह सकते। तुम इतने फूल सूंघ चुके हो कि कांटे भी तुम्हारे दुश्मन हो गए हैं। कमल पार्टी बना रहा है। अब के और कोई नहीं, हम-तुम ही सज्जाद को बचा सकते हैं। कहो हरी ! तुम लौट आओगे ? कहो न !'

हरी ज़ोर से हंसा। वीरेश्वर अप्रतिभ रह गया।

'वीरेश्वर,' हरी ने कहा—'मैं अब सदा के लिए जा रहा हूं। समझे ! अब मैं इस शहर से ही सदा के लिए मुंह काला कर रहा हूं। अगर किस्मत ने जीता-जागता लौटा दिया, तो शायद फिर मिलें। मैं सदा से भाग्य पर विश्वास करता रहा हूं। सज्जाद की तख्ती विद्यार्थियों ने नहीं, भाग्य ने जमाई थी। भाग्य ही उखाड़ भी सकता है। फिर चिंता क्या है ? ऐसी कौन-सी सल्तनत छिन जाएगी ? मुझे तो तुम जवाब दो।'

वीरेश्वर ने अचकचाकर पूछा—'यानी ?'

हरी ने कहा—'मैंने कहा न कि मुझे जवाब दो। अब मेरी तबीयत इस अधकचरी ज़िन्दगी से ऊब गई है। मैं···मैं किसी दिलेर काम में जाना चाहता हूं। अब अखबार पढ़ने में मज़ा नहीं आता। अब तो चाहता हूं, लड़ना, लड़कर मरना और मरते वक्त किस्मत आज़माना।'

वीरेश्वर ने कहा—'तो क्या करोगे ?'

हरी बोला—'करूंगा नहीं।' कर लिया है। परसों मुझे ट्रेनिंग पाने चला जाना है। अब जाड़े में अगला जत्था भरती होगा। उसी में मुझे कमीशन की इजाज़त मिल गई है। सेकेण्ड लेफ्टिनेंट हो जाऊंगा। 310 रुपये। मज़ा रहेगा। ज़िन्दगी एक तूफान बन जाएगी।'

वीरेश्वर ने मुस्कराकर पूछा—'बस, 310 रुपये में ?'

हरी ने कठोरता से कहा—'वह मेरी कमाई होगी। तुम लोगों की तरह मां-बाप पर वोझा नहीं रहूंगा।'

वीरेश्वर ने कहा—'तुम लड़ाई में जाओगे हरी? साम्राज्यवाद को मजबूत बनाने जाओगे? हिन्दुस्तान के गरीबों पर छुरी चलाने जाओगे?'

हरी ने कहा—'हिन्दुस्तान के गरीब! तुम यह ऊनी कोट पहनकर क्या कर रहे हो? तुम जो रुपये बारह आने की सिगरेट पी जाते हो, यह किसके गले में हार वनकर पड़ेगा?'

फिर हंसकर कहा—'वहुत दिनों की बातें हैं तुम्हारी। हम तो तव तक रहेंगे भी नहीं। इस कमजोरी से मैं ऊब गया हूं। अव तो वस कुछ चाहिए। जोश! खून, हत्या!'

वह ठठाकर हंसा।

'हिन्दुस्तान के आज़ाद होने में अभी बरसों पड़े हैं। मैं त्याग करते-करते थक गया हूं। अब और नहीं किया जाता।'

वीरेश्वर बोला—'वे तुम्हारे व्यक्तिगत त्याग थे। वह सामूहिक हो जाएगा। रुपयों की ऐसी क्या कमी है?'

बात काटकर बोलते हुए हरी उठकर खड़ा हो गया—'बच्चों की-सी वातें न करो वीरेश्वर! जाओ पढ़ो। तुम्हें तो ग्रव कॉलेज में कई वरस हो गए? अव कव तक पड़े रहोगे? पढ़ो और अच्छा दर्जा पाकर पास करो। शायद तक कोई नौकरी मिल जाए। वर्ना कुछ नहीं, कुछ भी नहीं।'

रात के दस बजे का घंटा लगा। वीरेश्वर के मुंह से आवाज़ भी नहीं निकल सकी।

24

किन्तु सज्जाद ने कामेश्वर को विश्राम नहीं लेने दिया। नादानी को जाने से रोककर एक छोटे-से घर में टिका दिया, जो शहर के बहुत कम आबाद हिस्से में था। कामेश्वर ने जिस समय रूप की उस ज्वाला को देखा, उस समय उसे अनुभव हुआ कि धन और संकोच एक व्यर्थ की बात थी। इस रूप के सामने संसार की प्रत्येक वस्तु हीन थी। वह अपने आप धन्य हो गया। एक सप्ताह तक नित्य उसके घर जाता रहा। आठवें दिन कॉलेज से लौटते समय उसने देखा, भगवती अपने कमरे की खिड़की पर खड़ा होकर बाहर झांक रहा था। उसकी इस अवस्था को देखकर कामेश्वर को विस्मय हुआ।

कमरे में घुसते हुए कामेश्वर ने कहा—'यह क्या हो रहा है?'

भगवती खिड़की से उतर आया। वोला—'कुछ नहीं, ज़रा झांक रहा था।'

'तो खिड़की पर चढ़ने की क्या ज़रूरत थी? क्या कोई गुज़र गई थी जिसे आड़े-तिरछे होकर देख रहे थे?'

भगवती ने वहुत छोटा उत्तर दिया—'नहीं।' और वह गम्भीर हो गया। उसके

मुख पर एक विषाद की छाया इधर से आकर उधर से निकल गई। वह क्षण-भर उसके मुख को देखता रहा। भगवती के मुख पर झलकता था कि कभी उसने नारी को छुआ भी नहीं। कामेश्वर की दृष्टि में उस मनुष्य का जीवन व्यर्थ है, जिसने कभी स्त्री को नहीं परखा। चुप होकर वह देर तक सोचता रहा। भगवती अनजान-सा बैठा रहा।

कमरे में एक खाट थी, जिसपर बिस्तर बिछा था। प्रायः रहमान का-सा ही सब कुछ था, केवल राजनीति के पदचिह्न नहीं थे।

एकाएक कामेश्वर ने कहा—'भगवती! तुम्हें अपना अकेलापन कभी भी नहीं कचोटता?'

भगवती के शब्द गले तक आकर रुक गए। मन में आया, लीला की बात सुना दे। फिर न जाने क्यों रुक गया। उसने कहा—'यह तो सब तुम जैसे उस्तादों के काम हैं।'

'उस्तादी तो कहने की बात है, लेकिन सच, तुम्हें कुछ भी नहीं होता? मैं तो इन सबकी कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि मुझमें इस भूख की निर्बलता न होती तो नारी के प्रति मुझे रत्ती-भर भी आकर्षण नहीं रहता।'

वह कहकर हंस उठा। हंसा तो भगवती भी, किन्तु जैसे कामेश्वर को प्रसन्न करने के लिए। कामेश्वर ने फिर कहा—'तुमने कभी किसी से प्रेम किया है?'

भगवती ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

'किससे?' कामेश्वर ने चौंककर पूछा। जैसे उससे उसे ऐसी आशा न थी। भगवती ने कहा—'अपने-आपसे।'

कामेश्वर कुण्ठित हो गया। उसने कहा—'तो मैं दावे से कह सकता हूं कि तुम्हारे पास हृदय नहीं है। तुमने नारी को कभी नहीं देखा।'

भगवती ने चिढ़कर कहा—'क्यों, मैंने क्या स्त्रियां नहीं देखीं?'

'यों देखना देखना नहीं होता। अच्छा, एक बात कहूं, मानोगे?'

भगवती ने कहा—'क्या?'

'पहले कसम खाओ।' कामेश्वर ने अधिकार से उसका हाथ दबाकर कहा। भगवती झिझका। किन्तु कामेश्वर ने हाथ नहीं छोड़ा। भगवती ने लाचार होकर कहा—'अच्छा कहो।'

'मेरे साथ चलो। जहां मैं ले चलूं वहीं चले चलो। और कोई प्रश्न पूछना निषिद्ध है।

भगवती कपड़े बदलने लगा। कामेश्वर और भगवती चल पड़े।

जिस समय वे दोनों शहर के प्रायः बाहर बसे उस छोटे-से स्वच्छ घर में घुसे, उस समय कमरे में से सितार बजने की ध्वनि आ रही थी। कोमल लहरियां कांपती हुई करुण स्वर से सिसक रही थीं। भगवती का हृदय भीतर ही भीतर सिहर उठा। अन्दाज़ से ही उसने समझ लिया कि आज वह एक ऐसी जगह आया है, जहां आना उसके जीवन का कोई भी कार्य नहीं था। और फिर भी आने के अपराध की हीनता के पीछे भी जो समाज की अस्वीकृति है वह एक संकोच बन गई। उसने ठिठककर कामेश्वर का हाथ पकड़कर कहा—'कहां ले आए हो मुझे? यह जगह ठीक नहीं है।'

कामेश्वर ने मुड़कर देखा, जैसे किसी पुराने उस्ताद ने एक कमाल के पेच को

देखकर घबराहट से घुटने टेक दिए हों। उनकी आंखों में एक गर्व खेल उठा—गर्व जो अपने आपमें इतने दिन से असन्तोष से हाहाकार कर रहा था। आज इस अबोध सरलता को देखकर किञ्चित् मुस्करा उठा। भगवती ने फिर कहा —'किंतु···'

कामेश्वर के होंठों से एक क्षीण हास्य-ध्वनि-सी फूट निकली और उसने शरारत-भरी आंखों से देखकर बायें हाथ से उसका हाथ पकड़कर कहा—'डरते हो ? जंगल में रहकर योग करना चाहते हो ?'

'लेकिन मैं तो कभी यह सब नहीं करता !' भगवती का कण्ठ रुद्ध हो गया।

'नहीं करता !' व्यंग्य से कामेश्वर ने कहा—'तुमसे कुछ करने को कौन कहता है। स्त्री को देखना-भर तो पाप नहीं। तुम देखने से भी डरते हो ? मैं ढोंग में अपने-आपको छिपाकर सज्जन नहीं बनना चाहता।'

इसके बाद भगवती ने कुछ नहीं कहा। द्वार पर खड़े होकर देखा, कमरे में कोच पर एक युवती लेटी हुई थी और औंधी-सी हो सितार के तारों को बार-बार छेड़ देती थी, जैसे वह यही निश्चित नहीं कर पा रही हो कि जीवन की इस वीणा पर कौन-सा स्वर है जो बजकर मन को सान्त्वना दे सकेगा। स्वर कमरे में गूंज उठते थे।

पदचाप सुनकर सुन्दरी ने आंखें उठाईं। कामेश्वर ने चुपचाप कुछ इंगित किया। युवती ने नशीली आंखों से भगवती की ओर देखकर कहा—'आइए !'

स्त्रियों के सामने अपने-आपको बहुत उच्च समझनेवाले भगवती को एकाएक लगा कि वह बहुत ही तुच्छ है। यहां तक कि उसके खड़े होने का ढंग भी इतना भद्दा है कि वह उस रूप का प्रत्यक्ष ही एक घोर अपमान है। युवती हंसी। भगवती ने देखा। वह कुछ भी नहीं समझ सका। एक बार उसे लगा, जैसे वह सब एक इन्द्रजाल था और वह कभी भी उसमें रहने योग्य न था। यही स्त्री जो इतने घोर पाप में अपना जीवन व्यतीत कर रही है, जिसका नाम सुनते ही लोग घृणा से नाक सिंकोड़ लेते हैं, आज वह उसके सामने इतना नम्र कैसे बन गया ? वह वास्तव में सुन्दरी थी। भगवती अधिक उसकी ओर नहीं देख सका। किन्तु जो कुछ उसने देखा, वही क्या मन को पराजित करने के लिए काफी नहीं था। किसी को कर्ज़ा देने पर जब कर्जदार बेशर्मी पर उतरकर टालने पर उतारू हो जाता है तब कर्ज़ा देनेवाला दो बार तकादा करके फिर अपने-आप अपना रुपया मांगने में झेंपने लगता है। भगवती को ऐसा ही लगा। सामने एक पतिता स्त्री बैठी थी, किन्तु वह इतनी निःसंकोच थी कि भगवती अपने ऊपर संकुचित हो उठा।

नादानी ने फिर तिरछी नज़र से सिर झुकाकर देखा। देखकर एक बार मुस्कराई और भगवती को लगा, जैसे उसका शरीर झनझना उठा हो। संसार मूर्ख ही तो है, जो इसे पतित कहता है। यह तो केवल रूप है जिसका अस्तित्व बहुत अल्पायु है। इसे भी पुरुष देश और काल की सीमा में बांधकर अपना स्वार्थ नापना चाहता है। मन के भीतर कुछ हंसा। स्वार्थ की माप से अधिक गुरुत्व रखनेवाली स्वार्थ की सिद्धि धीरे से मुस्करा उठी। भगवती ने कामेश्वर की ओर देखा। वह अविचलित-सा उसी ओर देख रहा था।

भगवती सिहर उठा। युवती धीरे से हंसी। दोनों जाकर कुर्सियों पर बैठ गए। युवती ने बायें हाथ से सितार हटा दिया और कुहनी के सहारे अधलेटी-सी बैठ गई।

कामेश्वर कोई उत्तर नहीं दे सका। वह उसकी ओर देखता रहा। नादानी ने कहा—'मैं पुरुष को उसके पुरुषत्व से नहीं चाह सकती। मैं जानना चाहती हूं कि उसके पास धन है?'

कामेश्वर का मौन घृणा से उसका मुख टेढ़ा कर गया। नादानी हंस पड़ी, जैसे कामेश्वर मूर्ख था। वह बोल उठी—'घृणा हो रही है? लेकिन यह तो एक सच है। वेश्या धन के अतिरिक्त किसे प्यार करती है? यदि पुरुष को अपने ऊपर इतना गर्व है कि वह धन से मुझे खरीद सकता है, तो क्या मेरा गर्व अनुचित है कि धन के अतिरिक्त पुरुष के पास और कोई साधन नहीं, जिससे वह मुझे खरीद सके?'

उसने कामेश्वर की पीठ और दीवार की ओर मुंह करके भारी स्वर में कहा—'यदि तुम चाहते हो कि मैं तुम्हें भीख दूं तो साफ-साफ क्यों नहीं कहते?'

कामेश्वर ने कहा—'भीख? कैसी भीख! मैं इसे यहां सिर्फ इसलिए लाया था कि इसने जीवन में कभी स्त्री का संसर्ग नहीं किया। काश तुम इसकी झिझक छुड़ा देतीं!'

'क्यों नहीं किया?' नादानी ने मुड़कर पूछा, 'इसलिए न कि यह गरीब है? तो मुझसे सुनो कि यह गरीब है तो इसे ऐसा करने का कोई अधिकार भी नहीं है। यदि मुझे गरीबी के कारण समाज और किसी भी तरह जीवित रहने देना नहीं चाहता, तो फिर मुझे परोपकार की छलना का यश लेने की कोई आवश्यकता नहीं।'

वह हंसी। सच, वह बड़ी कटु और चुटीली हंसी थी। उसमें व्यंग्य का विष भंवर बनकर चक्कर मार रहा था।

कामेश्वर ने आगे बढ़कर उसके कन्धों को जोर से पकड़ लिया और कहा—'तुम जीत गई, मैं हार गया।'

एकदम वह मुड़ा और बिजली की तरह बाहर निकल गया। भगवती उस समय भी चित्र ही देख रहा था। एकाएक कामेश्वर को उस वेग से निकलते देखकर उसने पुकारकर कहा—'अरे सुनो! कहां जा रहे हो?'

किन्तु कामेश्वर ने कुछ नहीं सुना। वह एकदम चला गया। क्षण-भर में ही भगवती ने उसकी ओर दौड़ने का निश्चय किया, किन्तु इससे पहले कि वह कदम उठाए, किसी ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा। भगवती ने मुड़कर देखा और हठात् उसके मुंह से निकला—'आप!'

'तुम कहां जा रहे हो?'

प्रश्न निर्विवाद-सा उसके मुख पर टकरा गया। तुम! आप भी नहीं। इस सम्बन्ध में हीनता ही तो है। भगवती का सारा शरीर झनझना उठा। उसे लगा जैसे उसका हाथ किसी वज्र-मुट्ठी में बन्द है। उसमे कातर दृष्टि से नादानी की ओर देखा। नादानी ने कठोर स्वर से कहा—'क्या तुम उसके साथ ही आए थे? जानते नहीं यह वेश्या का घर है? यहां आनेवाले को स्वयं में भी समर्थ होना चाहिए!'

भगवती ने कुछ नहीं कहा। वह देखता रहा। देर तक देखता रहा। फिर धीरे से उसने कहा—'मालूम देता है, तुम्हें लोगों ने बहुत सताया है?'

नादानी ने सुना। हंसी और बड़े ज़ोर से हंसी। फिर कहा—'तुम क्यों आए हो

यहां बाबू ?'

भगवती फिर भी खड़ा रहा, क्योंकि नादानी ने उसका हाथ पकड़ रखा था। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। यह कामेश्वर ने उसे कहां लाकर फंसा दिया। अभी तक कैसा शांतिपूर्ण जीवन बिताया। न जाने क्या का क्या हो जाए। और कोई उसे इस स्थान पर देखेगा, तो क्या कहेगा। क्या इसीलिए वह गांव से यहां आकर रह रहा है ? मां सुनेगी तो क्या सोचेगी ? गांव के लोग क्या कहेंगे ? भगवती सोचते-सोचते सिहर उठा।

नादानी ने उसका हाथ छोड़ दिया और पलंग पर बैठ गई, और कहा—भगवती ! यहां आओ।'

भगवती मुग्ध-सा उसके पास चला गया। उसने कहा—'बैठो।'

वह कुर्सी पर बैठ गया। नादानी उसे घूरती रही। फिर धीरे-धीरे जैसे वह शांत हो गई। उसने कहा—'गाना सुनोगे ?'

भगवती ने सिर हिला दिया। अपनी इस अस्वीकृति पर उसे तनिक भी संकोच नहीं हुआ। हृदय ने कहा—जानते हो ? गाना सुनने के लिए मनुष्य के पास दो कान होना ही पर्याप्त नहीं है। उसकी जेब में कुछ दाम भी होने चाहिए। किन्तु हृदय पर अज्ञात-वासना ने प्रहार करके उत्तर दिया—किन्तु मेरा तो कोई दोष नहीं। मैंने तो आपसे अपने आप गाना सुनाने को नहीं कहा। यदि मैं मना कर दूं तो आपको बुरा नहीं लगेगा ?

'हृदय कभी इतनी जल्दी परास्त नहीं होता।' उसने मुड़कर कहा—'लेकिन ज्ञात या अज्ञात रूप से यह संगीत वासना को जगाने का साधन नहीं, तो क्या है ?'

तब स्वार्थ की समस्त शक्ति ने भवानी की भांति समस्त शक्तियों का एकत्रीकरण करके उत्तर दिया—'मैं यहां अपने आप नहीं आया। आकर फंस गया हूं। अब और कर भी क्या सकता हूं ? यदि नहीं सुनता हूं तो बात भी क्या कर सकता हूं ? यह मेरा दोष नहीं है।'

नादानी तार झुनझुनाने लगी थी। वह गाने लगी। गीत अपने आप थोड़ी देर तक गूंजता रहा। फिर अन्तराल में लय हो गया। पहाड़ों में एक गूंज उठी और अपने हृदय का समस्त हाहाकार उसने करुण से करुणतम स्वरूप में उगल दिया। किन्तु पत्थरों ने इसे एक-दूसरे पर निर्दयता से फेंक दिया और सब मिलकर उसपर बर्बर अट्टहास कर उठे। भगवती अचेतन-सा बैठा रहा। उसने एक बार भी पुराने अभ्यस्तों की भांति वाह-वाह नहीं की। प्रशंसा नहीं की। बुत बना था, बुत बना बैठा रहा। उसका संकोच ही इस बात का साक्षी था कि वह सचमुच वहां बैठने के योग्य न था। नादानी ने सितार हटा दिया। फिर पूछा—'गीत कैसा लगा ?'

भगवती ने कहा—'बहुत अच्छा।'

'और सुनोगे ?'

'नहीं।'—भगवती ने हठात् उसे उत्तर दिया। नादानी चौक पड़ी।

'क्यों ? तुम तो कहते थे अच्छा लगा'—उसने विस्मय से पूछा।

भगवती ने धीरे से कहा—'सुनना तो सरल है, लेकिन उसकी कीमत चुकाना

मेरे वस की बात नहीं।'

'तो फिर यहां आए किसलिए थे ?'

'मैं अपने आप यहां नहीं आया था। बल्कि मुझे इस घर में घुसते समय ज्ञात हुआ था कि कामेश्वर मुझे ऐसी जगह ले आया है।'

नादानी ने होंठ बिचका लिए। सीधा प्रहार कर रहा है। मुंह पर कह रहा है कि वह एक वेश्या है। इतनी बार अपने आप दूसरों को बार-बार जताने पर भी न जाने क्यों वह अब की एकदम विक्षुब्ध हो उठी। उसने तीक्ष्ण स्वर से कहा—'और तुम यह जानते हुए भी कि ऐसी जगहें तुम्हारी सीमा में नहीं आतीं, एक बार झांक आने में नहीं झिझके ?'

लोहे पर लोहा जोर से टकरा गया। एक-दूसरे ने एक-दूसरे की निर्बलता को ढूंढ़कर उस पर अपने मन की विकृत ईर्ष्या के विकराल नख चुभा दिए और दोनों ने एक-दूसरे की ओर घृणा से देखा और विचलित न होकर आंखें फेर लीं। भगवती के हृदय पर एक जोर का घूंसा लगा। वह संसार से कहता है कि वह दरिद्र है। किन्तु क्या दरिद्र होने के कारण वह एक वेश्या से भी पतित है ? लेकिन इस स्त्री का क्या ? यह तो अपनी लाज-हया खोकर ही यहां आकर बैठी है। इससे कुछ भी भलमनसाहत की आशा करना अपने मन की दासता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं, जो यह समझती है कि किसी भी परिस्थिति में क्यों न हों, मनुष्य फिर भी मनुष्य ही है। किन्तु यहां तो ऐसा नहीं। मनुष्य तो न जाने कब का सड़ गया और उसे निकालकर बाहर कर दिया। उसी की लाश पर यह किला खड़ा है सामन्ती शक्ति का, बलि ही जिसकी नींव का एकमात्र धन है, धन जिसकी रक्षा के लिए मनुष्य की नहीं, एक पिशाच की आवश्यकता है, क्योंकि पिशाच कभी भी कोमलता की छलना में नहीं पड़ सकता। भगवती के चेहरे पर एक स्याही-सी फिर गई। वह विक्षुब्ध होकर बोल उठा—'तुम समझती हो, तुम्हारे पास आना किसी भी आदमी का गर्व हो सकता है ?'

'गर्व हो या न हो, यह मैं नहीं जानती; किन्तु इतना अवश्य जानती हूं कि आदमी मेरे पास आते हैं और वह उनकी नीचता का काफी प्रमाण है—' नादानी ने उसकी ओर क्रुद्ध होकर देखा।

भगवती हंसा। उसने कहा—'नीचता तो कह दिया; यह नहीं कहा कि मैं स्वयं इतनी घृणित हूं कि मनुष्य के और किसी रूप का मुझसे मेल ही नहीं हो सकता।'

नादानी ने चिल्लाकर कहा—'चुप रहो ! भिखारी ! आए थे अपने रईस मालिक को लेकर कि दो टुकड़े मुझे भी डलवा देना। निकल जाओ यहां से। ज़िन्दगी-भर खुशामद की है, यहां नवाबी दिखाने आए हो।'

लेकिन भगवती हंस पड़ा। अपमान को अपमान समझने से ही तो अपमान होता है। फिर भी धीरे-धीरे उठा और द्वार की ओर चला। नादानी देखती रही, फिर आवाज़ दी—'भगवती !'

भगवती रुक गया। नादानी उठकर उसके पास आ गई और पूछा—'बुरा मान गए ? जा रहे हो ?'

भगवती कुछ नहीं समझा। चुपचाप खड़ा रहा। उसे जैसे उत्तर देने की भी

कोई आवश्यकता नहीं थी । उसका मौन ही उसकी समस्त वाक्-शक्ति का पर्यायवाची था। नादानी ने मुंह फेर लिया, जैसे वह कुछ कहना चाहती थी, मगर कह नहीं सकती । हृदय की घुमड़न एक असह्य नीरवता बनकर भीतर ही भीतर फदक उठी जैसे कत्था फदक उठता है और वे कठोर टुकड़े रक्त का रंग धारण करके ऊष्मा से तड़फड़ाने लगते हैं ।

नादानी ने ही कहा—'भगवती ! कामेश्वर तुमको लाया था । वह कायर था, भाग गया । तुम उतने निर्बल नहीं लगते ।'

भगवती ने सुना और कहा—'वह तुम्हें पालता है, जैसे घर पर उसने टामी कुत्ते को पाला हुआ है, मैं उसका नौकर नहीं हूं ।'

नादानी ने फूत्कार करते हुए कहा—'तुम बंगले के कुत्ते हो, ऐसा तो मैंने नहीं कहा । तुम्हें देखकर ऐसा कोई नहीं कह सकता । तुम जानते हो तुम क्या हो ?'

उसने आंखें उसके चेहरे पर गड़ा दीं। उनमें ऐसी दृष्टि थी जैसे कर्कश मुड़ी हुई उंगलियां गला घोंट देने के लिए उठकर हवा में धीरे-धीरे मृत्यु का भीषण हाथ बनकर झुकने लगती हैं । नादानी ने उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कहा—'तुम एक सड़क के कुत्ते हो। दूसरों की जूठन को मेहनत से कमाया माल समझनेवाले ।'

'नादानी'—भगवती ज़ोर से चिल्ला उठा। उसका स्वर बीभत्स हो गया। किन्तु नादानी पागलों की तरह हंस पड़ी और पलंग पर लेटकर हंसती रही। भगवती उसकी ओर आग्नेय नेत्रों से थोड़ी देर तक देखता रहा और फिर एकदम मुड़कर बाहर निकल गया । हंसी की आवाज़ अभी तक उसके कानों से गूंज रही थी । जैसे बाहर स्वच्छ हवा थी और वह एक विषैली सड़ांध में से निकलकर आया था । एक बार उसने सांस ली और फिर चल पड़ा। अनजाने ही उसके पैर अपने कमरे की ओर न उठकर कामेश्वर के घर की ओर मुड़ गए ।

भगवती ने कमरे में प्रवेश किया। उसने अन्तिम वाक्यांश सुना । लवंग कह रही थी- 'वह तो हमारे गांव का है ।'

इन्दिरा ने उठकर स्वागत किया। कहा—'आओ भगवती ! आज तो अजीब हालत कर रखी है। क्या हो गया है तुम्हें ? यह तुम्हारा चेहरा कैसा लग रहा है ?'

भगवती ने बोलना चाहा, पर स्वर अवरुद्ध हो गया । ग्लानियुक्त कंठ ने उस संकोच को एक डर बनाकर भीतर बैठा दिया था। उसने भर्राए स्वर से कहा—'कामेश्वर आ गया ?'

'कहां गए थे भैया ?'—इन्दिरा ने सरलता से मुस्कराकर पूछा । भगवती को लगा जैसे वह जानती थी, जैसे यह इन सबने मिलकर साजिश की थी उसे नीचा दिखाने की, उसके घावों को हरा करने की। उसने कहा—'तो क्या अपने कमरे में है ?'

'मैं तो नहीं जानती, आइए। वहीं छोड़ आऊं।' फिर मुड़कर कहा—'लवंग, मैं अभी आती हूं ।' और फिर कहा—'चलिए ।'

भगवती उसके साथ हो लिया। दूसरे कमरे में पहुंचते ही उसने उसकी राह रोककर पूछा—'भगवती ! एक बात कहूं ?'

'नहीं।' भगवती ने रोष से कहा—'मैं यहां तुम्हारी बात सुनने नहीं आया हूं। मुझे कामेश्वर से मिलना है।'

इन्दिरा उसके विकृत स्वर को सुनकर चौंक गई। फिर भी उसे क्रोध हो आया। उसने तेज़ होकर कहा—'लेकिन तुम्हें सुननी ही पड़ेगी।'

भगवती चुप होकर उसे देखने लगा। इन्दिरा ने इसकी कुछ चिन्ता नहीं की। उसने धीरे से कहा—'तो तुम सचमुच इतने क्रुद्ध हो ? किन्तु मैंने तो कभी तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ा। मैंने तो कभी तुम्हारा अपमान नहीं किया। फिर ? फिर इतनी प्रतिहिंसा किसलिए ?'

भगवती को एक हलका-सा चक्कर आया। उसने अपना हाथ उसके कन्धे पर रखकर अपने आपको संभाल लिया। इन्दिरा विस्फारित नयनों से उसे देखती रही। भगवती की आंखें झुक गईं। उसने धीरे से कहा—'मुझे माफ करो इन्दिरा ! मैं बिलकुल आपे में नहीं था। उफ ! यह मैंने क्या किया ? मुझे जाने दो इन्दिरा ! कामेश्वर से मैं अब नहीं मिलना चाहता। उफ ! उफ···'

इन्दिरा कुछ भी नहीं समझी। उसने कहा—'क्यों, भैया से नहीं मिलोगे ?'

भगवती ने कातर स्वर से कहा—'मिलूंगा, इन्दिरा ! अवश्य मिलूंगा। लेकिन इस समय नहीं। अब व्यर्थ होगा। एक काम कर सकोगी ?'

इन्दिरा ने कहा—'क्या ?'

'मुझे बाहर पहुंचा दोगी ?'

'क्यों नहीं ? लेकिन क्या तुम बीमार हो ?'

'नहीं, मैं बिलकुल ठीक हूं।'

'तो फिर तुम्हें हो क्या गया है ?'

'कुछ भी तो नहीं।' और फिर ऐसे कहा जैसे वह कुछ भी नहीं जानता—'मैं घर जाना चाहती हूं।'

इन्दिरा ने उसका हाथ पकड़ लिया। कहा—'चलो तुम्हें आराम करने की ज़रूरत है।'

'आराम ?'—भगवती के मुंह से फूट निकला और वह लौटते हुए हंस उठा।

दूसरे दिन जब भगवती कॉलेज से लौटकर आया तो न जाने क्यों उसका हृदय एकदम उद्विग्न हो गया। वह अपनी पराजय को स्वयं ही नहीं समझ पाया। एक विक्षोभ से उसका हृदय भीतर ही भीतर व्याकुल हो रहा था। नादानी का चित्र उसकी आंखों के सामने बरबस लौटने लगा। फिर वही उन्माद ! वह मन ही मन कांप उठा।

उसने खिड़की से झांककर देखा, कामेश्वर सड़क पर जा रहा था। आज जैसे उसे यह जानने की भी आवश्यकता नहीं थी कि भगवती जीवित है या मर गया। और कल वह कितने उल्लास से, स्नेह-भरे आवेश से उसे अपने साथ पकड़कर नादानी के घर ले गया था। तो क्या उसने जान-बूझकर मेरा अपमान कराया ? भगवती इस प्रश्न पर अटक गया। वह देर तक इसी उलझन में पड़ा रहा।

एकाएक बरामदे में कुछ लड़कों की बातचीत सुनकर जैसे उसका ध्यान टूट

गया और उसे लगा, जैसे वह फिर कठोर संसार में लौट आया था।

वह उठा। कपड़े पहने। बालों पर कंघा फेरा। पहली बार शीशे में अपनी सूरत देखी और न जाने क्यों मुंह पर एक लाली-सी दौड़ गई। कौन-सा युवक ऐसा होता है जो यौवन में अपने-आपको सुन्दर नहीं समझता ? भगवती ने आंखें हटा लीं और नादानी के घर की ओर चल पड़ा।

जिस समय वह द्वार पर खड़ा हुआ, घर खुला पड़ा था। वह भीतर घुस गया। न जाने क्यों, उसे इस प्रकार चुपचाप भीतर जाना भी अनुचित नहीं लगा।

भगवती ठिठक गया। विस्मय से उसकी आंखें विस्फारित हो गईं। क्षण-भर को हृदय स्तब्ध हो गया। यह वह क्या देख रहा था ? पर्दा खिंचा हुआ था। उसकी बगल की तरफ एक कोना हल्की हवा से फूलकर उठ गया था जिसमें से कमरे के भीतर का दृश्य दीख रहा था। कौतूहल ने मर्यादा को ठोकर मारकर दूर हटा दिया। भगवती वहीं छिपकर खड़ा हो गया। भीतर हल्के प्रकाश में नादानी कपड़े बदल रही थी। भगवती ने देखा, जैसे बेटा मां को देख रहा था, भाई अपनी बहिन को। नादानी निरावरण खड़ी थी। सिर से पांव तक, पेट से पीठ तक, कंधे से घुटने तक, टखनों से गर्दन तक, नितंबों से हाथों तक, उंगलियों से कुहनियों तक, बालों से मुख तक, जैसे पाप का भीषण हलाहल खुल गया हो, अत्याचार का रक्त जम गया हो। एक ऐसी झल्ल कि यह दुनिया उस आग में तड़पकर जल जाए। भगवती ने देखा, वह स्त्री थी। केवल मादा। यह औरत का सौदा था, मां का सौदा था, मनुष्य और धन के बर्बर संभोग का एक माध्यम था, मदिरा रक्त थी और जीवन का गला सूख रहा था। उन आंखों की ज्योति से जैसे महलों में आग लग रही थी, एक असमर्थ, मूक, प्यासी अबला का अविराम भीषण प्रतिरोध उगल रहा था। भगवती की काम-तृष्णा उसकी ज्वाला में भस्म हो गई। अपमानित जीवन का पथ धुल गया था। वह दैत्य नहीं था, आदमी ही पैरों के नीचे कराह रहा था; भयानक आग की लपटों में युग कराह रहा था। वैभव की आत्मा छीनकर वह नारी शांत-मूक वहां खड़ी थी, चिर विषाद की कालिमा उसे डस रही थी। उसकी सदा की बद्ध आत्मा उसे गुलाम बना रही थी।

भगवती ने देखा—एक चांद-सा मुंह, सुन्दर केश, अधमुंदी आंखें, दो मांसल हाथ जैसे चिकने सांप, जंघा, घुटने···कोई लचक नहीं, कुछ नहीं, सिर्फ एक मादा, जिसमें कोई दैवी आकर्षण नहीं, भगवती की समझ भूल गई कि कैसे इसी मांसपिंड में अज्ञान ही रहस्य बन जाता है। वीणा पर झूमनेवाली रागिनी। किन्तु मन नहीं माना। उसने उसे देखा, आंख गड़ाकर, अधमुंदी आंखों से, पलक खोलकर···

केवल एक नारी, एक सहज स्नेह की प्यासी नारी। केवल एक गाय की तरह ही तो है यह। उसमें से रुपये की आवाज़ कहीं से नहीं आ रही थी। कोई गन्ध नहीं, कोई भय की छाया नहीं।

नादानी को एकाएक कुछ भ्रम-सा हुआ। उसने बड़ा तौलिया झट से अपने शरीर पर ओढ़ लिया और बढ़कर कहा—'कौन ? कौन है वहां ?'

एक बार मन में आया, भाग जाए, किन्तु जैसे परों ने उठने से इन्कार कर दिया। वहीं बुत-सा खड़ा रहा। नादानी ने पर्दा उठाकर झांककर देखा और एक बार

विस्मय से उसकी आंखें खुल गईं। फिर हठात् व्यंग्य से हंस पड़ी। भगवती के रोम-रोम में आग-सी लग गई। वह उस पतिता के सामने भी एक घोर अपराधी के रूप में खड़ा था, जहां डाके डालना उचित है, चोरी नहीं। कुछ भी नहीं सूझा। लज्जा से एक बार कान तक लाल हो गए, किन्तु समस्या की सुलझन नहीं हुई। नादानी अभी भी सामने उसी उपेक्षा से देख रही थी।

एकाएक नादानी ने उसका हाथ पकड़ लिया और अहसान करती-सी बोली—'तुमने मेरी बात नहीं मानी। बहुत भूखे लगते हो? आओ। वैसे तो तुम्हें यह अवसर कभी नहीं मिलेगा।'

वह फिर हंस पड़ी। भगवती के काटो तो ख़ून नहीं। एक झटका देकर हाथ छुड़ाने की भी शक्ति नहीं रही। पराजित-सा खड़ा रहा, जैसे वह एक पशु था, उसमें से मनुष्यता का समस्त विवेक लुप्त हो चुका था।

नादानी ने अट्टहास किया। आज उसने अपने से भी हीन व्यक्ति को देखकर अपने अहंकार की वास्तविक स्पर्धा को जागते हुए देखा। अपमान करने के लिए उसने फिर कहा—'आओ!'

भगवती निर्जीव-सा देखता रहा। फिर उसके मुख से लड़खड़ाते शब्द निकले—'मैं नहीं, मैं नहीं, मैं इसलिए नहीं आया था…'

नादानी हंसी। तो फिर क्यों आए थे। सुबह खाना खाया था? सूरत तो नहीं बताती।'

इस अपमानजनक प्रश्न को सुनकर भगवती तिलमिला गया। नादानी ने फिर गम्भीर होकर कहा –'रुपया चाहते हो?'

भगवती ने निर्दोष नयनों से सिर हिला दिया। उसने धीरे से कहा—'मैं केवल एक बात के लिए आया था। वह यह कि तुम यह काम छोड़ दो। नादानी ने सुना। भगवती का हाथ ऐसे छोड़ दिया, जैसे बिजली का तार छू गया हो। लौटकर भीतर चली गई। भगवती ने देखा, वह बिस्तर पर मुंह छिपाकर रो रही थी। वह कुछ देर चुपचाप देखता रहा। नादानी भूल गई, जैसे भगवती था ही नहीं।

फिर सिर उठाकर उसने भगवती की ओर देखा। उसकी आंखों में आंसू डब-डबा रहे थे। कातर दृष्टि से एक बार देखा और फिर सिर झुका लिया।

भगवती देखता रहा।

25

इन्दिरा ने हंसकर कहा—'सच?'

'नहीं तो क्या मैं तुमसे हंसी कर रही हूं। बिल्कुल सच समझो। अब तो दिन भी ज़्यादा नहीं रहे।'

'शाबाश! और सारी बातें ऐसे चुपके-चुपके कर लीं कि किसी को पता तक

नहीं चला ! हुआ कैसे ?'

'मसूरी में मुलाकात हुई थी, लाइब्रेरी के पास। मैं एक बेंच पर बैठी थी। आसमान खुला हुआ था। हवा बड़ी मतवाली थी। उस दिन मैं आसमानी साड़ी पहने थी और उसी समय हमने एक-दूसरे को देखा। वह एक रिक्शे में से उतरकर एक दूकान के भीतर गए। और फिर...'

लवंग को रुकते देखकर, शरारत-भरी आंखों से देखते हुए इन्दिरा ने कहा—'क्यों, रुक क्यों गईं ? फिर बताओ न, क्या हुआ ?'

'फिर राजेन ने कहा कि डैडी को उज्र नहीं होगा।'

'राजेन तो इंग्लैंड से हाल में ही लौटा है न ?'

'हां, बिल्कुल गर्मियों में ही। बार एट-ला होना चाहता है। बड़ा अच्छा आदमी है। I love him.'

'यानी कि मैं उसे प्यार करती हूं। खूब ! तो यह दिल्लगी मसूरी में शुरू हुई ?'

लवंग ने कहा—'शैतान ! हमारा प्रेम तुम्हें सिर्फ एक मज़ाक मालूम देता है ? अब शादी के बाद हम इंग्लैंड जाएंगे।'

'नामुमकिन'—इन्दिरा ने टोककर कहा—'नामुमकिन ! लड़ाई के दौरान में शायद ही इजाज़त मिले।'

लवंग ने चेतकर कहा—'इस कमबख्त हिटलर को लड़ाई छेड़ने का कोई और मौका नहीं मिला ?'

इन्दिरा ने सिर हिलाकर कहा—'तो गोया आपकी शादी की साइत लड़ाई छिड़ने से पहले तलाश की जाती और उसकी बुनियाद पर लड़ाई छेड़ी जाती।'

'चुप रहो बेवकूफ !' लवंग ने मुस्कराकर डांटा ! —'लेकिन तुम ही बताओ कि इंग्लैंड से बढ़कर 'हनीमून' मनाने के लिए और कौन-सी जगह थी ? राजेन सुनेगा तो उसे कितना दुःख होगा !'

'हां, तो फिर क्या हुआ ?'

'उसके बाद वे डा० सिन्हा के घर ही आकर टिक गए। उसके बाद Life was a real pleasure, सच ज़िन्दगी बिल्कुल, बिल्कुल...क्या कहना चाहिए...'

'इन्दिरा ने धीरे से कहा—स्वर्ग हो गई।'

'बिल्कुल ठीक। Exactly ! इन्दिरा ! ज़िन्दगी बिल्कुल स्वर्ग हो गई। मेरे पास शब्द नहीं हैं, वर्ना मैं उसको तुम्हें बताती। उफ़ ! काश ऐसा होता ! मगर मैं कवि नहीं हूं।'

'तुम्हें तो ज़रूरत भी नहीं है। पोएट तो राजेन को बनना होगा। है कैसा ?'

'Oh ! Handsome; Broad shoulders, Deep chest, Wonderful eyes ! (सुन्दर, विशाल स्कन्ध, प्रशस्त वक्ष, अद्‌भुत नयन।)'

इन्दिरा कुछ प्रभावित हुई। काश वह भी एक ऐसा ही व्यक्ति पाती ! लेकिन लवंग का भाग्य अच्छा है। उसकी-सी किस्मत सबकी नहीं है। लवंग का आर्थिक पहलू सुरक्षित है और यहां सब ऊपर ही ऊपर का ढांचा रह गया है। दोनों में बराबरी कैसे

हो सकती है ?

लवंग ने फिर कहा—'मैंने एक रोज़ राजेन से बात करते समय पूछा था—तुम ज़मींदार आदमी हो। ज़मींदारों के यहां ज़मींदार खानदानों की लड़कियां जाती हैं, जो मुंह पर घूंघट काढ़ती हैं और कहिए न कि एकदम अठारहवीं सदी की चिड़ियां होती हैं। उनमें ऐश करने की हविस बहुत होती है। हुकूमत का घमण्ड भी बहुत होता है। फिर ऐसी जगह तुम मुझे ले जाओगे तो बन सकेगी ? मैं तो पर्दा नहीं करूंगी। मैंने कालेज की शिक्षा पाई है। Equality—बराबरी दे सकोगे ? उसने कहा—तुम समझती हो; इंग्लैंड में मैंने सिर्फ किताबें ही पढ़ी हैं ? नहीं डार्लिंग, तुम बिल्कुल आज़ाद रहोगी। तुम डैडी को नहीं जानतीं। वह भी इंग्लैंड से लौटे हुए हैं। उनके ज़्यादातर दोस्त रिटायर्ड आई० सी० एस० और बड़े-बड़े अफसर ही हैं। लेकिन वे भारतीय हैं। भारत की सभ्यता पर उन्हें बड़ा गर्व है। तुम देखोगी कि उनकी आलमारियां ऐसी ही किताबों से भरी पड़ी हैं। अक्सर जो अंग्रेज़ लोग उनके यहां आया करते हैं वे इस वजह से उनकी बहुत तारीफ करते हैं। वे बहुत आगे बढ़े हुए हैं।'

लवंग चुप हो गई। वह जैसे किसी चिन्ता में पड़ गई। इन्दिरा भी चुप होकर कुछ सोचने लगी। उसे उसके भाग्य पर ईर्ष्या भी हुई। इसी समय किसी की पदध्वनि सुनाई दी। सिर उठाकर देखा, उदासी भगवती द्वार के बीच में खड़ा होकर नमस्ते कर रहा था। इन्दिरा ने कहा—'आइए ! मिस्टर भगवती ! आइए ! परसों आपको क्या हो गया था ?'

भगवती आकर एक कुर्सी पर बैठ गया। लवंग के मुख पर अपनी वही चिन्ता खेल रही थी। भगवती उसे देखकर दिल ही दिल सकपका रहा था। उसे न जाने क्यों यह लड़की कुछ भयानक-सी लगती थी। फिर भी कुछ समझ नहीं पाता, कह नहीं पाता। उसने अन्दाज़ से देखा कि यह वातावरण भारतीय इतिहास की अपनी एक विशेषता रह चुका है। टैगोर के बचपन में इन्हीं जैसे लोग हिन्दुस्तान को आगे ठेलकर ले गए थे, लेकिन आज इन्होंने अपने विद्रोहात्मक अंश को बिल्कुल छोड़ दिया था, या यों कहा जाए कि इससे अधिक विद्रोह इनका वर्ग कभी भी नहीं कर सकता था। वह इनकी सीमा के बाहर था।

इन्दिरा ने मुस्कराकर कहा—'आपने मेरी बात का कुछ जवाब नहीं दिया।'

'जी, मैं तो ठीक ही था। कुछ तबियत ज़रूर खराब थी।'

इन्दिरा सुनकर मुस्कराई। उसने कहा—'भगवती ! तुम तो चंदौसी के पास के रहनेवाले हो न ?'

'हां, क्यों ?'

'तो वहां कहां रहते हो ?'

'एक गांव है।'

'कौन-सा गांव है आखिर ? बताने की बात बताओ। यह तो तुम पहले भी बता चुके हो कि एक गांव में रहते हो।'

'खिरावटी !'

लवंग ने एकदम चौंककर पूछा—'क्या कहा ? खिरावटी ! आपने खिरावटी

ही कहा न ?'

'जी हां'—भगवती एकाएक सकपका गया।

'तब तो आप राजेन को जानते होंगे ?' लवंग ने पहली बार उसमें दिलचस्पी लेते हुए पूछा।

'जी, वह मेरे गांव के ज़मींदार हैं। उन्हें कौन नहीं जानता ? परन्तु मैं उनका दोस्त नहीं हूं।'

'वह कैसे हो सकते हैं आप !' लवंग ने उपेक्षा से कहा—'आखिर उन्हें अपने रुतबे का भी तो खयाल रखना पड़ता होगा।'

भगवती ने आहत होकर इन्दिरा की ओर देखा—इन्दिरा ने सिर झुका लिया। फिर बात बदलने के लिए, नज़र न मिलाते हुए कहा—'इनकी उन्हीं राजेन से शादी हो रही है। राजेन के पिता ने कहा था कि शादी खिरावटी में ही होगी, किन्तु लवंग के भैया तैयार नहीं हुए। अब अगले महीने जाड़ों में यहीं होना निश्चय हुआ है। राजेन के पिता ने पहले तो कहा था, वह भारतीय ढंग की लड़की पसन्द करेंगे, किन्तु फिर राजेन ने उन्हें मना लिया। उन्होंने कहा—मुझे कितने दिन जीना है। जो कुछ है वह तुम्हीं लोगों के लिए है। तुम जिसमें खुश रह सको, वही करो।'

लवंग भगवती को कुछ देर से घूर रही थी। वह देखती ही रही। कल्पना के किसी अज्ञात स्तर पर उसे लगा कि राजेन और भगवती की मुखाकृति में, बनावट में बहुत-कुछ साम्य था। किन्तु यह बात व्यर्थ थी। संसार में मनुष्यों का कुछ ठीक नहीं। बम्बई में ढूंढ़ने पर एक न एक आदमी ऐसा अवश्य ही मिल जाएगा जिसकी कामेश्वर से कुछ-कुछ शक्ल मिलती होगी।

भगवती ने सुना। सुनकर उपेक्षा दिखलाई। 'यही लवंग थी जिसके विवाह को उसने इतना सरल बना दिया था और आज यही इतना अभिमान दिखला रही है। अब यदि इसे वह सब कुछ बताए तो भी यह विश्वास नहीं करेगी। फिर भी हर हालत में यही तो कहना पड़ेगा कि राजेन उसपर बहुत मेहरबान है और यह वह अपने मुंह से किस प्रकार कह सकेगा ? भगवती यही सब सोचकर चुप रह गया। उसने इन्दिरा की ओर देखा। साफ-साफ लिखी थी एक अर्द्ध घृणा-सी उन होंठों पर, मानो वह कुछ ही देर में बिल्कुल विक्षिप्त होकर फूट पड़ेगी। किन्तु वह यह निश्चित नहीं कर सका कि उसका यह भाव था किसके प्रति ? क्या वह उसी के प्रति तो नहीं था ? क्या वह उसकी दयनीयता पर ही तो इतने गर्व की मादकता से कुछ ही क्षण में अपनी उच्छृङ्खलता का विस्फोट कर देना चाहती है ?'

भगवती अप्रसन्न-सा उठ खड़ा हुआ। यदि उसका बस चलता तो वह यह विवाह अब कभी भी नहीं होने देता। किन्तु बात हाथ से निकल चुकी थी।

जब वह अपने कमरे पर पहुंचा, होस्टल प्रायः सूना पड़ा था। रविवार होने के कारण लड़के अधिकांश में अपने छोटे-छोटे झुण्ड बनाकर चले गए थे। कोई सिनेमा, कोई किसी के यहां चाय पर, कोई प्रेम करने की राह पर···केवल वही अकेला रह गया था। बहुत-से लोग यही सोचते हैं कि भगवती के ठाठ हैं। देखो तो कैसा मूजी फांसा है। बिल्कुल नया बांगड़ू आया था, मगर साले की लड़कियों तक में पैठ है। भगवती

मुस्कराया ! उन्हें क्या मालूम कि पानी ऊपर ही ऊपर इतना गहरा दिखाई देता है, वास्तव में उसमें कोई गहराई नहीं, निरा छिछला है, बल्कि यह कहना भी गलत नहीं होगा कि वास्तव में जल की गन्दगी की भयावहता ही उसके गम्भीर लगने की एकमात्र छलना है। किन्तु इसके लिए भगवती क्या करे ? वह तो कहीं अधिक प्रसन्न होता यदि वह यहां अकेला पड़ा रहता। अपना काम करता। न किसी से लेना, न किसी को देना। खैर, देने का सवाल तो अब भी नहीं उठता। किन्तु उसे न देने की निर्लज्जता को न लेने का महत्त्व दिखाकर छिपाना पड़ता है । भगवती व्याकुल हो गया। छत की ओर देखा। किन्तु निराकार शून्य की ऊब से भी अधिक थी वह हड्डी की-सी भावहीना भयानक सफेदी, जिसपर आत्मा की कोई छाया क्षण-भर भी अटकना नहीं चाहती।

कमरे में निस्तब्धता छा रही है। कमरे के बाहर निस्तब्धता छा रही है। कॉलेज बिल्कुल सुनसान पड़ा है। भगवती अधिक देर तक भीतर नहीं टिक सका। कमरे में ताला डालकर वह फिर बाहर आ गया। आज न जाने क्यों पढ़ने में बिलकुल जी नहीं लगा था। अन्यथा नित्य तो वह ऐसे सन्नाटे की कामना किया करता था। शोरगुल से उसकी आत्मा घबराती थी जैसे वह उसमें अपने-आपको जीवित नहीं रख सकेगा, उसमें खो जाएगा या अच्छा हो—चकनाचूर हो जाएगा जैसे शीशा स्वच्छ-स्निग्ध होकर भी ठण्डी मार से चटक जाता है, टूट जाता है।

भगवती कॉलेज की बगल में शान्त खड़े हुए बड़े छायादार इमली के पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। कितनी नीरवता थी ! कभी-कभी एकान्त पक्षी का गूंजता स्वर कॉलेज के लाल पत्थरों से टकरा जाता था और उसकी गूंज फिर शून्य में झूलकर पेंगें मारने लगती थी। उसके बाद वे बरबादी के निशान, बियाबान की आबादी के सलौने खेल जो हरम से लेकर युद्धक्षेत्र तक अपनी सीमा रखते हैं, कबूतर फड़फड़ाकर छज्जों के नीचे छिप जाते थे। उनकी गुटुर-गूं, गुटुर-गूं तड़फड़ाती-सी ऊंचे-ऊंचे गुम्बदों पर लहराने लगती थी। यह सब कितना अच्छा है ! साम्राज्य अच्छा नहीं, साम्राज्य का खंडहर कहीं अच्छा है जिसमें राजकुमारी के सतीत्व और आडम्बर, धन और वैभव का अहंकार तो नहीं बचा, केवल बच रही है उसके कोमल सौन्दर्य की याद, वे प्रेम के तड़पते गीत और नूपुरों की झंकार पर हाहाकार करते पाषाण...

भगवती ने आकाश की ओर देखा। ऊपर सघन पत्ते थे, वे पत्ते जो इतने छोटे हैं कि उन पर कोई गर्व नहीं कर सकता, एक, दो, तीन, दस, बीस, सौ, हजार होकर उन्होंने आकाश का आच्छादन कर लिया है और वह मुलायम धूप उसे पार नहीं कर सकती। कितनी ही देर वह उस वृक्ष के नीचे खड़ा रहा, उसे याद नहीं, किन्तु एक स्वर ने उसका ध्यान भंग कर दिया। वीरेश्वर और समर उत्तेजित से कुछ बातें करते आ रहे थे। उन्होंने भगवती को अभी तक नहीं देखा था। उन्हें देखकर भगवती पेड़ के बड़े तने की आड़ में छिप गया और उनकी बातें सुनने लगा। उस समय उसे लगा जैसे पेड़ के पीछे चंचल हव्वा छिपकर सांप की बातें सुन रहा हो। किन्तु वे दोनों बातें करते आ रहे थे !

'तो तुम्हें बुलाया है शादी में ?'

'Of course ! मुझे नही बुलाएंगे तो बुलाएंगे ही किसे ?'—वीरेश्वर ने

कहा।

'यार, हमें तो नहीं बुलाया।' समर ने कहा और धीरे से हंस दिया। 'काश, हम भी हसीन होते।'

सचमुच उस बात में बड़ा दर्द था। वीरेश्वर ने कहा—'बुलाएंगे तुम्हें भी, न बुलाएंगे तो बुलाने को मजबूर किया जाएगा।'

'गोया वह कैसे?'

'गोया-तोया क्या? कामेश्वर से मैं कह दूंगा। इन्दिरा लायेगी कुछ निमंत्रण-पत्र। फिर चलेंगे। मैं तो बस एक रोज़ ही जाऊंगा, दावत के दिन। मुझे रईसों की सोहवत ज़्यादा पसन्द नहीं है!'

'खैर! वह तो इसलिए कि तुम कम्युनिस्ट हो। लेकिन इस बात का ख्याल ज़रूर रखना। वहां नहीं गए तो समझ लो कि समर ने तो अपनी ज़िन्दगी में कुछ नहीं किया।'

वे दोनों दूर निकल गए। भगवती के सामने एक नया पृष्ठ खुल गया। यदि उसे भी नहीं बुलाया, तो इन्दिरा क्या सोचेगी? उससे तो उसने कहा है कि लवंग का विवाह प्रायः उसी के कारण हो रहा है। वह यह क्यों समझने लगी कि बड़े आदमी वक्त पर भूल जाने के आदी होते हैं। उन्हें यह याद क्यों रहने लगी? उनकी दृष्टि में भगवती के सम्मान का क्या मूल्य है? और इन्दिरा समझेगी कि वह कुछ नहीं है। फिर विचार आया कि वास्तव में वह कुछ नहीं है। उसके मान-अपमान का प्रश्न व्यर्थ का प्रश्न है और उसे इस बारे में कोई मुगालता नहीं होना चाहिए। किन्तु मनुष्य की आत्मा यदि सत्य को ही स्वीकार करके सीमा में बंधी रह जाए, तो जीवन के संघर्ष का अन्त है। व्यावहारिक सत्य को परिवर्तनशील जानकर प्रत्येक व्यक्ति उसे अपनी सुविधानुसार कुछ बड़ा-छोटा कर देना चाहता है और यही भगवती के साथ भी हुआ।

यदि वह राजेन की ओर से कोशिश करके आता है तब वह उनकी प्रजा के रूप में आएगा। बराबरी का दर्जा मिलना असम्भव है और लीला तब क्या कहेगी? जानती वह क्या नहीं? किन्तु फिर भी···किन्तु फिर भी···

किस अव्यक्त भाव का अदूरदर्शी स्वार्थ है जो अब भी अपना गरल दंत चुभाकर धीरे-धीरे सब कुछ विषाक्त किए दे रहा है! क्यों भगवती का मन आज कुछ चाहता है, चाहता है कि कोई उसे प्यार कर ले, और अवाक् होकर भगवती ने देखा। वह कुछ नहीं देख सका। पैरों के नीचे सड़क जीभ लपलपाती-सी पड़ी थी जैसे वह उसे जीवित ही निगल जाना चाहती हो। वह चल पड़ा।

द्वार को दूर से देखकर वास्तविकता का भान हुआ। यह वह कहां जा रहा था? क्या लीला उससे मिल सकेगी? क्या लीला उसे घर में बुला ले जाएगी? इन्दिरा के पास कामेश्वर नामक कवच है, लीला के पास क्या है? कुछ नहीं।

चाल धीमी पड़ गई। वह हताश-सा धीरे-धीरे चलने लगा। शायद लीला बाहर लॉन पर ही हो। आवाज़ देकर उसे बुला ले और फिर एकान्त वृक्ष के नीचे उसके होंठों पर अपने गर्म होंठ रख दे और बार-बार कहे कि मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकती। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ सकती हूं। मैं तुम्हारे अतिरिक्त प्रत्येक से घृणा

करती हूं, क्योंकि वे मुझे तुम्हें स्वतन्त्रता से प्यार करने नहीं देते।

अंग्रेज़ी की प्रसिद्ध कहावत है : 'कल्पनाएं घोड़ा होतीं तो भिखारी अच्छे सवार होते।' भगवती को याद आते ही वह बरबस अपनी मूर्खता पर मुस्करा उठा। उसकी दृष्टि लॉन पर कुछ खोजने लगी। लीला बाहर ही अपने कुत्ते से खेल रही थी। कुत्ता बार-बार उसकी गोद से छूटकर भागता था और वह बार-बार उसे पकड़ लेती थी और हल्के हाथ से थपकी मारकर कहती थी—'शैतान ! नटखट !' और ज्यों ही वह भागता था—उसके पीछे-पीछे पतली आवाज़ में कहती हुई भागती थी, 'जिमी, जिमी, जिमी, जिमी !' भगवती को जाने क्यों एक कोफ्त-सी मालूम पड़ी। उसने मन ही मन कहा—'मूर्ख !' पर वह धीरे-धीरे चलता रहा। कुत्ते ने फिर ज़ोर लगाया और एक झटके में बाहर निकल गया। उसे स्त्री का आलिंगन बिल्कुल रुचिकर साबित नहीं हो रहा था। भगवती ने देखा। अचानक ही लीला की दृष्टि उठी और उसने देखा, सामने भगवती जा रहा था। हठात् चुप हो गई। जैसे झेंप गई हो। जैसे आज भगवती ने उसे बच्चों की तरह खेलते हुए देख लिया था और भगवती ने समझा कि अब वह आकर मुझसे बातें करेगी। मुझे घर में निमन्त्रित करेगी। फिर उस रात की बात याद आई। वह तो बन्धनों में पड़ी थी। वह कैसे मिल सकती थी ! सचमुच लीला देखती रह गई। वे बड़ी-बड़ी आंखें उसकी ओर एकटक देखती रहीं और तब तक देखती रहीं जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो गया। उन आंखों में कितनी उदासी थी, कितनी थकान थी ! यौवन का मोती बीच में झलमला रहा था। कितनी अथाह तृष्णा उनमें कांप रही थी, जैसे शिव की हथेली में हलाहल हिल रहा हो, युगान्तर की प्रतीक्षा का वह अवसाद उन बन्धनों में कैसी व्याकुल गन्ध की भांति निःश्वास छोड़ उठा था ! कैसी सीमाएं बांध रखी हैं—प्राण ! मैं तुम्हारे बिना कैसे रात बिताऊंगी ? क्या इस संसार में हम-तुम कभी एक-दूसरे के साथ गा-गाकर प्रेम नहीं कर सकेंगे ? जैसे अशोककुमार और देविकारानी करते हैं ?

भगवती को फिर हंसी आ गई। देविकारानी का पति और कोई व्यक्ति होने के कारण ही अशोककुमार को स्वतन्त्रता नहीं मिली। और फिर अभिनय तो कला है। कला ! एक खेल ! एक उन्माद की भावुक उड़ान, या डूबते हुए का अपनी पूरी शक्ति से अथाह लहरों पर हाथ-पैर पटकना। कौन जाने ! किन्तु अभिनय में जीवन की कितनी शून्य तृष्णा, कितने अभावों का प्रत्यक्षीकरण कि मनुष्य उसी छलना में डूबा रहे और जो कुछ शेष है उसपर न हाथ रखे, न उसे कभी कार्यरूप में परिणत करे, क्योंकि एक भी ईंट हटते ही सारा ढांचा लडखड़ाकर गिर जाने का भय है।

भगवती आगे निकल गया। मन में कहा—'इसी राह लौट चलूं।' किन्तु फिर संकोच बोल उठा—'अभी तो उधर से आए हो।'

'फिर क्या हुआ ?'

'उधर ही से लौटूंगा तो क्या समझेगी ?'

'समझेगी वही जो वह स्वयं समझना चाहती है।'

'किन्तु किसी और ने देखा तो क्या कहेगा ?'

'यही कि कहीं अपने काम से आया होगा।'

'या यह कि चक्कर लगा रहा है ?'

'अगर, अगर···यह है तो मैं उधर से जाना पसन्द नहीं करता ।'

'मैंने तो इसी से कहा । कॉलेज के इतने लड़के चक्कर लगाते हैं तो क्या उनसे कोई बोलता है ?'

'नहीं, मैं उनसे अलग हूं । लीला को यदि यह ज्ञात हो गया कि उसका प्रेमी भी एक साधारण व्यक्ति है, तो फिर बात ही क्या रही ?'

भगवती सीधा चलकर दाईं ओर मुड़ गया, पीछे जाने का साहस ही नहीं हुआ ।

जब वह होस्टल पहुंचा तो शाम हो गई थी । चारों ओर अंधेरा छा गया था । उस समय लड़कों का गुंजार धीरे-धीरे उठने लगा । लड़के खाना खा रहे थे । उनकी वह मस्ती देखकर भगवती को एक कुढ़न-सी हुई । रहमान और सुन्दरम् सामने से आ रहे थे । भगवती को देखकर रहमान ने कहा—'अरे भगवती ! तुम भी अजीव आदमी हो । देश की बातों में कुछ हलचल नहीं देखते ? लड़ाई के कारण हिन्दुस्तान में नई आफत पैदा हो गई है । चारों तरफ शोर मच रहा है । बात यह है कि जर्मनी और बर्तानिया का यह···'

भगवती घबरा गया । उसने कहा—'ठीक बात है ।'

रहमान ने बात काटकर पूछा—'क्या ठीक है ?'

'यही'—भगवती ने कहा—'कि जर्मनी और बर्तानिया का यह···'

सुन्दरम् ने बीच ही में कहा—'अच्छा, कल हमारी मीटिंग में आना ।' भगवती ने जान छुड़ाने को कहा—'अच्छा ।'

वे दोनों चले गए । कमरे का द्वार खोलकर भीतर घुसा ही था कि कामेश्वर भीतर घुस आया । उसकी आंखें लाल हो रही थीं । वह लड़खड़ा रहा था । उसके मुंह से बदबू आ रही थी । भगवती ने कहा—'कौन ? तुम !'

लेकिन कामेश्वर ने कोई उत्तर नहीं दिया । वह एक कदम बढ़कर उसके पलंग पर लेट गया और उसने आंखें बन्द कर लीं । वह नशे में धुत्त था । उसे शरण की खोज थी, जो उसे मिल गई थी । भगवती ने देखा और न जाने क्यों एक अनुकम्पा से उसका हृदय भर आया । उसने भीतर से दरवाज़ा बन्द कर लिया, ताकि कोई और न आए ।

26

उस बड़े बंगले में एक अद्भुत वैभव छा गया । राजेन्द्र के ठहरने के साथ ही साथ ज़मींदार सर वृन्दावनसिंह के आ जाने से चारों तरफ लहराती हुई संगीत-ध्वनि फूट पड़ी । इधर-उधर दूर-दूर तक खेमे गड़ गए थे । सामने ही लवंग का बंगला था । जगह-जगह रंग-बिरंगे कागज़ों की डोरियां बांधी गई थीं । द्वारों पर बड़े-बड़े केले के पेड़ बांधे गए । सामने के बड़े दरवाज़ों पर 'स्वागत' बिजली के लट्टुओं से बनाया गया । नफीरी और नौबत दिन-रात बजने लगीं । एक तूफान आ गया था । बस नौकर ही नौकर दिखाई

देते थे। सफेद वर्दियों में साफे और कमरबन्दों पर ज़री वांधे नौकर इधर से उधर घूमते थे। हर खेमे में अलग रेडियो बजता सुनाई देता था। सैकड़ों लोगों की बरात थी। लड़कीवालों ने भी कुछ कोर-कसर नहीं छोड़ी। टक्कर का मामला था। बच्चे अच्छे-अच्छे कपड़े पहने इधर-उधर उत्सुकता से खेला करते। वैभव की सबसे ठोस निशानी—भिखारियों की पांत दरवाज़ों पर सदा इकट्ठी रहती। रात को जब अन्धकार छा जाता तो उस समय बत्तियां जगमगाने लगतीं। पेड़ों पर बल्ब अनेक-अनेक रंगों में जलने लगते, चार बड़े-बड़े गोलों में से दूध की-सी सफेद रोशनी चांदनी की तरह सबको जगा देती और लाउडस्पीकर से गीतों की उमड़ सुनने के लिए सैकड़ों आदमियों की भीड़ राह चलते-चलते रुक जाती। ऐसा लगता था जैसे एक अच्छी-खासी नुमाइश आकर ठहर गई हो। बारात में ही चार 'सर' थे। तीन लड़केवालों के, एक लड़कीवालों की ओर से। काली-काली ऊनी अचकनें, चूड़ीदार पायजामे, सिर पर रेशमी साफे, या काली टोपी; दूसरा सेट-सूट, टिप-टाप। सब औरतों के बदन से, कपड़ों से निकली खुशबू से घर तो क्या, सड़क तक महक उठती थी। वे अधिकांश में गोरी थीं, उनका बदन गुद-गुदा था और उस अंगरेज़ियत में भारतीयता के दो-तीन लक्षण उनमें ये थे—अंग्रेज़ी और हिन्दी की खिचड़ी बोलना, हाथों में सोने के गहने पहनना, माथे पर लाल बिन्दी लगाना और साड़ी पहनना। समस्त समाज में दो उत्तरी वर्ग थे, एक प्राचीन भारतीय, दूसरा नवीन यूरोपीय। बाकी सब दक्षिण-वर्ग गुलामों का ढेर था।

ज़मींदार साहब अकेले नहीं आए थे। उनके साथ गांव के अनेक सभ्रांत व्यक्ति थे। मास्टर साहब, पण्डितजी, पेंशन-याफ्ता तहसीलदार, डाक्टर साहब, आदि-आदि तथा उनके खानदान के गांव के लोग। उनका अलग इन्तज़ाम था। इज़्ज़त में उनकी कोई कमी नहीं थी। इसके अतिरिक्त बाहर के प्रायः बड़े-बड़े कहे जानेवाले लोग आमन्त्रित थे।

ज़मींदार साहब स्थूलकाय थे। वे सफेद रेशमी कुर्ता और सफेद ढीला पाय-जामा पहनते थे। पैरों में काली मखमली जूतियां, किन्तु उनके भीतर सदैव ऊनी मोज़े रहते थे। ऊनी कपड़े एक नहीं, अनेक-अनेक पहने वह रॉकिंग चेयर पर बैठे झूला करते थे। उनके पास अंगीठी रहती थी और वह अपना सिगार कभी समाप्त नहीं होने देते थे। उनके बड़े मुख में वह मोटा सिगार छोटा मालूम देता था। किन्तु उनका रंग बुढ़ापा नहीं छीन सका था। वास्तव में वे बहुत बूढ़े नहीं थे। यह अकाल-वार्द्धक्य उन्हें गठिया ने लाकर उपहारस्वरूप दे दिया। गठिया के लिए उनका कोई दोष नहीं। जैसे उनके पिता ने उनके लिए यह लाखों की ज़मींदारी छोड़ी थी, वह भी दे दिए गए। ज़मींदारी स्वीकार करना, न करना इसके हाथ की बात थी, किन्तु इसमें उनका कुछ भी वश नहीं चलता और काफी रुपया खर्च करके भी वह अपना इलाज नहीं करवा सके। जो डाक्टर मिलता था, वह खाऊ होता था। ज़मींदार साहब अक्सर गांव के पण्डितजी कहा करते थे—'पण्डितजी ! दुनिया कहती है कि मथुरा के चौबे खाऊ होते हैं, मगर इन डाक्टरों के सामने तो वे कुछ भी नहीं ! क्या विचार है ?'

पण्डितजी का विचार कभी इधर-उधर नहीं भटका। फौरन जाकर उसी पहले विचार में मिल गया और दोनों खूब हंसते। ज़मींदार साहब की भारी आवाज़ गूंजती

रहती। इस समय उनके साथ शहर के दो डाक्टर थे। उनके खेमे पास ही गड़े हुए थे, घंटी बजते ही वे तुरन्त हाज़िर हो जाते थे।

बाहर मोटरों की पांति कभी खत्म नहीं होती। एक आती है, सट् करके खड़ी हो जाती है। उसी समय किसी का 'एक्सेलेरेटर' उठता है, चलने की 'भर्र-भर्र' आवाज़ आती है, हल्की-हल्की और गाड़ी चली जाती है। जाती है औरतों की सूरत की खुशबू-साड़ियों वाली मिठाइयां लिए, आती है तो नई मिठाइयां बिठा लाती है। शहर के ही बहुत-से सेठ और पुरानी चाल के लोग दिखाई पड़ते हैं। वे खाने के, पान-इलायची के सबसे ज़्यादा शौकीन होते हैं। बड़े ज़ोर से हंसते हैं। उनके साथ ऊपर से नीचे तक सोने से लदी औरतें बग्घियों और मोटरों से उतरती हैं। वे भारी पैर चौड़ाकर धीरे-धीरे चलती हैं। उनके साथ मखमल और रेशम के ज़रीदार कपड़े पहने बच्चे होते हैं, जिनमें कोई दालमोठ खाता है, कोई बिस्कुट ! उन औरतों के मुंह पर लम्बे-लम्बे घूंघट होते हैं। वे ज़ोर से नहीं बोलतीं। फुसफुसाकर बातें करती हैं। जब बातें करती हैं तब गंगास्नान, तीर्थयात्रा, मुंडन, शादी-ब्याह के अतिरिक्त एक बात और करती हैं जिनमें हज़ारों-लाखों रुपयों का ज़िक्र होता है। और वे कुछ नहीं जानतीं। उन्हें अंग्रेज़ी कतई नहीं आती और उन्हें पराये मर्दों से बात करने के बजाय नौकरों से लड़-लड़कर, लगातार बच्चे देने का बहुत शौक होता है। दूर से देखने पर लगता है कि लालाजी की तिजोरी छूट भागी है और छनछनाती कहर बरपाने को डोल रही है।

कहकहों से आसमान कभी नहीं गूंज पाता, क्योंकि मैदान खुला हुआ है और वहां कुर्सियों पर लोग आकर बैठते हैं, एक-दूसरे से मिलते हैं। पान खाते हैं, सिगरेट पीते हैं, ताश उड़ाते हैं। बरामदे के पीछे एक कमरा है, खूब बड़ा-सा, वहां एक-दो पेग भी चढ़ाते हैं। उसका अलग इन्तज़ाम है। उस कमरे में एक भी देसी शराब नहीं है। वधू के मामा के हाथ में उस कमरे की ज़िम्मेदारी के अतिरिक्त और कोई काम नहीं छोड़ा गया। ऐसी ज़िम्मेदारी की जगह घर का ही आदमी होना चाहिए। और किसी पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता।

लवंग के बंगले के एक बड़े कमरे में एक दूसरा ही प्रबन्ध है। कल शाम से शुरू हुआ-हुआ रात तक अंग्रेज़ी नाच होता रहा। उसमें बड़ा लुत्फ आया था। बीच में दो कुर्सियां पड़ी थीं। एक पर वर, दूसरी पर वधू विराजमान थे और उन्हें घेरकर युवक-युवती। युवक-युवती ने नृत्य किया था जैसे कभी प्राचीनकाल में अथवा पौराणिक काल में राधाकृष्ण ने राधाकृष्ण नृत्य किया था। वर-वधू का वेश देखने योग्य था। लवंग उस दिन देवयानी जैसी दीख रही थी और ऊनी शाल ओढ़े राजेन का गौर शरीर दमक उठा था। वास्तव में वह बहुत सुन्दर था उसके गालों पर यौवन उधम मचा रहा था। जब वह विलायत से लौटकर आया था तब गांव की लड़कियां उसे देखने को बहाना करके उसीके अहाते में बने कुएं पर पानी खींचने आती थीं और एक लड़की तो इतनी पागल हो गई थी कि उसने एक रोज़ एकान्त पाकर उच्छ्वसित-सी, नशीली आंखों से देखते हुए उसका हाथ पकड़ लिया था। राजेन सदा का हंसमुख था। उसने उसे निराश नहीं किया और शायद वह लड़की ज़िन्दगी-भर उस दिन को याद करेगी जब वह रेशम और मखमल के गद्दे-तकियों पर आराम से लेटी थी कि उठने को जी

नहीं चाहता था। उसने एक धृष्टता भी की थी। बिरादरी की ही थी। कहा था, 'कुंवर साब! मुझसे ब्याह कर लो।' तब राजेन ने उसके शरीर पर लेवेण्डर की पूरी शीशी उंडेल दी थी और मुस्करा उठा था।

नृत्य न कहकर 'डांस' कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा। वह ध्वनि ट्रा ला ला ला...से प्रारम्भ हुई और खूब चली। 'ऑरगेन' बजता रहा। बीच में एक बार लवंग ने भी गाया और जब यह हो ही रहा था, एक द्रिम-द्रिम का गम्भीर घोष सामने बने मंच पर गूंज उठा। चारों ओर की बत्तियां बुझ गईं। मंच पर हरा प्रकाश फैल गया। पल-भर में ही सातों रंगों का प्रकाश एक-दूसरे में मिल गया और तवले की हुंकार टकराकर अधर में लटक गई। उस समय किसी ने नेपथ्य में महाशिवा का आवाहन करते हुए उच्च स्वर में मन्त्र पढ़ा और दूसरे ही क्षण एक सुन्दरी का जाज्वल्यमान रूप थिरक उठा। वह दक्षिणी ढंग से एक गहरी नीली रेशमी साड़ी पहने थी, जिसके अंचल का आकार अद्भुत-सा फैल रहा था और उसके मुखर नूपुरों का चंचल स्वर चारों ओर भरने लगा। वह इन्दिरा थी। लोग विभोर होकर देखते रहे। वह सागर-नृत्य था। लहरें कुल-कुल करती हुई दूर से शोर मचाती हुई आती थीं और मंथर गति से कांपने लगती थीं, जैसे वायु ने थपेड़ा मार दिया हो और फिर तीर-सी फैल जाती थीं, उस समय उनका रुपहला अंचल फेनों की भांति विखरकर दोलायमान हो जाता था और फिर उस तूफान का, उस ज्वार का कारण दिखाई पड़ा। अभी तक जो प्रकाश नर्तकी के मुख पर नहीं पड़ा था, धीरे-धीरे उधर ही केन्द्रित होने लगा और शनैः-शनैः वह आत्मविसुध चन्द्र उठने लगा।

नृत्य समाप्त हो गया। भारत की प्राचीन गरिमा से सबके नयन चौंधिया गए। कहां है विदेशी नृत्य में यह भावुकता, यह महानता! थोड़ी देर तक उन्होंने, जो-जो वे भारत के विषय में जानते थे, उसपर अंग्रेज़ी में बहस की। लीला ने रवीन्द्रनाथ की एक कविता भी गाकर सुनाई और सब मंत्रमुग्ध-से वैसी बातें करने लगे जैसी प्रारम्भिक ब्रह्मसमाजी किया करते थे।

इस वैभव के उन्माद को देखकर भगवती मन ही मन विक्षुब्ध हो गया था। उसको किसी ओर से भी नहीं बुलाया गया था। किन्तु लीला ने इस बात को देखकर इन्दिरा को भगवती को निमन्त्रण-पत्र भेजने को मजबूर किया। भगवती ने उसे देखा और वह उसी सांझ इन्दिरा से मिलने घर गया। इन्दिरा उस समय अकेली थी।

भगवती ने कहा—'इन्दिरा, आज मैं तुमसे एक बात पूछने आया हूं।'

इन्दिरा ने उसकी ओर देखा और वह एक दृष्टि में ही सब कुछ समझ गई। उसने निस्संकोच बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे एक कुर्सी पर बिठाकर कहा—'पहले बैठ जाओ यहां। मैं तुम्हारे रौब में आनेवाली नहीं। मुझसे बात करते वक्त अगर ज़रा भी शान दिखाई तो याद रखना।'

भगवती सकपका गया। आते ही चोट हो गई। इन्दिरा बिना कुछ कहे-सुने भीतर चली गई और थोड़ी देर में लौट आई। उसके पीछे ही नौकर टी-ट्रे लेकर आया और उनके बीच में रख गया। इन्दिरा ने प्याले में चाय उंडेलकर प्याला उसकी ओर नमकीन की तश्तरी उसकी ओर बढ़ाकर कहा—'खाओ!'

भगवती ने हठीले बालक की भांति कहा— 'पहले मेरी बात सुन लो।'

इन्दिरा ने नज़र भरके देखा और एक बार सरलता से हंसी। कहा—'हठीले ! एक बार मुस्कराओ।'

भगवती पानी-पानी हो गया। क्या करेगा वह युगों का अभिमानी बादल जब शस्यश्यामला धरणी उसे सदा देखकर पुलक से कांप उठती है। उठाकर अपने-आप मुंह में समोसा रख लिया। मुंह फूल गया। इन्दिरा हंस पड़ी।

भगवती का क्रोध दूर हो गया। वह नम्रता से मुस्कराया।

इन्दिरा ने चाय पीते हुए कहा—'आज राधा क्या कहना चाहती है ? अच्छा होता, तुम लड़की होते और मैं एक लड़का होती। यह तो बीसवीं सदी से बिल्कुल उल्टा हो गया। तुम इतनी जल्दी रूठ क्यों जाते हो ?'

भगवती फिर गम्भीर हो गया। उसे यह अपना उपहास प्रतीत हुआ। उसने कहा—'इन्दिरा, तुमने मुझे लवंग के विवाह में क्यों बुलाया है ?'

'क्योंकि लवं मेरी दोस्त है और आप...' मुंह की ओर देखकर कुछ भांपने का प्रयत्न किया और वाक्य पूरा किया—'मेरे भैया के दोस्त हैं। यदि मुझे लवंग के विवाह में भैया को बुलाने का अधिकार था तो आपको बुलाने का क्यों नहीं ? क्या आप समझते हैं, मैं इतना भी अधिकार नहीं रखती ?'

भगवती पराजित हो गया। क्या-क्या कहने आया था और यहां आकर सब भूल गया। इन्दिरा चुप हो गई। भगवती ने कहा—'इन्दिरा, तुम सचमुच बहुत भोली हो, तभी इन बातों को नहीं समझ पातीं। तुम्हीं सोचो, क्या मेरा वहा जाना ठीक होगा ?'

'क्यों, ठीक क्यों न होगा ?' इन्दिरा ने बीच में ही पूछ लिया।

भगवती ने परेशान होकर इधर-उधर देखा, फिर कहा—'लवंग का स्वभाव तुम जानती हो। फिर राजेन मुझे भूल गया होगा ? तब तुम इतना स्नेह मानकर भी क्यों मेरा अपमान कराना चाहती हो ? मेरे पास तो उतने अच्छे-अच्छे कपड़े भी नहीं हैं, जो पहनकर सबके साथ बैठ सकूं। उनकी तरह बहाने के लिए मेरे पास पैसे भी नहीं हैं। फिर ?'

इन्दिरा उठ खड़ी हुई। उसकी कुर्सी के हत्थे पर बैठ गई। सोचते हुए कहा—'भगवती, तुम इन वैभव को देखकर चौंकते हो ? अरे, यह सब ढोल की पोल है।'

जिस समय इन्दिरा यह सब कह रही थी, भगवती उसे अपने ऊपर इस तरह झुका देखकर भीतर-ही-भीतर कांप रहा था। किन्तु वह यह निश्चय नहीं कर सका था कि यह उसकी वासना है या निस्संकोचता। झिझक ही कलुष का प्रारम्भ है। वह दृढ़ता से बैठा रहा।

इन्दिरा कहती रही—'तुम किसे रईस समझते हो ? अरे यह राजेन के पिता सर वृन्दावनसिंह जो सर का टाइटिल लिए फिरते हैं, कल कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के समय में इधर से उधर जूतियां चटकाते फिरते थे, कभी एक मन्त्री के घर, कभी दूसरे मन्त्री की खुशामद में। आज उनकी गठिया का इतना ज़ोर है और कल वह चक्कर लगाते फिरते थे। भगवती !'—उसने ज़ोर देकर कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'कुछ नहीं है।

चलती का नाम गाड़ी है। आज तुम इतने ज़ोरों से पढ़ रहे हो। कल तुम अगर आई० सी० एस० हो गए तो ? फिर तुम्हीं बताओ, इन्दिरा याद रहेगी ?'

भगवती कुछ नहीं बोला। वह इस मधुर कल्पना पर, इस लड़की की कोमलता पर, मुस्कराया। इन्दिरा कहती गई—'और जब तुम आई० सी० एस० हो जाओगे तब इन्दिरा तो गई चूल्हे में, आएगी कोई तुम्हारे भी लवंग-जैसी, और जब वह बनठन-कर तुम्हारे साथ मोटर में बैठकर चलेगी अब क्या होगा ? तब तुम क्यों पहचानोगे ?'

भगवती ने हंसकर कहा—'तुम क्या बातें कर रही हो ?' और उस हंसने में एक बार कुर्सी हिली और भगवती के विस्मय को उत्तेजित करती हुई इन्दिरा उसकी गोदी में गिरी-सी गिरी, गिरी रह गई, उठने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया।

उसी द्वार पर कोई आया-सा लगा और इससे पहले कि भगवती दृष्टि उठाकर देखता, वहां कोई भी न था। भगवती घबरा गया। किन्तु इन्दिरा बिल्कुल अविचलित थी। वह उसकी घबराहट देखकर एक बार मुस्कराई। कहा—'तुम घबराते हो ? मैं तो घबराने का कोई कारण नहीं समझती ! क्या तुम्हारे हृदय से कम्पन हुआ है ?'

भगवती ने कहा—'बिल्कुल नहीं।'

इन्दिरा उठकर खड़ी हो गई। कहा—'आज ऐसी बात हुई है जिसे सुनकर संसार एकमत और निष्पक्ष रूप से इसका निर्णय कभी भी नहीं कर सकेगा। कोई कहेगा, यह असम्भव है; कोई कहेगा, यह वासना है, जिसे हम दोनों ने अपने प्रबल ढोंग के पर्दे के पीछे बड़ी सरलता से छिपा लिया है। मैंने हिन्दी की एक किताब पढ़ी है। उसका नाम 'सुनीता' है। वह किसी जैनेन्द्रकुमार ने लिखी है। वह इतनी खराब किताब है कि उसमें हीरोइन हीरो को खाना खिलाने और दूध पिलाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करती और उसके बाद ही अपने वर्ग की बची-खुची ईमानदारी के कारण हिन्दी पढ़ना छोड़ दिया है। उसी में मैंने पढ़ा था कि सुनीता अपने कपड़े उतार देती है और हरिप्रसन्न भाग जाता है। लेकिन वे कायर थे। मैं समझती हूं, हम लोगों ने आज उससे भी ज़्यादा मूर्खता की है। मुझे आशा है, तुम मुझे इसके लिए क्षमा कर दोगे।'

भगवती ने उठकर कहा—'सब कुछ हुआ, लेकिन वह नहीं बताया जो मैं जानना चाहता था। मेरे प्रश्न का तुमने कोई उत्तर नहीं दिया।'

इन्दिरा ने कहा—'प्रश्न का उत्तर देना कठिन नहीं है। यदि तुम बुरा न मानो तो मैं एक काम कर सकती हूं। यदि तुम्हारी जेब में सौ रुपये हैं, तो तुम्हारी ज़माने में इज़्ज़त है और नहीं हैं, तो फिर कुछ भी नहीं। इसलिए अगर तुम मेरी बात मान जाओ, तो मैं तुम्हें इसी वक्त सौ रुपये दे सकती हूं और फिर तुम देखना, क्या रंग आते हैं।'

भगवती ने चीखकर कहा—'इन्दिरा !'

'तुम जानते हो,' इन्दिरा ने उसके कोट का कालर पकड़कर कहा—'मैं कभी तुम्हारा अपमान नहीं कर सकती। फिर तुम मुझे अपने से दूर क्यों समझते हो ? अरे यह जो तुममें शराफत बाकी है, रईसी दिखाने के लिए, अमीर बनने के लिए, तुम्हें इसीसे हाथ धोना पड़ेगा। जहां धन ही सब-कुछ है वहां तुम आत्म-सम्मान ढूंढ़ना चाहते हो ? सेठों को, बड़े-बड़े आदमियों को कौन नहीं जानता कि शराब पीते हैं, जुआ खेलते हैं, रंडीबाज़ी करते हैं, मगर उन्हें दुनिया शरीफ कहती है। बड़े-बड़े घूंघटों के पीछे होलियां

जलती हैं, किन्तु कोई टोकने का साहस करता है ? पार्टियों में मर्द और औरत संग-संग नाचते हैं, लेकिन क्या वही अन्त है ? नहीं। उसके पीछे एक घृणित पैशाचिक चित्र है। धन ! धन के कारण लूट और अत्याचार भी करते हैं और न्यायी बन जाते हैं, फिर तुम झिझकते हो ? यह दलदल ही होती तो इसे पार किया जा सकता था, किन्तु यह महासागर है, इसे हम-तुम कभी पार नहीं कर सकेंगे। लवंग तुम्हें नहीं बुलाती, राजेन तुम्हें नहीं बुलाता। कोई परवाह नहीं। कल आओ, Grand Feast है। उसके पहले हम लोग ब्रिज खेलेंगे। मेरे पार्टनर बन जाना और फिर देखते हैं कौन जीतता है। सौ रुपये यह लो, कल तुम्हें मैं आठ-नौ सौ का मालिक बना हुआ देख सकूंगी, तैयार हो ?'

भगवती ने मुस्कराकर कहा—'लेकिन इन्दिरा, यह तो जुआ हुआ न ? जुए का धन लेने को कह रही हो ?'

'जुए का धन !' इन्दिरा ने बढ़कर कहा—'जुए का धन किसके पास नहीं है। ईमानदारी की कमाई कौन खाता है ? तुम्हारे किसान-मज़दूर क्या ईमानदारी की कमाई खाते हैं ? उनकी ईमानदारी की कमाई रईसों की लूट बन जाती है और वे लोग सिर्फ अपनी मूर्खता की बचत खाते हैं, जिसे खाने में भी वे नहीं हिचकते। सरकार पाप का धन खाती है, इसीसे तो मनुष्य, प्रत्येक मनुष्य, हराम का माल खाता है। हमें ऐसी सरकार को मिटा देना है। और तुम ? तुम इसे जुए का धन समझते हो ? राजेन की आमदनी क्या है ? ज़रा मुझे बताओ। समाज में उसकी कितनी कद्र है, वह किसलिए ?'

इन्दिरा हांफ रही थी। भगवती ने स्वीकार नहीं किया। वह चुप खड़ा रहा। इन्दिरा ने कहा—'तुम पागल हो या कहो, तुममें आगे बढ़ने की शक्ति नहीं है। तुम अपनी शराफत को लिए फिरते हो ? कौन पूछता है इसे ? बाज़ार में तुम्हें इसके दो टके भी नहीं मिलेंगे।'

किन्तु भगवती दृढ़ खड़ा रहा। वह उन अंग्रेज़ों और यूरोपवालों में से नहीं बनना चाहता था जिन लोगों ने इंजील और ईसा मसीह के उपदेश पढ़-पढ़कर बंदूकों के ज़ोर से निहत्थे अमरीका के रेड इंडियनों को ज़िन्दा जलाकर अपना राज्य स्थापित किया था। वह उस वैभव से घृणा करता है जिसमें पाप ही शक्ति है। इन्दिरा ने उदासी से सिर हिलाकर कहा—'तब मैं तुम्हारे सम्मान के लिए कहती हूं कि तुम वहां कभी भी मत आना। जब तुम अकेलेपन से ऊब जाओ, तब भैया से भी वहां आकर न मिलना। अगर मिलना ही हो तो यहां आ जाना। समझे ?'

भगवती ने स्वीकार किया। उसने कहा—'इन्दिरा ! तुम इस अन्धकार में एक तारे के समान हो। यदि तुम नहीं होतीं तो शायद मेरा जहाज़ डूब गया होता। आज तुम्हारे पवित्र स्नेह ने मेरे हृदय को धो दिया है। मुझे यह विश्वास भी नहीं होता था कि ऐसी जगह भी कोई मनुष्य रह सकता है। लेकिन आज मुझे मालूम हुआ है कि वर्गों के इस भीषण गरल में भी एक अमृत की बूंद छिपी रह सकती है।'

'लेकिन' इन्दिरा ने बात काटकर कहा—'छिपी रहे ! छिपी रहने से लाभ ही क्या है, यदि वह उस गरल को अपनी शक्ति से जला नहीं सकती ! मैं उन सबकी इज़्ज़त करती हूं जो मानवता को आगे बढ़ाने के लिए अपनी जान देते हैं, किन्तु मैं मजबूर हूं, क्योंकि मैं कायर हूं।'

भगवती ने उसे विस्फारित नेत्रों से देखा। वह आनतवदनी कितनी विवश दिखाई दे रही थी। भगवती उसकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता। वह किसी दूसरे की सहायता क्या करेगा, जब अपनी ही सहायता नहीं कर सकता। उसे लगा, उसके पांवों के नीचे से धरती खिसक गई थी और वह निराधार खड़ा था। पता नहीं वह कब तक यों ही खड़ा रहा। जब उसका ध्यान टूटा उसने देखा, द्वार पर लीला खड़ी थी। उसने उसे नमस्ते की। उत्तर भी मिला। कितना वैभव था उसके शरीर पर। एकदम रेशम और फर का कीमती ओवरकोट, जूते भी मखमल के और गले में एक बड़ा हीरा, जिसकी चमक से उसके गले में चमक आ गई थी। अकेला हीरा—सोने के कांटों ने उसे तीन ओर से पकड़ लिया था और वह उसके गले में झूल रहा था। बाल कुछ भी चिकने नहीं, किन्तु न जाने क्यों जमे हुए थे, शायद क्रीम लगी थी, और कन्धों पर जाकर फैल जाते थे। कोट के अन्दर से वे गोरे-गोरे छोटे-छोटे मांसल हाथ ऐसे निकल आते थे, जैसे सफेद रंग का छोटा पिल्ला अपना अगला पंजा नाखूनों को भीतर करके निकाल देता है, और पाउडर के कारण वह महाश्वेता लग रही थी। उसकी आंखों में काजल था या नहीं, यह पता नहीं चला, क्योंकि कटाक्ष वह सदा से ही करती आ रही है, सो भी भगवती पर, और आज भी उसने वही किया। अपने यौवन की और ब्रिटिश विनिर्मित टायलेट की गन्ध से उसने समस्त वातावरण को उद्वेलित कर दिया था। भगवती की ओर व्यंग्य से देखकर कहा—'आप तो एकदम गायब हो गए। कहां तो आप कहते थे आप राजेन के गांव के ही रहनेवाले हैं और मौके पर देखा तो कतई नदारद ! ताज्जुब ! आपने भी बेरुखी की हद कर दी।'

भगवती बोले या न बोले, इन्दिरा ने पहले ही उत्तर दे दिया—'इन्हें आजकल बहुत काम है, उसीसे फुर्सत नहीं मिलती।'

लीला हंसी और उसने कहा—'वह तो मैं समझ सकती हूं।'

जो प्रहार प्रारम्भ हुआ था वह अब भी उतना ही शक्तिशाली है। उसमें कोई भी तो परिवर्तन नहीं हुआ। पहले उसमें दारिद्र्य पर बरबस हमला करने का प्रयत्न था, किन्तु अब की जो कुछ कहा था वह और भी घृणित था, क्योंकि उसकी भयानकता पूरे समाज का विश्राम-स्थल है।

लीला ने फिर भी क्षमा नहीं किया। वह लगातार चोटें करती रही। उसने कहा—'मैंने सुना था आपने लवंग के विवाह में बड़ी मदद की थी, किन्तु आपको वहां न देखकर कुछ विस्मय हुआ था। तो क्या वह अकारण ही था ? फिर भी देखिए। हम लोग तो किसी विषय में अधिक कुछ जान नहीं सकते। आप यहां काम में लगे हैं। मालूम देता है, आप इन्दिरा को पढ़ा रहे हैं।'

भगवती के मुंह पर हार की एक मुस्कराहट छा गई। अच्छा, तो गोया यह मान हो रहा है। किन्तु उसने एक बड़ा रूखा-सा जवाब दिया—'आदमी के अनेक काम एक-दूसरे से इतने गुंथे हुए होते हैं कि उनमें से एक या दो को बाकी से अलग करके देखने से अपनी तुच्छ बुद्धि को भले ही सन्तोष हो जाए, किन्तु उससे बात समझ में नहीं आ सकती।'

इन्दिरा ने सुना और ऐसे दिखाया जैसे उसने बिल्कुल नहीं सुना और उसे

बिल्कुल दिलचस्पी नहीं है, क्योंकि इसका उसे कोई अधिकार नहीं है। लीला ने इन्दिरा को एक बार तिरछी नज़र से देखा। उसके मुंह पर एक चमक थी, जिसे ऊष्मा की तपन भी कह सकते हैं। उसके गाल दमक रहे थे और उसके शरीर में एक अलसाहट थी जो तूफान के बाद छाती है। विद्रोह नहीं, घृणा से लीला का हृदय तिक्त हो गया। उस असावधानी में उसके मुंह से निकल गया—'भगवती, तुम अपना ब्याह कब करोगे?'

इन्दिरा ठठाकर हंस पड़ी। उसने चिल्लाकर कहा—'Excellent!'

और इससे पहले कि भगवती और लीला उसकी ओर विस्मय से मुड़कर देखें, वह हंसते-हंसते लोटपोट हो गई। उसने उस हंसी के बीच में ही गाना शुरू कर दिया :

'मेरे मुन्ने की आ गई सगाई...'

भगवती ने डांटकर कहा—'इन्दिरा! यह क्या हो रहा है?'

लीला गम्भीर हो गई। इन्दिरा उठ खड़ी हुई और मुस्कराकर बोली—'लीलाजी! लवंग के ब्याह में एक ड्रामा भी तो करना चाहिए। नल-दमयंती कैसा रहेगा?'

लीला ने कहा—'क्या बात कही है? आज तुम इतनी खुश क्यों हो? तुम्हारा तो ब्याह नहीं हो रहा। फिर क्या बात है?'

इन्दिरा गम्भीर हो गई। उसने लीला की ओर घूरकर कहा—'लीला!'

और कुछ नहीं कहा। एक घृणित सन्नाटा छा गया। उसी समय बगल के कमरे में कामेश्वर की आवाज़ सुनाई दी। वह कुछ चिल्ला-चिल्लाकर नौकर से कहता आ रहा था। उसके कमरे में घुसते ही सब-कुछ बदल गया। कामेश्वर ने एक उपेक्षा से सबको देखा और फिर कृत्रिम स्नेह से लीला को नमस्ते की और भगवती के हाथ पकड़कर कहा—'आओ! उस कमरे में बैठकर कुछ मर्दों की बातचीत करेंगे। यहां औरतों में मेरा दम घुटता है।'

भगवती हंसकर खड़ा हो गया और उसके मुंह पर एक मुक्तिचिह्न दिखाई दिया। जब वे दोनों चल दिए तो लीला ने एक बार नज़र भरकर भगवती को देखा। उस दृष्टि में इतनी शक्ति थी कि भगवती सहम गया। इन्दिरा ने यह सब चुपचाप देखा और मुड़कर भी देखा, देखा तो यही कि लीला आज कुछ निडर है। वह आंखों से ही भगवती को निगल लेना चाहती है। जब वे दोनों चले गए, लीला ने हल्के स्वर से कहा—'यह कितना बनता है? जाने क्या समझता है अपने आपको।'

इन्दिरा ने इस बात को टाल दिया और बदलकर कहा—'अभी असल में नादान है।'

'हां, कभी सोसायटी में उठा-बैठी नहीं है। अभी नया आया है, तभी ऐसा घबरा जाता है।'

इन्दिरा ने हंसकर कहा—'सोसायटी! यह भी ठीक है!'

घड़ी ने टन-टन सुनाई। लीला ने दृष्टि उठाकर कहा—'ओहो! बड़ी देर हो गई। अब तो मुझे जाना चाहिए। ड्रैस बदलकर मुझे फिर लवंग के यहां जाना है न! तुम कितनी देर में पहुंच जाओगी?'

'मुझे कितनी देर लगती है! तुम एक काम करोगी?'

'क्या ?'

'लौटते वक्त मुझे अपनी मोटर में ले चलना।'

'ओ० के० ज़रूर !' लीला उठ गई। इन्दिरा उसे मोटर तक पहुचाकर लौट आई और कुछ इधर-उधर के काम में लग गई। अभी आधा घण्टा ही बीता होगा कि बाहर मोटर के हॉर्न बजने का शब्द सुनाई दिया।

बाहर से पतली आवाज़ गूंजी—'इन्दिरा···'

भीतर से जवाब आया। वह भी पतली आवाज़ में—'कम···इंग (Coming—आती हूं)।'

अनन्तर सन्नाटा। बाहर अंधेरा छा गया था। इन्दिरा ने जल्दी से चलते-चलते गालों पर पाउडर फेरा और होंठों पर लाल रंग लगाकर जल्दी से जूतों में पैर डाले और हाथ पर ओवरकोट रखकर खट्-खट् करती हुई बाहर दौड़ गई।

लीला ने मोटर का दरवाज़ा खोलकर कहा—'बैठो।'

इन्दिरा बैठ गई। एक बार लीला ने उसकी ओर देखा और फिर दूसरी ओर की खिड़की से बाईं तरफ बाहर देखकर मानो अंधकार से पूछा—'तुम्हारे भैया गए ? उन्हें चलना हो तो बुलाओ।'

'अभी तो—' कहकर इन्दिरा दौड़कर फिर भीतर गई और अन्दर से भगवती और कामेश्वर को बातों में मशगूल लेकर लौट आई। लीला ने कहा—'बैठिए ! आप लोगों को पीछे बैठने में एतराज़ तो नहीं होगा ?'

कामेश्वर ने कहा—'जी शुक्रिया ! क्या यही आपकी मेहरबानी नहीं है कि आप मुझे वहां उतार देंगी ?'

लीला ने भगवती की ओर देखा। कहा कुछ नहीं। जब दरवाज़े बन्द हो गए तो भगवती ने हंसते हुए नमस्ते किया। इन्दिरा ने ज़ोर से कहा—'नमस्ते ! कल आओगे ?'

'फ़ुर्सत मिली तो,'—भगवती ने छोटा-सा उत्तर दिया।

इन्दिरा को बुरा नहीं लगा। उसने कहा—'ख्याल रखना।'

लीला ने मन ही मन कहा—'रखेंगे और खूब रखेंगे।' मुंह के व्यक्त स्वरूप में जान-बूझकर भाई-बहिन को सुनाने के लिए कहा—'फ़ुर्सत !' और हंस दी।

जब गाड़ी लवंग के यहां पहुंची तो गीतध्वनि से अम्बर गूंज रहा था। एक हंगामा-सा मच रहा था। बाहर शामियाने के नीचे दो 'सर' आ गए थे और पैंतरेबाज़ी हो रही थी। रिटायर्ड आई० सी० एस० रमेशचन्द्र दत्त के ऋग्वेद के अंग्रेज़ी अनुवाद पर बहस कर रहे थे। समाज-सुधारकों का एक और मत था कि शादी रजिस्ट्रेशन से होनी चाहिए। हिन्दुस्तान के आज़ाद होने की यही एक तरकीब है। कांग्रेस अगर उसे अपने कार्यक्रम में लिखा लेती तो कभी की आज़ादी मिल गई होती। देखिए न ! रूस के बोल्शेविकों ने यही किया और आज़ाद हो गए। एक जनाब की उस दूसरी कुर्सी पर बैठे बुज़ुर्ग से ईश्वर की सत्ता पर बहस हो रही थी। वह पाइथागोरस को बार-बार उद्धृत कर रहा था। उसका कहना था कि हिन्दुस्तान के पुराने लोग भी ढूंढ़ने पर ऐसे ज़रूर मिल जाएंगे जो यही बात कहते थे।

लेकिन जब दो और व्यक्ति वहां आ गए, दर्शन पर विवाद समाप्त हो गया

और वे ब्रिज खेलने लगे। उनमें बातें भी होती जाती थीं—'आपने क्या फर्माया ?'

'मैंने ? मैंने कहा—टू स्पेड्स।'

'अमां ! ज़रा कम बोला करो।'

'क्लब, डायमंड कुछ नहीं, सरपट स्पेड !'

'जी नहीं, मिस्टर खान ने मजबूर किया है…'

और फिर यह बहस होने लगी कि अंग्रेजों का तो जुआ भी एक ही तमीज़दार चीज़ है। और हमारे यहां क्या ? सट्टा !

ठठाकर हंसने की आवाज़ आई। डिप्टी कलक्टर मिस्टर आलेहुसैन का ठहाका उनके भारी शरीर को बिल्कुल डांवांडोल कर गया।

इसी समय लवंग के भाई ने आगे बढ़कर कहा—'वेलकम !'

जमींदार साहब आ रहे थे। उनके साथ दोनों डाक्टर, गांव का पूरा स्टाफ़ अपनी पूर्णतया देशी पोशाक में और इधर-उधर के सम्बन्धी, सभी मौजूद थे। उन्होंने हंसते हुए हाथ मिलाया, फिर लवंग के बड़े भाई से गले मिले। विवाह हो गया था; दावत का प्रारम्भ होनेवाला था। भंडई के लिए इन्तज़ाम पहले से हो गए थे। भीतर के कमरे में शराब की चुस्कियां उड़ रही थीं।

लीला एकदम भीतर चली गई। शाम के पांच बजे से शुरू करके भी लवंग आज अभी तक अपना श्रृंगार पूरा नहीं कर पाई थी। उस समय वह अपने हाथ में लेकर तय कर रही थी कि गोल इयरिंग पहने जाएं या तिकोने ? लीला जाकर सामने बैठ गई। उसका यह वैभव देखकर एक बार लीला भी भीतर-ही-भीतर दबक गई।

कुछ इधर-उधर की बातें होने के बाद लवंग ने पूछा—'तो बताओ न, कौन-सा पहनूं ?'

लीला ने कहा—'तुम्हारे चेहरे पर तिकोना ही अच्छा रहेगा। कटीली आंखें हैं, सभी चीज़ कटीली होनी चाहिए, नहीं तो काम कैसे चलेगा !'

लवंग हंस पड़ी। उसने वही पहन लिये। लीला ने ही बात छेड़ी, 'तुम्हारा ब्याह क्या हो रहा है, इसी दिन के साथ आजकल तो बहुतों के ब्याह हो रहे हैं।'

लवंग ने कहा—'और किसका ? मुझे तो नहीं मालूम।'—उसको चुप देखकर कहा—'बताओ न !'

लीला ने कहा—'न बाबा ! तुम मेरा नाम बता दोगी। किसीकी छिपी बातें कहकर अपने सिर पर बला क्यों लूं ?'

'मैं किससे कहूंगी ? बता न ! कोई मज़े की बात है क्या ?'

'बिल्कुल ऐसी, जिसका किसी को गुमान भी न हो।'

'ओह ! सुनूं तो !'

'आज मैंने एक बात देखी।' कान के पास मुंह ले जाकर धीरे से फुसफुसाकर कहा—'आज मैंने इन्दिरा को भगवती की गोद में बैठे देखा।'

लवंग को जैसे बिजली का तार छू गया। वह छिटककर दूर जा खड़ी हुई और घोर विस्मय से बोली—'सच !'

'तो मैं क्या झूठ कहती हूं !'—लीला ने कहा।

'लेकिन मुझे विश्वास नहीं होता।'

'बात ही ऐसी हैं। कहां राजा भोज कहां गंगवा तेली? मगर जो सच है वह सच है, उसे हम-तुम नहीं मिटा सकते और मुझे लगता है, काफी बढ़ी हुई हालत है। अजी, अब तो वह कामेश्वर के सामने उसे अकेले में बुलाती है और कामेश्वर कुछ नहीं कहता।'

'तो क्या तुम्हारा मतलब है कि कामेश्वर को सब मालूम है?'

'यह मैं कैसे कहूं?'

'शायद! आजकल उनकी हालत ठीक नहीं है। इसी से शायद इन्दिरा अभी से अपने लिए पहले ही से कुछ ठीक-ठाक कर लेना चाहती है।'

'मगर ठीक-ठाक तो ठीक आदमी से होता है। उसके पास तो कुछ भी नहीं है। वह किसके क्या काम आ सकेगा?'

लवंग ने हंसकर कहा—'इश्क तो अंधा होता है लीला! उसके लिए कोई क्या कर सकता है? रज़िया बेगम सुलताना थी, मगर गुलाम के प्रेम में फंस गई, और वह भी हब्शी के! भगवती शक्ल-सूरत का बुरा नहीं है। गेहुआं रंग है, अच्छा ही है। इन्दिरा से उसका जोड़ अच्छा रहेगा।'

लीला विक्षुब्ध हो गई। उसने कहा—'मैं नहीं जानती, वह इतना घमंड किस बात पर करता है!

'क्या? घमण्ड कैसा?'

'तुम्हारे विवाह में वह आया?'

लवंग हंसी। कहा—'उसे मैंने तो बुलाया ही नहीं, फिर वह कैसे आता?'

'लेकिन वह राजेन के गांव का है। उसका फर्ज़ था कि वह आता। फिर इन्दिरा को जो तुमने दोस्तों को बुलाने के लिए कार्ड दिए थे, उनमें भगवती का भी नाम उसने अपने हाथ से मेरे सामने लिखा था। फिर उसके न आने का कारण?'

लवंग कुछ सोच नहीं सकी। उसने कहा—'मैं नहीं जानती वह क्यों नहीं आया; किन्तु यदि उसे गर्व है, तो एक दिन मैं उसे चूर कर सकती हूं। वह मेरे गांव की रिआया है। उसकी-मेरी कोई बराबरी नहीं।'

लीला हंसी। उसने कहा—'तुम क्या कर सकती हो उसका?'

लवंग चुप ही रही। उसने चुप हो जाना ही सबसे अच्छा समझा। घूरकर एक बार दर्पण में अपना मुख देखा और अपने-आप बाईं भौं तनिक चढ़ गई। लीला ने यह नहीं देखा। उसने कहा—'एक बार कामेश्वर से पूछूं? मजा रहेगा।'

लवंग ने गम्भीरता से कहा—'व्यर्थ होगा। कामेश्वर इतनी शक्ति का आदमी नहीं कि यदि उनमें कोई बात वास्तव में हो भी तो उसे दाब सके। वह एक काम कर सकता है—बेकार का तूफान उठाना। उससे कुछ न कहना।'

और फिर सोचकर कहा—'बात ही ऐसी कौन-सी बहुत बड़ी है। नया जोश है, आप ही ठंडा हो जाएगा।'

लीला ने चेतकर कहा—'हिन्दू औरतें ऐसी नहीं होतीं, न होनी ही चाहिए।

'हिन्दू! क्यों, उनके दिल नहीं होता?' और ठठाकर हंसी।

बाहर पदचाप सुनाई दी। देखा, बहुत-सी औरतें भीतर घुस आईं और उन्होंने एक शोर मचा दिया। लवंग लजा गई। वह वधू थी। सर, नानकचन्द की बीवी जी ने अपने मोटे हाथों से उसकी सुडौल ठोड़ी छुई और बलैयां लीं और गीत शुरू हो गए। लखनऊवाली चन्दा कहीं से ढोल पीटने बैठ गई और वे कुछ सिनेमा के गाने गाने लगीं। बीच-बीच में स्त्रियां नाचने-गाने लगती थीं। उस समय वहां पुरुषों को जाने की मनाही थी।

इन्दिरा भीड़ में घुसकर खड़ी हो गई। जब उसके नाचने का वक्त आया तो उसने पैर में दर्द होने का बहाना करके मना कर दिया। लवंग को यह अच्छा नहीं लगा। लीला ने लवंग की ओर ताना मारती-सी रहस्यपूर्ण दृष्टि से एक बार देखा और फिर दृष्टि हटा ली।

इन्दिरा देर तक भीतर नहीं रही। वह बाहर लौट आई। लोग खाने-पीने में मशगूल थे। इन्दिरा कामेश्वर के पास जाकर बैठ गई। उसके पास दो कुर्सियां थीं और उन पर वीरेश्वर और समर जमे हुए थे। उन्होंने खाते-खाते एक बार बरायेनाम बतौर तकल्लुफ पूछा—'अरे क्यों, भगवती नहीं आया ?'

इन्दिरा ने खाते-खाते कहा—'पता नहीं, मैंने बुलाया तो था।'

'अच्छा !'—समर ने चौंककर स्वर उठाते हुए कहा—'बुलाया था, फिर भी नहीं आया ?'

कामेश्वर ने उसका पैर अपने पैर से दबाते हुए धीरे से कहा—'चुप-चुप ! बहुत नहीं।' इस बात से वह झेंप गया था कि समर यहां के निमंत्रण को बहुत बड़ी चीज़ समझता है और यह निमंत्रण-प्राप्ति उनकी औकात से बाहर थी। गोया वे सब ही कबाड़िये थे।

वीरेश्वर मुस्कराकर बोला—'फिर ?' जैसे बहुत हो चुका, अब नहीं।

समर ने बेवकूफी से टिमटिमाकर देखा और फिर खाने में मशगूल हो गया। इन चारों में से कोई भी कांटे-चम्मच से खाना पसन्द नहीं करता। इन्होंने उठाकर कांटे-चम्मच तश्तरियों की बगल में रख दिए थे और निःसंकोच हाथों से खा रहे थे। समर की तो इस विषय में भी अपनी एक थ्योरी थी। वह कहता था, 'दुनिया में सबसे पहले चीनी लोगों ने कांटे-चम्मच की-सी सींकों से खाना शुरू किया था। फिर यूरोप-वाले खाने लगे, क्योंकि वे गंदे रहते थे। उन्हें भी नहाने-धोने की कोई सहूलियत नहीं थी। अंग्रेज चोर हैं, इसी से वे समझते हैं, वे ही इसके आदिकर्ता हैं। शेक्सपियर के समय में लोग हाथ से खाते थे। उसके बाद लोग चम्मच-कांटे से खाने लगे। लेकिन शेक्सपियर की टक्कर का कोई पैदा नहीं हुआ। शेक्सपियर अब भी उनके लिए बहुत बड़ी चीज़ है। सोलहवीं सदी को वे प्राचीन कहते हैं। मेरी राय में उनको कतई टाल दिया जाए।

वीरेन्द्र चुप तो नहीं था, किन्तु समर की अपेक्षा उसमें अधिक कोफ्त थी। वह ऐसे मौकों पर आतंकवादी, अराजकतावादियों की-सी बातें किया करता था। किन्तु उसमें बातें करने की एक कला थी, वह कला भी नहीं रही। अब वह प्रायः अकेला पड़ गया है। हरी जब से ट्रेनिंग में गया है तब से उसने एक पत्र तक नहीं डाला। एक

बार किसीसे उसने कहा था—'वे सब बरबाद करनेवाले हैं। मैं उससे कोई वास्ता नहीं रखना चाहता।'

वीरेश्वर सिहर उठा, वोला, 'यह सब छोड़ो। यह वक्त उन चीज़ों का नहीं।' वह इधर-उधर देखने लगा। इसी समय एक अजीब बात हो गई। कॉमरेड रहमान ने अपने उसी फटेहाल में प्रवेश किया। उसने इधर-उधर देखा और इन्हें यहां देखकर निस्संकोच, 'हलो कॉमरेड' कहकर इनकी ओर आ गया। एक कुर्सी खींच ली और इनके पास बैठ गया। इसकी कोई परवाह नहीं की कि उधर कुर्सी कम हो जाएगी। नौकरों को लगी-लगाई तश्तरियां उधर से उठाकर इधर रखनी पड़ीं। उनसे रहमान ने कहा—'माफ करना भाई, ये लोग साथी हैं, इसी से यहां बैठ गया हूं।' सब लोगों ने मुंह पर रूमाल रखकर हंसी दाबी।

रहमान खाते हुए कहने लगा—'माफ करना दोस्तो! ज़रा देर हो गई। आज ही मुझे सुबह निमंत्रण-पत्र मिला। मैंने सोचा था चलूंगा, मगर फिर एक मीटिंग में फंस गया। देर हो गई। सोचा, अब ठीक नहीं होगा। लेकिन फिर सोचा, दोस्तों की ही तो बात है। चला आया। कोई हर्ज तो नहीं हुआ?'

'हर्ज? बल्कि कहिए लुत्फ रहा'—कामेश्वर ने कहा। रहमान हंसा। फिर पूछा—'सब आए होंगे न? कला, सुन्दरम्, विनोद···और सब आए होंगे?'

'सब तो नहीं,'—इन्दिरा ने कहा—'जिनको लवंग चाहती थी वे अवश्य आए हैं।'

'बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है।' रहमान ने कहा—'मुझे ज़रा देर हो गई, वर्ना मैं भी वक्त पर आ पहुंचता। भाई, वक्त की पाबन्दी ज़्यादातर वही कर पाता है जो अपने सुखों को सबके ऊपर रखता है। मैं पाबन्दी की इन चीज़ों में कोई खास ज़रूरत नहीं समझता, मगर यह भी ठीक नहीं है, ठीक तो सचमुच इसे नहीं कह सकते।'

वीरेश्वर ने रोककर पूछा—'तो किस मीटिंग में रह गए थे?'

रहमान ने उत्तर दिया—'वह कुछ नहीं। बात यह है कि गांधी जी ने किए-कराए को चौपट कर दिया। वह यह नहीं कहते हैं कि इस युद्ध में हमें कुछ लेना-देना नहीं है। वह इसी से कहते हैं कि मैं युद्ध में बाधा डालना नहीं चाहता। देखो! यह साम्राज्यवादी युद्ध है। हमें अपनी लड़ाई सामूहिक रूप से छेड़ देनी चाहिए। तभी अंग्रेज साम्राज्यवादी इस समय घुटने टेक देंगे।'

'ठीक बात है'—वीरेश्वर ने स्वीकार किया—'बिल्कुल दुरुस्त है।'

रहमान ने फिर कहा—'अब व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हो गए हैं। और बड़े-बड़े नेताओं की बात छोड़ो। इन छोटे लोगों को अराजनीतिक कारणों से जेल में रख देना चाहिए। अभी कल वह शहर के नागरजी हैं न? उन्होंने शहर से चार मील दूर पर सत्याग्रह किया। वहां कोई आदमी नहीं था। उन्हें पुलिस पकड़ने ही नहीं गई। आने-जाने का तांगा-खर्चा झेला और घर लौट आए। दोस्तों ने कहा—तुम्हें जो देश-सेवा करनी थी कर चुके। अब तुम फिर क्यों सत्याग्रह करना चाहते हो? नहीं माने। दूसरे दिन खुद थाने में जाकर कहा, तो पकड़े गए। बताओ, ऐसे सत्याग्रह से क्या

होगा ?'

इन्दिरा ने कहा—'आखिर गांधीजी ने भी तो कुछ सोचा ही होगा। वह क्या व्यर्थ ही इतने बड़े नेता मान लिए गए हैं ?'

रहमान ने कठोर उत्तर दिया—'इसका मेरे पास कुछ जवाब नहीं है। लेकिन गांधी विनोबा भावे के कारण प्रसिद्ध नहीं हैं, वह गांवों के अनजान 'रामखिलावन' और भोलाराम के कारण प्रसिद्ध हैं। व्यक्तिगत सत्याग्रह से हिन्दुस्तान स्वतंत्र नहीं होगा, बल्कि जनता राजनीति को गांधी की घरेलू वस्तु समझ बैठेगी।'

'ओ हो-हो' करके कामेश्वर ठठाकर हंसा। उसने चिल्लाकर कहा—'Thats a master piece !'

रहमान चौंक गया। उसने कहा—'मेरी बात का आज तुम्हें विश्वास नहीं होगा। किन्तु अभी बड़े-बड़े तूफान आने वाले हैं। यदि उनके लिए हम आज संगठन नहीं करते हैं तो कुछ भी नहीं हो सकेगा। कम से कम यह युद्ध हमें ऐसा ही नहीं छोड़ेगा जैसे हम दिखाई दे रहे हैं। बहुत मुमकिन है, हम बिलकुल नंगे हो जाएं। यह अत्याचारी साम्राज्यवाद…'

'शश !' इन्दिरा ने टोककर कहा—'क्या कर रहे हो ! ये बातें यहां कहने की हैं ? अगर यहां गिरफ्तार हो गए तो सारे रंग में भंग हो जाएगा।'

वीरेश्वर ने दाद देते हुए कहा—'अगर आज की रात चूक गई तो फिर कभी हिंदुस्तान आज़ाद न होगा। अगर यह बात है तो फिर कोई बात नहीं, मगर जो फिर से कल वही ढर्रा चलनेवाला है तो ज़रा कल ही बात कर लेना।'

कामेश्वर ने कहा—'जहां तक बातों का सवाल है, वह तो वक्त काटने के लिए होती हैं, कल भी हो सकती हैं।'

'बात यह है,'—फौरन छोर पकड़कर इन्दिरा ने कहा—'सरकार नहीं देखेगी कि सर के बेटे का ब्याह हो रहा है ?'

रहमान ने क्षमाप्रार्थना करते हुए कहा—'ओह ! मैं बिल्कुल भूल गया था। भूल गया था कि बुर्जुआ सोसायटी में बैठा हूं। तभी यह सब मुंह से निकल गया।'

'मगर यहां पुलिसवाले भी बैठे हैं।'—इन्दिरा ने कहा।

'लेकिन बहुत-से पुलिसवाले भी हिन्दुस्तान की अन्य जनता की तरह हमारी बातें सुनना चाहते हैं। वे जानते हैं और कतई पसन्द नहीं करते कि हमेशा ही टुकड़े तोड़नेवाले कुत्ते बने रहें।'

'या अल्लाह,'—कामेश्वर ने कहा, 'बकरे की मां ! ! आज तो ईद मन के रहेगी।'

वीरेश्वर बड़े ज़ोर से हंसा। कॉमरेड ने फिर टिमटिमाकर देखा।

जब दावत समाप्त हो गई और लोग उठ-उठकर जाने लगे तो इन्दिरा वीरेश्वर और कामेश्वर को रुकने के लिए कहकर लवंग की तलाश में निकली। कुछ देर दोनों बैठे रहे। फिर बीच में लगी भीड़ की ओर चल दिए। वहां बीच में राजेन और लवंग बैठे थे और चारों ओर भीड़ लगाकर कई लोग बैठे थे—लीला, समर और दो कोई अंग्रेज। सब लोग करीब सात-आठ थे। इन्होंने पहुंचते ही सुना कि बधाइयां दी जा रही

हैं, सौगातें दी जा रही हैं और अभी-अभी किसी साहब ने बड़े ज़ोर-शोर से अपनी गज़ल सुनाकर समाप्त की है।

'अब आप लोग कब जाएंगे ?' किसीने पूछा।

'हम कल चल देंगे यहां से।'

एक अंग्रेज़ ने कहा—'मिस्टर राजेन ! हम आपके गांव चलना चाहते हैं ! वह भी देखेंगे। सच, हमने कभी गांव पास से नहीं देखा।'

लीला ने आंखें मीचकर कहा—'Thats lovely ! गांव न हों तो हिन्दुस्तान में कवि न हों। पुराने कवि गांव में रहते थे, तभी इतनी अच्छी कविता करते थे। आज के कवि शहरों में रहते हैं, तभी उन्हें कोई नहीं पूछता। वर्ड्स्वर्थ की कविता देखिए—

Nature said a lovelier flower'···

क्या है उसके आगे ? अरे, मैं कितनी जल्दी भूल जाती हूं।'

राजेन के गांव के एक थोड़ी-बहुत अंग्रेज़ी जाननेवाले मगनराम, जिसने प्राइवेट बैठकर इण्टरमीडिएट पास कर लिया था, कहा—'सर ! वहां आपको शिकार मिल जाएगा !'

'शिकार !' अंग्रेज़ ने साथी से कहा—'विन्टर्टन ! शिकार ! ओह ! मिस्टर राजेन ! आप अपने पिता से कहिए, वे हमें शिकार के लिए ज़रूर ले जाएं।'

मगनराम इस बात से बहुत प्रसन्न हुआ। अभी वह एक तारीफ के पुल बांधते-बांधते नहीं थका था कि साहबों ने हाथों से ही पूरियां-कचौरियां खाईं। उन्होंने मना कर दिया था कि वे अंग्रेज़ी खाना नहीं खाएंगे। ऐसे-ऐसे लोग भी मौजूद हैं, अब उसे एक नया मौका मिल गया। इससे पहले कि राजेन जवाब दे, वह बोल उठा—'सर ! सरकार से न कहकर हमसे ही ऐसे छोटे-मोटे काम कहिए।'

बात तय हो गई। लवंग ने कहा—'मगनराम ! कल हम सब लोग मोटरों में चलेंगे।'

'जी सरकार !'—फिर सुधारकर कहा—'बहुत अच्छा बीवीजी !' वह बहू-रानी कहकर थोड़ी देर पहले ही एक डांट खा चुका था।

उठते समय लीला ने कहा—'कौन-कौन चलेगा ?'

लवंग ने कहा—'सब चलेंगे। कामेश्वर, समर, वीरेश्वर, तुम, इन्दिरा···'

'इन्दिरा !'—लीला ने विस्मय से पूछा।

'तुम देखे चलो। बोलने की कोई ज़रूरत नहीं।' लवंग एक अजीब तरह से मुस्कराई। लीला अवाक् देखती रही।

उसने हठात् पूछा—'वह चली चलेगी ?'

लवंग ने दृढ़ स्वर से उत्तर दिया—'मेरा नाम लवंग है। इसे भूल जाना ही सारी भूलों की जड़ है।'

'और भगवती ?'—लीला ने कांपते स्वर से पूछा।

इसका लवंग ने कोई उत्तर नहीं दिया। राजेन आ रहा था। वह उसे देखने में मग्न थी।

27

सर वृन्दावन को गांव लौटते ही फिर से गठिया उभर आई। डाक्टरों ने अपना काम ज़ोरों से शुरू कर दिया। उस बड़े कमरे में ही नहीं, जिसमें ज़मींदार साहब थे, बगल के कमरे में भी दवाओं की महक फैल गई थी। घर में दोनों समां एकसाथ छा गए। एक तरफ राजेन की पार्टी थी, दूसरी तरफ पिता। एक तरफ जशन, दूसरी तरफ गम से भरी सूरत। घुटनों में दर्द बहुत बढ़ गया। पानी पीने की देर थी कि मालूम होता था घुटनों में तीर की तरफ उतरकर जमा हो गया और फिर इतनी ठण्ड लगती, इतनी ठंड लगती कि कोई कुछ नहीं कर पाता। डाक्टर पसीने-पसीने हो जाते; उस ठण्ड में भी उन्हें एकदम गर्मी से पसीना आ जाता। किन्तु ज़मींदार को अपने पूर्वजों के शौर्य का गर्व था। दीवारों पर उनके पिता और पितामह के बड़े-बड़े तैलचित्र लटके थे। दो वर्षों से ज़मींदार साहब उनपर फूल चढ़वाते थे तथा संध्या के समय अगर-धूप की उलझी हुई लहरियां वातावरण में झूलने लगती थीं। किताबों के बड़े-बड़े शेलफ थे, जिनमें गिबन की इतिहास-पुस्तकें, महारानी विक्टोरिया का जीवन-चरित्र और पुरानी एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका आदि रखे रहते थे। कमरे के फर्शों पर कीमती गलीचे बिछे रहते थे। रेशम के बहुमूल्य पर्दे झूलते रहते थे। बड़े हॉल की मीनाकारी से भरी छत से बड़े-बड़े झाड़-फानूस लटके रहते थे। रात को जब उनमें बत्तियां जल जाती थीं तब कमरे के द्वारों से जगह-जगह लगे बड़े-बड़े शीशों में उनका प्रतिबिम्ब उज्ज्वल-सा फैल जाता था। ज़मींदार साहब को अपनी भारतीयता पर गर्व था। वह आज से दस वर्ष पहले यहां आर्यसमाज के भजनीक और प्रचारकों को पाला करते थे। उनकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई थी। राजेन से उन्हें सन्तोष था। वह जानते थे कि बड़े आदमियों के लड़के सदा अच्छे नहीं निकलते। किन्तु राजेन ठीक उनके पैरों पर चल रहा था, इसका उन्हें अभिमान था। उन्हें पूर्ण आशा थी कि वह बड़ा होकर उनकी ही भांति प्रसिद्ध हो जाएगा। उनकी ज़मींदारी अंग्रेज़ों की भेंट नहीं है। उससे भी पहले उनके पास ज़मीन थी और वही अब इतनी बढ़ गई है।

उस बड़े घर में एक ही आराम नहीं था। ज़माने की सबसे बड़ी मांग वहां अप्राप्य थी—बिजली गर्मियों में पंखे खींचे जाते थे। बरसात में निवास-स्थान बदल जाता था। वे बगीचे की छोटी कोठी में चले जाते थे। उनका ध्येय शान्ति से जीवन व्यतीत करना था।

राजेन की पार्टी खूब मस्त हो रही थी। वीरेश्वर, समर, कामेश्वर और इन्दिरा को लवंग बड़ी सरलता से घेर लाई थी। साथ ही वे दोनों अंग्रेज़ थे। लीला अपने आप ही आ गई थी। राजेन के हंसमुख स्वभाव से सब लोग प्रसन्न बने रहते थे। उसके कारण कोई कभी तनिक भी नहीं ऊबता था। सब लोगों का इन्तज़ाम इतना अच्छा हुआ था कि सब उनके आतिथ्य के आगे कायल हो गए थे। नौकरों ने ऐसा कभी नहीं किया कि उन्होंने एक भी बात टाली हो। बाहर गुरखे खड़े रहते थे। हर घण्टे के बाद गज़र बजता था। ज़मींदार साहब की कृपा से तो वे लोग पहले ही अभिभूत हो चुके थे।

दूसरे दिन शाम को लीला ने लवंग के कमरे में प्रवेश किया। राजेन सो रहा

था। लीला ने बैठते हुए कहा—'क्या पढ़ रही हो ?'

'उमर खय्याम की रुबाइयात। फिट्जजिरेल्ड ने Wonderful translation किया है।'

'बहुत खूब ! मगर अब शिकार को हम लोग कब चलेंगे ? कॉलेज भी तो लौटना है।'

'नहीं, अब मैं नहीं पढ़ूंगी।'

'तो क्या हम लोग भी पढ़ना छोड़ दें ?'

'ऐसा क्यों ?'

'तुम तो यहां लाकर हमें बिल्कुल भूल ही गई हो।'

'किसने कहा तुमसे ?'—लवंग ने विस्मय से पूछा—'कोई बात हुई है ?'

लीला हंसी। कहा—'नहीं, बात तो कोई नहीं हुई। मगर सब लोग जाना चाहते हैं।'

'एक बात है लीला ! एक तो शादी की थकान, दूसरे गांववालों की रीति-रस्म का भी ख्याल रखना ही पड़ता है। तुम्हारे लिए तो लवंग की शादी हुई है, मगर गांव-वालों के तो राजा के बेटे की बहू आई है। यह तो हिन्दुस्तान है, इसे तो तुम मना नहीं कर सकतीं ? भेंट भी लेनी होती है, मुंह भी दिखलाना पड़ता ही है। सभी काम होते हैं और फिर मैंने इतना सब होते हुए भी देर नहीं की। शिकारी तो काम पर लग गए हैं। अब उनके आकर सूचना देने भर की देर है, लीला !' उसने स्वर बदलकर कहा—'तुम यकीन भी नहीं कर सकतीं। कल सचमुच मुझे पहली बार ज़िन्दगी में लाज लगी। मुझे जब घूंघट काढ़कर बिठाया गया तब तुम समझ भी नहीं सकतीं, कितना अजीब-सा लगता रहा।'

'वह औरत कौन थी ?'

'वह ?'—लवंग ने मुस्कराकर कहा—'वह भगवती की मां थी।'

'भगवती की मां ?'—लीला ने विस्मय से कहा—'वह तो इतनी बड़ी नहीं मालूम देती थी। अभी तक इतनी सुन्दर है !'

'गरीब औरत है। मेहनत करती है, चक्की पीसती है। हम लोगों की तरह हरामखोरी नहीं करती।'

'तुमसे यह सब किसने कहा ?'

'वह स्वयं मुझसे कहती थी कि बहूरानी ! तुम्हारे आने से घर भर गया है। बहुत दिनों से राजेन भैया के पिता की हवेली सूनी हो गई थी। आज घर की लक्ष्मी फिर लौट आई है।'

'कौन जात है ?'

'कायस्थ है।'

लीला जाने क्यों सिहर उठी। वह भी तो कायस्थ है।

'पिताजी ने घर में कोई स्त्री न होने के कारण उस मौके पर उसे बुला भेजा था। बेचारी बड़ी खुशी-खुशी आ गई। पण्डितजी कहते थे कि और कोई औरत आती तो घर का सम्मान नहीं बचा पाती। पैसे पर तो उसका कोई ध्यान ही नहीं है।'

लीला कुछ चौंक गई। उसने कहा—'तो तुम्हें यहां एक अच्छी साथिन मिल गई। तुम उसके दिन फेर सकती हो। उसे अपने पास क्यों नहीं रख लेतीं?'

'मैंने कल ही पिताजी से कहा था। उन्होंने कहा कि वह बड़ी स्वाभिमानवाली स्त्री है। नौकरी नहीं करेगी। और वह उसके बाद चुप हो गए। कुछ रुककर उन्होंने कहा—वह सदा ही से ऐसी मेहनत करके खाती-कमाती रही है। कभी उसने सिर नहीं झुकाया। लेकिन सिर्फ अपने बेटे के लिए उसने मुझसे हर महीने रुपया लिया है और साथ ही कहा है कि अगर शर्मदार होगा तो पढ़-लिखकर जब कमाने लगेगा तब पाई पाई चुका देगा।'

'हूं!' लीला को ऐसा लगा जैसे किसी ने मुंह पर तमाचा मार दिया हो। उसने बात बदलकर कहा—'अब जीजाजी तमाम काम संभालेंगे। क्यों न तुम एक मैनेजर रख लेतीं जो तुम्हारा सब काम कर दिया करे और महीने के महीने अपनी तनख्वाह ले लिया करे?'

'तुम्हारा मतलब?'—लवंग ने भौं चढ़ाकर पूछा।

'मैं तो उसी के भले के लिए कहती हूं, भगवती को रख लो।'

लीला को यह कहते हुए लगा जैसे उसने अपने स्वार्थ के लिए अपने अभिमान की घृणा के लिए किसी लहलहाते हुए खेत पर बिजली का प्रहार कर दिया हो। किन्तु उस उत्तेजना को घोर प्रयत्न करके पी गई।

लवंग ने सोचते हुए कहा—'मैं उससे कोफ्त करती हूं। उसे बुलाना नहीं चाहती। लेकिन एक बार इन्दिरा को याद हो जाएगा कि उसका प्रेमी मेरा नौकर रह चुका था। राजेन से कहकर मैं उसे कल ही बुलवा लूंगी।'

'तो क्या रात को ही मोटर भेजोगी?'

'रात तो अभी दूर है। मैं अभी भेज देती हूं। उनकी मां को भी बुलवाकर कहे देती हूं। चार सौ रुपये का खर्च है।'

लीला जब लौटकर अपने साथियों में पहुंची, मेज पर सोडा और व्हिस्की लिए वे सब बातें कर रहे थे। इस समाज में दो अंग्रेज़ों का आना एक विशेष रौनक की बात थी। विंटर्टन का दृढ़ विचार था कि जर्मनी इस युद्ध में हार जाएगा। यही सोचकर गांधी ने भी इस समय युद्ध में बाधा डालने से मना कर दिया है। इस आदमी में अंग्रेज होने की खराबी के अतिरिक्त और कोई खराबी नहीं थी। बस वह अड़ियल ज़रूर था। बात-बात पर भूल जाता था और उसकी बात को ज़रा-सी बात करके भुला दिया जा सकता था। सब बात तो मानने में उसे कोई हानि नहीं है, किन्तु अपने परिणाम से इधर-उधर डिग जाना उसके लिए असह्य है।

दूसरा सिट्वैल साम्यवादी है। फौज में भारत चला आया है। उसे अक्सर एक बात का जवाब देने में हिचक होती थी कि वह भारत आने के पहले क्या था। यहां वह शासक-वर्ग का था, अतः यहां उसे अपनी वह पुरानी हीनता स्वीकार करने में हिचकिचाहट होती थी। वह सदा झूठ बोल जाता था कि वह ऑक्सफोर्ड में अर्थशास्त्र का विद्यार्थी था, किन्तु जब वीरेश्वर ने उससे पूछा कि मार्क्स ने जो आडम स्मिथ से अपनी थ्योरी के लिए मदद ली, क्या आप लोग भी उसके बारे में वही सोचतेहैं जो बाद

में प्रोफेसर ड्यूरिंग ने व्यंग्य से प्रकट की है ? तो उसने कहा था—'हम ऐसी बातें कभी नहीं सोचते।' और इन्दिरा इस पर ठठाकर हंस पड़ी थी। सिट्वैल ने यही साचा था कि उसका मज़ाक क़माल का रहा था।

बातें सब अंग्रेज़ी में हो रही थीं। विटर्टन बता रहा था कि जब वह चीन में था तब उसने देखा था, चीन आपस में बराबर लड़ रहा था।

वीरेश्वर ने टोककर कहा—'लेकिन लड़ाई के बाद जापान की हार होने पर हांगकांग पर झगड़ा ज़रूर मचेगा।'

विटर्टन ने बीच में ही कहा—'लेकिन हांगकांग हमारा है, उसे वह हमसे कैसे ले सकता है।' बात पलटकर भारत पर चल पड़ी। विटर्टन ने कामेश्वर से कहा—'गांवों में क्या अच्छा है, यह तो आप बता सकेंगे। दुनिया की जितनी उन्नति हुई है, उसमें से तो यहां कुछ भी नहीं है!'

कामेश्वर ने सिर हिलाकर कहा—'हमारे हिन्दुस्तान में भौतिक उन्नति को इतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना आध्यात्मिक उन्नति को।'

सिट्वैल ने बात काटकर पूछा—'तो क्या आपका मतलब यह है कि गांव में ज़्यादातर संत और महात्मा बसते हैं?'

समर ने चूहे के दांत दिखा दिए। वह इस उत्तर से प्रसन्न हुआ।

'नहीं'—कामेश्वर ने कहा—'इन गांवों में उन्नति होने की आवश्यकता है। और यह अवनति एक ही वजह से है।'

सिट्वैल—'वह क्या ?'

कामेश्वर—'यही कि देश में विदेशी सरकार है जो यहां से लूट-खसोटकर सब कुछ बाहर ले जाती है।'

विटर्टन ने एकदम गम्भीर होते हुए कहा—'यह विदेशी सरकार का दोष है ? नहीं, यह सब हिन्दुस्तानियों की आपस की फूट का परिणाम है। यूरोप के किसी भी देश में ग्रादमी गुलाम रहकर ज़िन्दा नहीं रह सकता।'

समर ने नकली ढंग से खांसकर कहा—'जर्मनी एक छोटा-सा मुल्क है। उसने फ्रांस को नहीं जीता। फ्रांस अब भी आज़ाद है। महासाम्राज्यवादी फ्रांस का कोई आदमी गुलाम नहीं है। सहारा रेगिस्तान के अधिपति को वास्तव में अब भी स्वतन्त्र ही कहना चाहिए।'

सबके सब ठठाकर हंस पड़े। विटर्टन विक्षुब्ध हो गया। वह ज़ोर से बोल उठा—'लेकिन इंग्लैंड ऐसा नहीं है। उसने पारसाल न्याय के लिए शस्त्र उठाए थे और इस साल जितनी बमबारी उस पर हुई है, दुनिया के किसी मुल्क पर नहीं हुई। सवाल दूसरा है। यदि हिन्दुस्तान को आज़ाद कर दिया जाए; तो क्या हिन्दुस्तानी अपने राज्य को संभाल सकेंगे ? इस गांव में ही लीजिए। आप दो-चार के अतिरिक्त आधुनिक सभ्यता के साथ कदम उठाकर चलने की योग्यता किसमें है ?'

समर ने तड़पकर कहा—'जिन ग्रपढ़ और गंवारों ने आज ब्रिटिश सरकार को इतनी मज़बूती से चलाया है, वे अपनी सरकार को कहीं ज़्यादा चला सकेंगे।'

सिट्वैल ने कहा—'भारत में अंग्रेज़ों के रहने से ज़मींदार अत्याचार नहीं कर

पाते, अछूत कुचले नहीं जाते।'

वीरेश्वर हंसा और उसकी हंसी के व्यंग्य से सिट्वैल विक्षुब्ध हो गया। उसने कहा—'माना कि इंग्लैंड इन दोषों से मुक्त नहीं है किन्तु क्या साम्यवाद इन दोषों को मिटा नहीं देगा?'

'तुम'—वीरेश्वर ने कहा—'पहले कहा करते थे, अमरीका भी आज़ादी के योग्य नहीं है। मगर उसने लड़कर अब तुम्हें दिखा दिया कि तुम उसकी सहायता के बिना जीवित नहीं रह सकते। बात करने के पहले तुम्हें अपने को मनुष्य मानकर चलने मात्र की आदत है। भारतीयों से तुम घृणा करते हो। तुम समझते हो कि तुम यहां के राजा-महाराजाओं के बराबर हो···लेकिन हिन्दुस्तान अब ज़्यादा गुलाम नहीं रहेगा। वह लड़ने के लिए तैयार है, हरएक जवान तैयार है।'

विंटर्टन हंसा। उसने कहा—'हरएक जवान वाकई तैयार है। तुम जो हमारे साथ शराब पी रहे हो, यह भी शायद तुम्हारे गांधी का सत्याग्रह है।'

और अंग्रेज़ के प्रति वीरेश्वर को इतनी घृणा हो गई कि अगर विंटर्टन अधिक बलिष्ठ न होता तो वह उसे वहीं पर मार बैठता। किन्तु एकाएक उसे ध्यान आया, यदि वह मार बैठा तो! अंग्रेज़ कभी हिन्दुस्तान में एक व्यक्ति नहीं है। रोमन साम्राज्य में रोमन सर्वेसर्वा होता था, ब्रिटिश साम्राज्य में अंग्रेज़ सर्वेसर्वा हैं। उसका अपराध हो या न हो, वह सदा ठीक है। अंग्रेज के खिलाफ हिन्दुस्तान में कभी कोई बात नहीं सुनी जाती। वीरेश्वर भविष्य के भय से क्रुद्ध हो उठा। किन्तु वह जानता था कि यह 'सर' का मुकुट भी इनके पैरों की धूल है। कल सर हरीसिंह गौड़ को होटल में नहीं घुसने दिया गया। बमबारी में वह मर जाता तो भी कोई बड़ी बात नहीं थी। काला आदमी और कुत्ता एक-सा माना जाता है।

इसी समय राजेन और लवंग ने प्रवेश किया। राजेन ने आगे बढ़कर कहा—'शिकारी लौट आए हैं। उन्होंने खबर दी है, शिकार दूर नहीं है, परसों हम रवाना होंगे। आप लोग तैयार हो जाएं। मिस इन्दिरा! आप तो चलेंगी?'

'ज़रूर!'—इन्दिरा ने गालों पर हाथ फेरकर कहा।

लवंग को देखकर वे सब खड़े हो गए। समर को कुछ अजीब-अजीब-सा लग रहा था, जैसे शीतोष्ण कटिबन्धों में अंग्रेज़ या यूरोपीय लोग अपनी Holiday (छुट्टी) मनाने आ गए हों। अब कल अफ्रीका के अनेक हब्शी दासों की तरह इनके पास अनेक हिन्दुस्तानी आ जाएंगे और इनको 'साहब' के अतिरिक्त सम्बोधित करने को उनके पास और कोई शब्द नहीं होगा और तब इनका यह गर्व और भी ठोस हो जाएगा कि ये मालिक हैं और वे इनके गुलाम।

समर को ऐसा लगा जैसे गुलामी से उनका दम घुट रहा था और उसके पास कोई चारा नहीं था। ये लोग बड़ी से बड़ी झूठ साफ बोल जाते हैं और अपने स्वार्थ की कसौटी पर हमारे अच्छे-बुरे को जांचते हैं। हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि ताकत सब इन्हीं के हाथ में है। इनकी भाषा भी ऐसी है कि गन्दी से गन्दी बात कोई भी विना हिचक के उसमें बोल जाता है। इनका कमीनापन इतने हद दर्जे का है कि उसे बताने में लाज आती है। इनके लिए वास्तव में गांधी से बढके उस्ताद और कोई नहीं हो

सकता। ये ईसा के अनुयायी बनते हैं, वह ईसा का पहला अनुयायी बनता है। ये हिन्दुस्तान को हिन्दुस्तान के भले के लिए गुलाम रखते हैं। वह अंग्रेज़ों के भले के लिए हिन्दुस्तान को आज़ाद कराने के लिए मरता है। लोहे को लोहा काटता है। जीत हमारी होगी। समर अपने विचारों में बह रहा था। उधर वे लोग बैठकर फिर पी रहे थे। लीला और इन्दिरा अभी तक चुप बैठी थीं। अब वे लवंग के साथ उठ आईं। उन्होंने तनिक भी नहीं छुई थी, अतः वे उन शराबियों से ऊब गई थीं। इस कमरे में आकर लवंग ने बैठते हुए कहा—'कल सुबह तक भगवती आ जाएगा। फिर परसों सभी शिकार पर चलेंगे।'

लवंग ने एक अंगड़ाई ली। इन्दिरा ने देखा, उसमें पुरुष-संसर्ग की छाया थी। वह अलसाई हुई थी। जैसे अब भी उसके मांसल शरीर में एक हल्की-हल्की सहलाहट मच रही थी। वह हाथों में चूड़े पहने हुई थी। वह कहती थी, बड़े घरानों का यह रिवाज मुझे बहुत पसन्द है। इन्दिरा देखती रही। जहां तक वह है, वह कितनी हर्षित है, कितनी तृप्त है। किन्तु उसकी तृप्ति कितनों का असन्तोष है, हाहाकार है, जो यह नहीं जानते कि उनके हाहाकार का केन्द्र वही है न कि आकाश में रहनेवाले परमात्मा के पास।

लवंग ने देखा, इन्दिरा तनिक भी उत्सुक नहीं थी। अन्त में उसने चिढ़ाने का निश्चय किया। कहा—'मैंने भगवती को बुलवा लिया है।'

इन्दिरा ने मन ही मन कहा—'वह नहीं आएगा। किन्तु कौन जाने! शायद आ जाए। उसकी मां तो यहीं कहीं है न?'

उसने कहा—'उसकी मां भी यहीं हैं न? एक रोज़ उससे मुलाकात नहीं करवा सकोगी क्या?'

'बुलवा दूंगी कल। उसके घर जाना तो शोभा नहीं देगा। आखिर उसकी हैसियत ही क्या है!' लवंग ने चिढ़ाने का तीव्र प्रयत्न किया। बात इन्दिरा के हृदय को आरपार छेद गई, किन्तु उसने धीरे से सिर हिलाकर पूछा—'कल बुला दोगी?'

'कल तो वह स्वयं भगवती को यहां नौकर कराने आएगी।'

'लवंग!'—इन्दिरा के मुख से चीख निकली, 'तुम? तुमने यह क्या किया?'

लवंग ने अपने भावों को प्रकट न करते हुए कहा, जैसे कोई बहुत साधारण बात थी—'राजेन को ज़रूरत थी?'

इन्दिरा ने लीला की ओर देखा। लीला बिल्कुल शान्त-निस्पन्द बैठी थीं। उसका मुख केतकी की तरह पीला पड़ गया था।

रात आ गई। इन्दिरा ने देखा, लीला की आंखें सूजी हुई थीं, जैसे वह अभी-अभी उस कमरे से रोकर आई हो, किन्तु उसने उससे कुछ भी नहीं कहा।

रात बड़ी बेचैनी से कटी। इन्दिरा पल-भर भी नहीं सो सकी।

भोर होते ही बाहर कम्पाउण्ड में एकाएक मोटर रुकने की आवाज़ आई। इन्दिरा बिना शाल ओढ़े ही बाहर ठण्ड में निकलकर नीचे झांक उठी। सच, भगवती उतरकर भीतरी फाटक की ओर आ रहा था।

28

मां का नाम भगवती के लिए कोई विशेषता नहीं रखता, क्योंकि उसके लिए 'मां' शब्द ही काफी है। यदि वे लोग धनी होते तो 'मां' शब्द ही सबके लिए काफ़ी होता, किन्तु अब ऐसा नहीं रहा। अतः आवश्यक हो गया कि उनका नाम प्रकट हो जाए। जमींदार साहब कभी उसे 'भगवती की मां' कहते हैं, कभी 'सुन्दर'।

सुन्दर खाट पर बैठी थी। भगवती सामने बैठा बोल रहा था- -'तुमने सुना मां!'

'क्या बेटा'—मां ने उदासीनता से पूछा।

भगवती एकाएक नहीं कह सका। मां से वह अधिक दिन दूर नहीं रहकर भी इतना पास नहीं रहा है। वह स्वयं इस परिवर्तन का कारण नहीं बता सकता। मां एक सादी सफेद धोती पहने है। उसके भाल पर एक शुभ ज्योति है, किन्तु भगवती उसे नहीं देख पाया।

'मां! तुम जानती हो! मुझे यहां क्यों बुलाया गया है?'

मां ने कहा —'क्यों नहीं जानती बेटा? बहुत दिनों से जो घर सूना पड़ा था, आज उसमें लक्ष्मी आई है। राजेन के पिता बहुत दिनों से इसी दिन के लिए जी रहे थे। मैं कभी आशा नहीं करती थी कि लवंग इतनी अच्छी लड़की निकलेगी। इतना वैभव है, इतना धन है, यदि उसके लिए एक स्त्री नहीं हो तो वह सब कुछ नहीं बचाया जा सकता। अकेला पुरुष आकाश के नीचे खड़ा रहता है और जब उसे स्त्री मिल जाती है तो सारे घमण्ड को छोड़कर वह फिर घर बसाने की सोचता है। इसीका यह फल है। प्रभु किसकी नहीं सुनते? तू नहीं जानता बेटा! मैंने तेरे लिए कैसे-कैसे कष्ट उठाए हैं। अहसान नहीं जताती तुझपर भगवती! क्योंकि तुझे अलग समझकर मैंने कभी तेरा कोई काम नहीं किया। तुझे अपने हृदय का टुकड़ा समझती रही हूं। अरे! तू मेरी कोख में नौ महीने रहा है। तू तो मेरा खून है, तू तू तो नहीं, तू तो मैं खुद ही हूं। बाल-बच्चे जिसके अपने नहीं हैं वह संसार में रहने के ही योग्य नहीं है।'

मां की उस सौम्य मूर्ति को देखकर भगवती निस्तब्ध-सा हो गया। यह मां की सरलता है। उसके मूल में उनका व्यक्ति-मात्र को अच्छा समझने की प्रवृत्ति है। कैसी भूल की है इन्होंने? लवंग को इतना अच्छा इन्होंने कैसे समझ लिया? उसने धीरे से कहा—'अम्मां! तू इस बात को नहीं समझ सकती।'

मां हंसी। पुत्र कह रहा है कि मां उसके भले की बात नहीं समझ सकती। उसने कहा—'भगवती! तू पहले तो समझदार था, अब तुझे क्या हो गया? चार सौ रुपया क्या कोई थोड़ी रकम है? घर-आई लक्ष्मी को कौन दुतकारता है बेटा?'

भगवती ने कहा —'मां! नौकरी अच्छी है, बुरी नहीं। मैं जानता हूं उससे हमारे दिन फिर जाएंगे। लेकिन क्या इसी गांव में उनका नमक खाना ठीक होगा?'

मां फिर हंसी। उसने स्नेह से उत्तर दिया—'बेटा! ये सब क्या कोई गैर हैं? अरे, इस गांव की प्रजा में से कौन है जो उनसे उऋण हो सके? इस गांव का बड़े से बड़ा घर उनके घर नौक रह चुका। तू अपनी उनसे बराबरी कर रहा है? यदि राजेन के

पिता न होते तो क्या तू पढ़ पाता ?'

भगवती भीतर ही भीतर कुढ़ गया। मां अपने उसी पुराने ढर्रे से बोल रही है। राजा-प्रजा, राजा-प्रजा। अरे, यह राजा का ज़माना नहीं, जनता का समय हैं। किन्तु यह सब व्यर्थ है। इससे कुछ भी नहीं होगा। वह नहीं जानती कि वह उनके साथ कॉलेज में बराबर रहकर पढ़ा है, जहां बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा कक्षा में एकसाथ जाकर बैठता है। लेकिन यहां वही नमक का चक्कर है। किन्तु फिर विचार आया, बात की सचाई वही है जो मां ने कही है। सचमुच में वह उनकी बराबरी में नहीं है।

आंख घुमाकर देखा। कच्ची भीतें, सिर पर छान और घर में वही पुरानी चक्की, जिसमें से पिस-पिसकर उसका जीवन, जो एक मांस के लौंदे में बद्ध था, आज एक विशाल चट्टान की तरह खड़ा हो गया है। चार सौ रुपये ? उसके एक घर होगा, उनमें समृद्धि होगी। इतना दुस्साहस किसलिए कि वह उनकी समता करने का प्रयत्न करे ? जहां है वहीं जाकर खड़ा रहें। मां ने अपने जीवन को जो उसके लिए गेहूं की तरह पीसा है, अपना सब-कुछ उसके लिए त्याग दिया है, किसलिए ? क्या भगवती का काम उसके बुढ़ापे को सरल बनाना नहीं है ? क्या वह सदा ही ऐसी ही कठोर तपस्या करती रहे और कभी भी उसके जीवन को शान्ति न मिले ?

भगवती कुछ निश्चित नहीं कर सका। उसने धीरे से कहा—'मां ! वहां मेरा अपमान होगा। लवंग मेरे साथ कॉलेज में पढ़ती है। वहां हम सब बराबर हैं, अतः उसने अपना अहंकार दिखाने के लिए ही मुझपर यह करुणा दिखाने का प्रयत्न किया है। क्या तुम समझती हो, सचमुच वह इतनी दयालु है ?'

मां सिहर उठी। उनके नयनों ने घूरकर देखा और एक अज्ञात भय से उनकी आत्मा कांप उठी। तो क्या उनका पुत्र भी उन्हीं का-सा अभिमानी है ? उसने कहा—'मैं कुछ नहीं जानती। तू चाहे तो कर, न चाहे तो न कर। किन्तु यदि वे लोग नाराज़ हो गए, तो इस गांव में हमारा कोई सहायक नहीं है। मैं तो केवल एक बात चाहती हूं, तेरा घर बने और मैं तेरी बहू का मुंह अपने जीते-जी एक बार देख लूं। मैं कभी नहीं चाहती कि तू मेरा ख्याल करके कभी अपने-आपको कष्ट दे। रोटी के लिए सिर झुकाना कितना दुःखदायी, कितनी अपमान-भरी विषैली छाया है, यही मैंने अपने इस जीवन में सीखा है। मैं और कुछ नहीं कहूंगी।'

भगवती को लगा जैसे डोरा गांठ आने के कारण खोला नहीं गया, वरन् हठात् किसी अज्ञात झटके से तोड़ दिया गया है।

जिस समय भगवती वहां पहुंचा, इन्दिरा अकेली कमरे में बैठी कुछ सोच रही थी। भगवती उसके सामने जाकर खड़ा हो गया। इन्दिरा ने आंखें उठाकर देखा। कुछ कहना चाहा, पर कहा नहीं। भगवती अभिभूत-सा खड़ा रहा। हृदय भीतर-ही-भीतर काठ की तरह जैसे जल रहा है। ऐसी यातना किस जीवन का नरक-चक्र है जो ममतामयी इन्दिरा के सामने इस वज्राहत रूप में खड़ा है। क्यों नहीं फट जाती यह धरती और वह उसमें समा जाता ! जैसे उसने उसी के प्रति घोर अपराध किया है जिसने स्नेह से ही नहीं, अपनी सामाजिक परिस्थिति का कुटिल जाल तोड़कर शक्ति से उसे अपना हाथ थमा देने का प्रयत्न किया था। भगवती ने देखा, अचानक ही इन्दिरा की

आंखों में पानी भर आया। इन्दिरा ने उससे छिपाने को अपना मुंह फेर लिया। भगवती कातर-सा खड़ा ही रहा। इन्दिरा ने वैसे ही कहा—'बैठ जाओ? बैठते क्यों नहीं?' और एकाएक वह बांध टूट गया। वह फूट-फूटकर रो उठी। भगवती ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—'क्या हुआ इन्दिरा? रो क्यों रही हो?' एकबारगी उसका उसका गला भर्रा गया और वह चुपचाप देखता रहा।

इन्दिरा ने बलपूर्वक अपने आंसू रोक लिए, किन्तु अपने मुख पर छाए विषाद को वह नहीं छिपा सकी। उसने अपनी ओर देखा ग्रौर देखती रही। इन्दिरा की उस दृष्टि में अथाह वेदना थी; जैसे बलि-पशु को देखकर किसी समय गौतम बुद्ध की रही होगी।

भगवती अपनी परिस्थिति को समझकर उसे छिपाना चाहता था और इंदिरा के पास प्रारम्भ करने को कोई शब्द नहीं थे। उसने धीरे से कहा—'तुम आ ही गए भगवती?'

भगवती का मन करता था कि फट जाए। जिस मर्यादा को वह लिए फिरता है वह साधनहीनों के लिए नहीं, उनके लिए नहीं; वह है उनकी जो साधनों की गठरी बनाकर उसके ऊपर बैठे रहते हैं। वे क्या जानें कि मनुष्य का अपमान, सबसे बड़ा अपमान भूखा रहना है, मां को चक्की पीसते देखकर अपने झूठे अभिमान को न छोड़कर काम न करके उसे पानी बिन मीन की तरह तड़पाना है। ये क्या जानें कि इन गरीब छातियों में भी ग्ररमानों की भट्टी धधकती है। इस समाज में बड़ा वही बनता है जो अपने मानवी अभिमान को ग्रपनी आत्म-प्रतारणा की ठोकरों से पहले ही चूर कर देता है। आदमी की शान ग्रपने से छोटों को दबाने में है। इसके लिए उसे अपने से ऊंचे, अपने से शक्तिशाली के सामने सर झुकाना आवश्यक है। सर वृन्दावन सिंह ब्रिटिश शासन के कुत्ते हैं; इन्दिरा का पूरा घर गुलाम है, फिर क्या वही एक है जिसे इतनी उपेक्षा से देखा जाएगा? चालीस करोड़ आदमी जानवरों की तरह अपमानित जीवन व्यतीत कर रहे हैं, अंग्रेज़ों की लातें खा रहे हैं, फिर क्या वही उस अपमान का बदला चुकाने के लिए पैदा हुआ है? ये लोग अपनी परिस्थितियों से बाहर नहीं निकलना चाहते। जो कुछ है उसका अपने भी सामंजस्य करके बड़े आदमी बनते हैं। कभी अनुभव तक नहीं करते कि मोतियों के रूप में नर-कंकाल इनके गलों में पड़े हैं। वे और कुछ नहीं, इतिहास युग-युग तक साथी बनकर खड़ा रहेगा, मानवता पुकार-पुकारकर चिल्ला-चिल्लाकर कहती रहेगी, शर्म-हया खोए हुए ऐसे पतित हैं जिनकी सत्ता में एक सड़ांध है, पाप ही जिनका आभूषण है, कभी भी जिनकी सभ्यता का ढोंग अब मानवता के पीछे नहीं खींच सकेगा। भगवती की आंखों में उसका विद्रोह धधक उठा। उसने उसके कन्धों पर हाथ ज़ोर से दबाकर कहा—'घृणा करती हो? कर सकती हो मुझसे घृणा? यदि चाहती हो तो तुम वैसा करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो, लेकिन जब मैं चांदी पर खड़ा हो जाऊंगा, मेरे पाप भी, मेरी कायर गुलामी भी ऐसी ही सभ्यता, संस्कृति ग्रौर साहित्य की ओट में छिप जाएगी जैसे तुम सब लोगों की छिपी हुई है।'

'भगवती!'—इन्दिरा ने रोकर कहा—'हम कितने पतित हैं? मैं यह जानना चाहती हूं कि क्या यह कमीनापन भी हमारे समाज की देन है?'—फिर सोचकर

कहा—'अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में अधिकार दे देने से और क्या होगा ? भगवती ! यह क्या हुआ ?'

किन्तु भगवती का उत्तर उसके कंठ में ही रह गया। सब लोग उसी समय कमरे में आ गए। वे लोग इन्दिरा को बुलाने आए थे। कल तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता ? आज ही शिकार के लिए क्यों न चला जाए। रात को जंगल में पहुंचकर शिकार करना चाहिए। विटर्टन की तब से यही ज़िद है कि खतरे जितने ज़्यादा मोल लिए जाएं वेहतर है। उनसे क्या डरना ? अंग्रेज़ के यह कहने की देर थी कि भारतीय रक्त हिलोरें मारने लगा और फौरन सब तयार हो गए। शिकारी दौड़ा दिए गए। लेकिन इन्दिरा कहां है आज ? किसी को सुबह से खाना खाने के समय के अतिरिक्त और दिखाई नहीं दी। क्या हो गया है उसे ? और अब यह दृश्य देखकर वे स्तम्भित रह गए। भगवती उसके कन्धों पर हाथ रखे कुछ कह रहा था और वह रो रही थी ?

लीला का हृदय भीतर ही भीतर धड़क उठा। यह क्या हुआ ? क्या सचमुच वे दोनों इतनी सीमा तक पहुंच चुके हैं ? तो क्या उसने यह अपराध किया है ? किन्तु सोचने-समझने का समय अब अधिक नहीं था।

कामेश्वर का मुंह स्याह पड़ गया था। समर वैसे भी शेर से डर रहा था। हठात् यह देखकर सबसे पहले उसी के मुंह से निकला—'अरे !'—वीरेश्वर ने उसके कुहनी मारी। वह चुप हो गया और उसने ऐसे देखा जैसे 'हाय री किस्मत !'

विटर्टन और सिट्वल की समझ में कुछ नहीं आया।

विटर्टन ने कहा—'हेलो ! क्या हुआ ?'

पर उन दोनों में आतुरता का कोई चिह्न दिखाई नहीं दिया। भगवती ने भयभीत रूप से अपना हाथ हटा लिया। इन्दिरा ने आंखें पोंछ लीं और निर्दोष नयनों से मुड़कर देखा और मुस्कराने का प्रयत्न किया। लीला जल उठी। लवंग ने गम्भीरता से कहा—'आप लोग तैयार हों, हम आ रहे हैं।'

कामेश्वर, समर, वीरेश्वर, विटर्टन, सिट्वैल चलने लगे। लीला ने लवंग की ओर देखा और वह भी चली गई। जब एकान्त हो गया लवंग ने भगवती का ओर बढ़कर कहा—'भगवती, तुमने मेरे मेहमानों का अपमान किया है। तुमने मेरा अपमान किया है। आज जो तुम कर रहे थे, क्या तुम उसके योग्य हो ? कामेश्वर ने क्या सोचा होगा ? यही न कि यह सब कुछ इन्दिरा को लवंग ने अपने प्रेमी से मिलाने के लिए इतनी साज़िश की थी ?'

भगवती ने दृढ़ता से कहा—'लेकिन मिसेज़ राजेन ! क्या आप यह बता सकती हैं कि मैं ऐसा क्या कर रहा था ?'

लवंग क्रोध से तिलमिला उठी। उसने गंभीरतर स्वर से कहा—'तुम यह भूल गए कि तुम एक बौने हो, तुमने आकाश के तारों को छूकर गंदा करने का प्रयत्न किया है। तुमने बंजर की लू बनकर ओसिस के फूलों को सुखा देने की कोशिश की। तुमने अपने मालिक के दोस्तों से नौकरों की तरह पेश न आकर बराबरी का दर्जा पाने की कोशिश की है। लवंग जानती है कि तुम कितने अभिमानी हो। किन्तु याद रखना कि

ऐसे अभिमान को मैं अपनी जूती की नोक के नीचे रखती हूं। समझे ? इन्दिरा अभी नादान है। तभी वह भले-बुरे का ज्ञान नहीं रखती। किन्तु तुम उसे फुसलाकर अपने षड्यंत्र में जकड़ना चाहते हो ? तुम्हें मैंने इसलिए नौकर रखा है कि तुम नौकरों की तरह रहो, सामने बैठने का दुस्साहस न करके, खड़े रहो। अगर यह नहीं होगा तो तुम ही नहीं, तुम्हारी मां भी, राह की भिखारिन बनकर दर-दर की ठोकरें खाएगी…'

भगवती चीख उठा—'लवंग ! इस भूल में मत रहना कि तुम्हीं सब-कुछ हो। यदि मैं चाहूं तो अभी तुम्हारी उठी हुई नाक को अपने जूते से कुचल सकता हूं। मुझे तुम क्या, तुम्हारी सात पीढ़ी में इतनी हैसियत नहीं कि नौकर रख सके। तुम लोग इतने कमीने हो कि अपने-आप अपने पापों को पुण्य कहकर उसे पूजा का नाम देते हो। मैं तुमसे घृणा करता हूं, क्योंकि तुम जो बड़े घरानों का ढांचा बनकर खड़ी हो, तुम्हारे यहां स्त्रियां नहीं होतीं, वेश्या होती हैं…'

चटाक् ! एक ध्वनि हुई। लवंग ने भगवती के गाल पर तड़ाक् से चांटा जड़ दिया। इन्दिरा ने झपटकर उसका हाथ पकड़ लिया। भगवती ने किटकिटाकर कहा—'अगर राजेन ने यही काम किया होता तो मैं आज उसका खून पी जाता, लेकिन तुम एक मादा हो, तुम पर हाथ उठाकर कीचड़ उछालने से बेहतर है, आक थू…'

और भगवती ने अजीब घृणा से थूक दिया।

इन्दिरा ने लवंग को और भी कसकर पकड़ते हुए रोते-रोते कहा—'यह तुमने क्या किया लवंग ?' इससे पहले कि इन्दिरा अपनी बात समाप्त करे, भगवती वेग से उस कमरे में चला गया। इसी समय नीचे से मोटर का हार्न सुनाई दिया। लवंग का ध्यान टूट गया। उसने कठोरता से कहा—'चलोगी ?'

इन्दिरा ने कहा—'नहीं।'

लवंग झटका देकर कमरे से बाहर चली गई। इन्दिरा के शब्द मुंह में ही रह गए।

मोटर में जाकर उसने देखा, राजेन ड्राइव पर बैठा था। विंटर्टन और सिट्वैल पीछे बैठे थे। साथ में वीरेश्वर था। आगे लीला बैठी थी। वह भी उसी की बगल में बैठ गई। पूछा—'कामेश्वर और समर कहां हैं ?'

राजेन ने कहा—'समर तो खुद हिरन का बच्चा है। उसे तो गोली खा जाने का डर था। लिहाज़ा नहीं आया।'

लीला ने कहा—'कामेश्वर की तबीयत ठीक नहीं रही। कुछ मन मिचला रहा था।' लवंग चुप हो गई। उसने एक दृष्टि में ही पहचान लिया कि राजेन को किसी विषय में भी कुछ मालूम नहीं था। दोनों गोरों को अपने काम से काम और वीरेश्वर है भी और नहीं भी। वह उनका मित्र है, उनका मेहमान।

मोटर चल पड़ी। गाव के कच्चे रास्ते पर धूल उड़ने लगी। राह पर मिलनेवाले गांववाले राम-राम सा'ब, और जुहार करते हुए मुड़-मुड़कर देखते और कच्चे घरों के बाहर चबूतरों पर बैठे लोग मोटर को देखकर सहसा उठ खड़े होते। विंटर्टन ने रूमाल को नाक पर रखते हुए कहा—'बड़ी धूल है।'

सिट्वैल ने कहा—'जब आजकल इतनी धूल है तो बरसात में क्या होता होगा ?

कितनी कीचड़ हो जाती होगी ?' उसने बिज्जू की तरह देखा।

राजेन ने मोटर चलाते हुए कहा—'कीचड़ का क्या पूछना ?'

वीरेश्वर ने कहा—'हिन्दुस्तान की ज़्यादातर आबादी गांवों में फैली हुई है। गांवों की सड़कें हर जगह प्रायः ऐसी ही हैं।'

सिट्वैल ने कहा—'मिस्टर राजेन ! आप तो इस गांव के ज़मींदार हैं ?'

लीला ने कहा—'जी ?'

'आप यहां की सड़कें क्यों नहीं बनवा देते ?'

राजेन चुप हो गया। सचमुच इसकी ओर उसका ध्यान कभी नहीं गया था। वीरेश्वर मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। ठीक कहा—'इन्हें क्या पड़ी ? दूसरों के माल से इनका घर भरता जाए। ये तो मोटर में चढ़ते हैं। इन्हें क्या पड़ी। पैदल चलनेवालों का क्या परिणाम होता है ? किन्तु उसने इस बात को पूरी तरह से स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सिट्वैल की ओर रुख करके कहा—'जब ब्रिटिश पूंजीवादी संसार के अन्य पूंजीवादियों के सामने अपना बाज़ार खोने लगेंगे तब Imperial preference के बूते पर हिन्दुस्तान के हर गांव तक अपना माल पहुंचाने का प्रयत्न करेंगे। उस समय भले ही ये सड़कें बन जाएं, ऐसे ही जैसे एक बार अपने फायदे के लिए रेलें बनाई थीं।'

सिट्वैल ने उत्तर दिया—'तो गोया मिस्टर राजेन यहां के ज़मींदार किसलिए हैं ?'

मन में आया कह दे कि ये भी अंग्रेज़ी सरकार के करामती खम्भे हैं, किन्तु उसी को मोटर में बैठकर कैसे कह देता ? अतः बदलकर कहा—'ये बातें एक व्यक्ति की नहीं। इन्हें तो सरकार ही सुलझा सकती है। बात यह है कि···'

विटर्टन चीख उठा—'वह देखो दूर, रोको राजेन ! रोको गाड़ी ज़रा। अच्छा रहा।'

राजेन ने गाड़ी रोक दी। सब उतर गए। विटर्टन ने कहा—'वह देखो, हिरनों का झुण्ड है। देखो मैं अभी मारता हूं।'

लीला को न जाने क्यों एक करुणा ने घेर लिया। निरीह हत्या। नहीं किन्तु ये जानवर आदमी की खेती खा डालते हैं। ये खूबसूरती में छिपे भी बड़े खतरनाक हैं। बेचारा किसान लू और पानी में दिन-रात काम करके खेत बढ़ाता है और ये बदमाश बिना मेहनत किए ऐश से उनकी खेती को चर जाते हैं। इनको ज़रूर मारना चाहिए। फिर विचार हट गया। इनकी खाल अच्छी होती है, आदमी की खाल किसी काम में नहीं आती। कितना विवश है यह आदमी ! उधर एक ज़ोर का धड़ाका हुआ। लीला चौंक गई। झुंड ने एक बार मुड़कर देखा और यह गया, वह गया। कुछ देर सबों ने प्रतीक्षा की कि एक-आध तो गिरेगा ही, मगर हिरन ठहरे, हिरन हो गए, जैसे अब वे भी टाटा स्टील वर्क्स के उगले हुए थे, गोली भी उन पर से फिसल गई। धुआं बन्दूक से निकलकर अब थोड़ा ऊपर उठ गया था, जैसे कोई टोपीदार बन्दूक चला दी हो।

'यह क्या है ?' वीरेश्वर ने टोककर पूछा—'यह इतना धुआं क्यों ?'

खोलकर देखा। शादी के लिए बन्दूकों में सिर्फ बारूद भर दी गई थी। विटर्टन

ने जोश में वही चला दी थी। लीला और लवंग ठठाकर हंस पड़ीं। वह लज्जित हो गया।

गाड़ी फिर चल दी। वीरेश्वर ने कहा—'हिरन भी बड़ा चालाक जानवर है ?' विंटर्टन ने कहा—'पहली बार करीब दस-ग्यारह साल पहले जब कोल्हापुर के दंगे का दमन करके मैं छुट्टी पर गया था तब पटियाला जाने का मौका आया। वहां हमने शिकार खेला था। प्रिंस था और दो राजघराने के और थे। बड़े मस्त थे। राजा हमारे साथ नहीं आ सका।' फिर वीरेश्वर से मुड़कर कहा—'गांधी तो शायद बन्दूक भी नहीं उठा सकता।'

वीरेश्वर ने कहा—'वह दूसरों की उठी बन्दूकें झुका सकता है। उसके सामने साम्राज्य की तोपों के गोले नहीं रहते, तुम्हारे बदमाश का हाथ रहता है।'

लीला ने तुनककर कहा—'मिस्टर विंटर्टन ! आपने हिन्दुस्तान के बारे में क्या पढ़ा है ?'

'रुडयार्ड किपलिंग।'

'तभी।' वीरेश्वर ने कहा।

'मैंने खुद देखा है।' विंटर्टन ने फिर कहा।

'बंगलों में राजा-महाराजा, ज़मींदार पुलिस, फौज और मोटर से, फर्स्ट क्लास रेल-यात्रा से ही न ?'

विंटर्टन ने कहा—'और किसी तरह से देखना मना है। हम मामूली आदमियों से मिल भी नहीं सकते। देसी लोग डरते हैं।'

'फ्रांसवाले अब जर्मनों से भी डरने लगे हैं।'

लवंग ने बात काटकर कहा—'मिस्टर विंटर्टन ! वह देखो ! शिकारी खड़े हैं। जंगल की हद शुरू हो गई।'

मोटर रुक गई। अभी उजाला बाकी था। सब लोग नीचे उतर गए। एकाएक विंटर्टन ने एक शिकारी से कहा—'कुछ है ?'

शिकारी ने अल्प शब्दों का उत्तर दिया—'रात को साहब, रात को।'

विंटर्टन ने कहा—'ज़रा घूम आना चाहता हूं। मुझे जंगल में एक शिकारी के साथ घूमना बहुत पसन्द है।'

बाकी लोग बैठ गए। विंटर्टन और एक शिकारी चले गए। बीच में खाना रखकर खाना शुरू कर दिया।

विंटर्टन ने कुछ दूर जाकर पेड़ों की आड़ के पीछे देखा, एक फाख्ता बैठी है।

'शश···' विंटर्टन ने दबे स्वर से कहा—'वह देखो ! मैं निशाना लगाता हूं। देखो उड़ न जाए।'

शिकारी ने बन्दूक तान ली। दोनों एकसाथ छूटीं धांय की गरज से पेड़ कांप उठे। फाख्ता नीचे आ गिरी। विंटर्टन ने क्रोध से कहा—'बेवकूफ ! तुमने गोली क्यों चलाई ?'

शिकारी ने डरकर उसके पैर पकड़ लिए। विंटर्टन ने उसे ठोकर से हटा दिया और लपककर फाख्ता उठा ली।

'एक ही गोली लगी थी। ज़रूर मेरी ही है,'—विटर्टन ने कहा—'काला आदमी शिकार क्या जाने?'

गर्व से लाकर फाख्ता उनके सामने पटक दी।

'शाबाश!' लीला ने कहा।

शिकारी ने कहा—'साहब ने उड़ती चिड़िया मार दी।'

'बहुत अच्छे!'—राजेन ने कहा और वह हंस दिया। विटर्टन ने झट से एक प्याला चाय का उठा लिया और एक सैंडविच अपनी कड़ी और खुरदरी उंगलियों में पकड़कर खाने लगा। उसके दांत अधिकांश अंग्रेज़ों की भांति पीले रंग के थे।

वीरेश्वर ने देखा कि यदि इन दोनों का रंग साफ न होता, तो ये दोनों बहुत बदसूरत मालूम देते। हिन्दुस्तानियों का रंग साफ नहीं होता, पर आकृति अच्छी होती है। अंग्रेज़ों का अंतर-बाहर सब ही एक सफेद झूठ है। अपनी इस विजय पर वीरेश्वर मन-ही-मन प्रसन्न हो उठा। इतिहास किसी का अभिमान बहुत दिन तक नहीं रहने देता। वह बड़े से बड़े को उखाड़कर फेंक देता है। करोड़ों में जो चेतना गरज रही है इसे वे लोग क्या दाबेंगे?

अंधेरा छाने लगा। खाना-पीना समाप्त हो गया। नौकरों के हैड ने उनके उठ जाने पर बाकी का काम जल्दी-जल्दी समाप्त किया। दूसरी मोटर में वह सब सामान लाद दिया गया।

मगनराम ने आकर कहा—'सरकार, चलिए, अब मचानों पर बैठिए।'

एक मचान पर राजेन, लवंग, विटर्टन और मगनराम एक शिकारी के साथ चढ़ गए, दूसरी ओर बाईं तरफ करीब बीस या पच्चीस गज के फासले पर एक और पेड़ पर बंधी मचान पर लीला, वीरेश्वर और सिट्वैल एक शिकारी के साथ तैयार हो गए।

चारों ओर अंधेरा छा गया था। कोई भैंसा या बकरा नहीं बांधा गया था। जंगल में एकाएक शोर मचने लगा। शिकारी लोग और गांववाले ढोल, ताशे, कनस्तर और अनेक चीज़ें बजाकर जगार करने लगे।

एकाएक दूर कहीं एक गुर्राहट सुनाई दी।

लवंग ने कहा—'इसकी आवाज़ कितनी डरावनी है! सचमुच यह जंगल का राजा है।'

सिट्वैल ने उधर अपनी मचान पर से कहा—'वक्त आ गया।'

वीरेश्वर ने सोचा, यह अफ्रीका की लड़ाई है। हिंदुस्तानी मैदान जीतते हैं, अंग्रेज़ों का नाम होता है। सारा जोखिम का काम गांववाले और शिकारी कर रहे हैं, दो फिटफिटाती गोलियां चलाकर ये लोग मशहूर हो जाएंगे।

लीला ने वीरेश्वर की बांह थाम ली। कहा—'मेरे पास कुछ नहीं है।' उसके स्वर में भय की छाया थी। कितनी भी घृणित हो, ज़िन्दगी फिर भी ज़िन्दगी है। जब वह ही नहीं, तो कुछ भी नहीं है।

वीरेश्वर ने मुस्कराकर उसके कान में फुसफुसाया—'शेर की क्या मजाल जो आप पर हाथ उठाए।'

और मुस्कराया। लीला ने धीरे से कान में फुसफुसाकर कहा—'शेर तुम्हारी तरह मज़ाकिया नहीं होता।'

जंगल में शोर बराबर बढ़ता गया। आसमान में धुंधला-सा चांद निकल आया था। पत्तियों के पीछे उसका पतला-दुबला क्षीण रूप दिखाई दे रहा था। अंधकार उसके कारण कुछ सूना-सूना-सा दिखाई दे रहा था। लवंग चौंक गई। पीछे के पेड़ पर कोई कठोरता से एक डरावनी हंसी हंसा।

'कौन है?' विटर्टन ने कहा—'कौन है? बदमाश, इधर आओ। वर्ना मैं तुमको जेल भिजवा दूंगा।'

उत्तर नहीं मिला।

विटर्टन के मुंह से अस्फुट ध्वनि निकल गई—'कांग्रेस…!'

किन्तु भारत-रक्षा-कानून के दावेदार की अंग्रेज़ी व्यर्थ हो गई। लवंग ने राजेन को झकझोरकर कहा—'बोलते क्यों नहीं? वह देखो न कौन है?'

राजेन ने उपेक्षा से कहा—'उल्लू है। कभी जंगल तुम लोगों ने देखा नहीं है?'

लवंग ने कहा—'उल्लू आदमियों की तरह हंसता है?'

विटर्टन हंसा। राजेन फिर अंधेरे की ओर घूरने लगा। विटर्टन ने कहा—'आप डर गईं मिसेज़ राजेन?'

लवंग ने कहा—'आप भी तो घबरा गए थे। आपने दमन किए थे, इतने शिकार किए थ, फिर भी!'

विटर्टन ने कहा—'मैं आपकी परीक्षा ले रहा था।'

लवंग क्षुब्ध हो गई। ये कैसे कमीने होते है। हिन्दुस्तान में तो इन्हें सिवाय झूठ, मक्कारी, दगाबाज़ी के और कुछ आता ही नहीं।

इसी समय शेर की दहाड़ सुनाई दी और चारों तरफ का शोर उसकी पास आती दहाड़ के साथ-साथ उसके निकट आने लगा। शिकारी ने कहा—'तैयार! साहब, बन्दूक उठाइए।'

राजेन और विटर्टन बन्दूक लेकर तैयार हो गए। लवंग के हाथ में पिस्तौल थी। मगनराम खाली हाथ और शिकारी के पास उसकी पुरानी राइफल थी। लवंग ने कहा—'मिस्टर विटर्टन! आपका हाथ कांप क्यों रहा है?'

विटर्टन ने मुड़कर कहा—'निशाना लगा रहा था।'

मगनराम ने कहा—'सर! शेर को तो आने दीजिए।'

दहाड़ के भयानक उन्माद से सारा जंगल थरथराकर कांप उठा।

29

रात के आठ बजे थे। चारों ओर सघन अन्धकार छा गया था। बाहर एक धुआं-सा फैल गया था। कमरे में रोशनी जल रही थी। उसमें से धुंधला प्रकाश निकल-निकलकर फैल रहा था। ज़मींदार सर वृन्दावनसिंह कुर्सी पर कंबल ओढ़े पड़े थे।

उस सन्नाटे में पण्डितजी ने धीरे से प्रवेश किया।

'राम-राम साव,' पण्डितजी ने अपने पोपले मुंह से कहा।

ज़मींदार साहब ने कहा—'कौन पण्डितजी ? आओ भैया !'

पण्डितजी आकर बगल में ज़मीन पर बैठ गए। उन्होंने धीरे से इधर-उधर देखा और कहा—'सरकार ! एक बात अरज करनी है।'

ज़मींदार साहब चौंके। कहा—'क्यों ? क्या हुआ ?'

पण्डितजी ने कान पकड़कर कहा—'सरकार, खता माफ हो।'

ज़मींदार साहब ने अधीरता से पूछा—'क्या हुआ ! कहते क्यों नहीं ?'

पण्डितजी ने कहा—'सरकार, गज़ब हो रहा है ! कल सांझ छोटे सरकार के जाने के बाद सुन्दर का बेटा आया था और कोठी के नौकरों को भड़का रहा था। कलुआ चमार को, जिसे उन लोगों ने पीटने के लिए बांधा था, भगवती ने डांट-डपटकर छुड़वा दिया। उसने लोगों से कहा—क्यों मारते हो उसे ? अरे तुम गरीब लोग आपस में एका नहीं कर सकते ? ये लोग जो मोटरों में बैठकर ऐश उड़ाते हैं, आखिर किसकी कमाई खाते हैं ? हराम का खा-खाकर जो तुम लोगों की हड्डी-हड्डी चूस रहे हैं, क्या तुम सदा इन लोगों की गुलामी करने के लिए पैदा हुए हो ?'

ज़मींदार साहब गरज उठे—'पण्डित !' पण्डित चुटिया से एड़ी तक काप उठे। उन्होंने कहा—'मालिक, अगर मैं झूठ बोलता हूं तो मेरे मुंह में गाय की हड्डी। मैंने अगर झूठ कहा है तो वैतरणी में मेरे हाथ से गौ की पूंछ छूट जाए और मैं जन्म-जन्म तक नरक की आग में लोहे के कांटों पर छेदा जाऊं। लेकिन सरकार ! तीन पुश्तों ने आपका नमक खाया है। आपके पड़बाबा और मेरे पड़बाबा इस गांव में साथ-साथ आए थे और उन्होंने कभी एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ा। इस घर में काम करके मैंने कभी यह नहीं सोचा कि मैं नौकर हूं। यह आप ही की दया है कि मेरे बदन में हड्डी और मांस है, यह आप ही की दया है कि मगनराम ने अपने बाप की नाक रख ली है, क्योंकि उसने छोटे सरकार को मालिक कहा है। मैं कभी नमकहरामी नहीं कर सकता। पण्डित की जात है। मेरे पिता कभी मेरे हाथ का पानी नहीं पिएंगे अगर मैंने आपसे दगा की। लेकिन अधरम हो रहा है महाराज, मैं कैसे चुप रह सकता हूं ?'

ज़मींदार साहब सोच रहे थे कि यह हिन्दुस्तान की सभ्यता के विरुद्ध है। मालिक मालिक है, प्रजा प्रजा है। जायसवाल ने लिखा है कि पहले गण होते थे, किन्तु उनमें भी बराबरी केवल आर्यों में होती थी। यह तो उन रूसी कम्युनिस्टों का प्रचार है। हिन्दुस्तान में यह कभी नहीं हो सकता। ये गरीब किसान जो अपनी टूटी-फूटी झोंपड़ियों में खुश हैं, इन्हें लोभ दिखाया जा रहा है कि ये भी महलों में रहें ? यदि सब ही राजा बन जाएंगे तो प्रजा कौन रहेगा ? सब बराबर हो जाएंगे तो इन्सान को

उन्नति करने की प्रेरणा कहां से मिलेगी ? नहीं, यह तो धर्म पर चोट है। इसका मतलब हुआ—भाग्य कोई चीज़ नहीं ?

'और नौकरों ने उस लड़के की बात मान कैसे ली ?' ज़मींदार साहब ने उत्सुकता से पूछा।

पंडितजी ने धीरे से कहा—'मालिक ! डरता हूं कि धड़ पर गर्दन नहीं रहेगी, लेकिन कहे बिना नहीं रहा जाता। आज तक जो नहीं हुआ वही हो रहा है। मालिक ! लोग पहले कहते थे, विलायत जाकर धर्म नहीं रखा जाता। आपने उसे गलत साबित कर दिया। क्या आप जाकर विलायत नहीं रहे ? लेकिन जब आप लौटे, आपने कौन-सी रीति नहीं निभाई। मालकिन नहीं रहीं।' पण्डित का गला रुंध गया, 'वर्ना आप जो बेटे के प्यार में उन्हें इतनी आज़ादी दे रहे हैं, वह उनकी हुकूमत में कभी नहीं मिलती। कल बहू आई हैं। आज फिरंगियों के साथ शिकार पर गई हैं ? क्या यहां कोई मरजाद नहीं रही ? मैंने आपका सात पुश्तों से नमक खाया है। पंडित सब कुछ सह सकता है, लेकिन मालिक का नुकसान नहीं सह सकता। गांववालों की मजाल है कि सिर उठा जाएं ? जैसा राजा होगा वैसी प्रजा होगी। मालिक रीति-रिवाज तोड़ेंगे तो उन ग़धों का क्या होगा ?'

पंडित हांफ गए।

जमींदार साहब ने पूछा—'है कहां वह लड़का ?'

पंडित ने हाथ जोड़कर कहा—'अभयदान हो, लड़का कोठी में बन्द है !'

'बन्द है ?' ज़मींदार साहब के मुंह से निकला—'वह किसने किया ?'

'मालिक ! मैं तो उसे पुलिस में दे देता। लेकिन मैंने उसे छोड़ दिया, क्योंकि डरता था। नई मालकिन ने उसे शहर से मोटर भेजकर बुलवाया था।'

'क्यों ?'—ज़मींदार साहब ने तीव्र स्वर से पूछा।

'सुना है, उन्होंने उसे ज़मींदारी का मनीजर बनाने के लिए चार सौ रुपया माहवार पर बुलाया था।'

'बिला मेरी राय के ? अभी तो मैं ही मालिक हूं।' और उनको एक हल्के से चक्कर ने कुर्सी पर पीछे की ओर लिटा दिया।

पंडितजी ने कुछ नहीं कहा। वह चुप हो गए। थोड़ी देर बाद ज़मींदार साहब ने कहा—'पंडित ! ज़माना बदल गया है। सारी दुनिया ने एक चीज़ भुला दी है, वह है वफादारी।'

पंडित ने टोककर ज़ोर से कहा—'मालिक ! जनेऊ की सौगन्ध है, मैं यह सुन नहीं रहा हूं, ब्रह्महत्या कर रहा हूं।'

ज़मींदार साहब ने धीमे से कहा—'पंडित ! आज जीवन के सारे पाप-पुण्य का फल दांव पर लग गया है। आज तुमसे एक काम कराना चाहता हूं।'

पंडितजी ने सिर उठाकर देखा। ज़मींदार साहब ने कहा—'आज मेरी इज्ज़त मेरी मर्यादा तुम्हारे पैरों पर है पंडित !'

'मालिक ! !' पंडित फिर चिल्ला उठा—'मैं फांसी लगाकर मर जाऊंगा। मगन से कहिए कि वह मेरा कर्म भी न करे और मैं प्रेत बनकर प्यासा-प्यासा बियाबानों

में चिल्लाता फिरूं, क्योंकि मैंने ऐसी बात सुनी है।'

ज़मींदार साहब ने रुंधे हुए कंठ से कहा—'पंडित, यह लो।' उन्होंने उतारकर एक चांदी का छल्ला पंडित की ओर बढ़ाकर कहा—'इसे ले जाकर सुन्दर को दे देना, अभी इसी समय!'

पंडितजी ने कांपते हुए हाथ से छल्ला पकड़ लिया और उसे डरते हुए ज़ोर से मुट्ठी में भींच लिया, जैसे वह उस सांप के बच्चे का दम घोंटकर मार देना चाहते हों। पंडित को लगा जैसे उनके पैरों के नीचे से धरती खिसक गई, आसमान के तारें शायद अब पल-भर में ही टूट-टूटकर पृथ्वी पर आ गिरेंगे और उसके बाद सारा ब्रह्माण्ड खंड-खंड हो जाएगा और पंडित···

ज़मींदार साहब अर्द्धमूर्छित-से अपनी कुर्सी पर पड़े थे। पंडित ने एक बार तनिक विक्षोभ से उनकी ओर देखा और बाहर चले गए।

रात का घना अंधेरा, बाहर सनसनाती चुभीली वायु सांय-सांय कर रही थी। किसी टूटे-फूटे जहाज़ी बेड़े की तरह गांव का गांव उस नीरव अंधकार-सिंधु के अतल में जाकर डूब गया था और पानी के भीतर की काई के क्षीण स्पन्दन की भांति लोग सांस ले रहे थे। रास्ते की धूल ठंडी हो गई थी। पंडितजी चल पड़े।

जिस समय उन्होंने वह द्वार खटखटाया, सुन्दर के घर में एक मद्धिम दिया जल रहा था। सुन्दर ने द्वार खोलकर देखा, पंडित खड़ा था। उसे कुछ विस्मय हुआ। उसने कहा—'क्या बात है पंडितजी?'

पंडित गम्भीर था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। भीतर घुस आया और दृढ़ता से हाथ बढ़ा दिया। सुन्दर ने उसे हाथ में ले लिया और कांप उठी। विश्वास नहीं हुआ। जाकर दिए के प्रकाश में देखा। उसके मुख से अर्द्धस्वर फूटा—'पंडित···' और दीवाल से जाकर उसकी पीठ टिक गई। उसकी फटी आंखों को देखकर पंडित का दिल सहम गया। थोड़ी देर बाद कुछ स्वस्थ होने पर सुन्दर ने धीरे से फ़ुसफुसाकर पूछा—'यह तुम्हें किसने दी?'

पंडित ने हौले से किन्तु निश्चित स्वर में उत्तर दिया—'मालिक़ ने।

'क्या अभी दी है?'—सुन्दर ने पूछा, जैसे डूबते में आदमी बोलने का प्रयत्न करता है, किन्तु कुछ बोल नहीं पाता।

पंडित ने उदास दृष्टि से देखते हुए सिर हिलाकर स्वीकार किया। सुन्दर विभोर-सी खड़ी रही। पंडित भी प्रतीक्षा करता रहा।

पंडित ने कहा—'रात के बारह बज रहे हैं। जल्द चलो, वर्ना सुबह हो जाएगी। छोटे सरकार लौट आएंगे।'

सुन्दर ने कहा—'चलो!' अरगनी पर से उतारकर उसने पुरानी जर्जर चादर ओढ़ ली और उसके साथ-साथ चल दी। बाहर ड्योढ़ी पर किसी ने प्रश्न नहीं किया। पंडित नीचे ही रुक गया।

सुन्दर ने कमरे में धीरे से प्रवेश किया। उस समय घर में एकदम सन्नाटा छा रहा था। प्रायः सभी नौकर-चाकर सो रहे थे। ज़मींदार साहब ने आंखें खोलकर देखा और दोनों एक-दूसरे की ओर घूरकर देखते रहे। उन आंखों में क्या था, यह किसी ने नहीं

समझा ? दोनों फिर भी देखते रहे, देखते रहे, आज जैसे इन आंखों में दर्द नहीं होगा, क्योंकि दिल का दर्द कहीं अधिक है; न एक भी आंसू छलछलाएगा, क्योंकि आज है किसके भीतर इतना रस ? जो कुछ है वह एक उन्माद का हाहाकार-मात्र बनकर रह गया है, जैसे कल तक जो पहाड़ अपने अट्टहासों की प्रतिध्वनि करता था आज वह अपने सिर पर गिरने को वेग से अलग होकर घिरता चला आ रहा है।

कमरे में धुंधला प्रकाश फैल रहा था ।

सुन्दर ने गद्गद कंठ से कहा—'तुमने मुझे बुलाया है ?'

ज़मींदार साहब ने सिर हिलाया । वे बिलकुल निराश-से बैठे थे । सुन्दर ने उजाले में छल्ला उठाकर कहा—'जानते हो, इसका मतलब क्या है ?'

ज़मींदार ने फिर सिर हिलाकर स्वीकार किया । शायद आज उनके पास शब्द नहीं हैं । सुन्दर ने फिर कहा—'वृन्दावन ! एक दिन जो पाप किया था उसे प्रेम के बल पर पवित्र पुण्य बना देने के लिए हमने आपस में छल्ले बदले थे । भयानक से भयानक गरीबी में, भूखे मरते समय, जब मेरा बच्चा भूख से बिलख-बिलखकर रो रहा था, मैंने ऐसे ही छल्ले को अभी तक बेचा नहीं, छिपाए रखा है। आज तुमने वही छल्ला मुझे लौटा दिया है, तो फिर मेरे पास तुम्हारा छल्ला रहकर क्या करेगा ? लो उसे भी ले लो ।' और सुन्दर ने अपनी उंगली पर से वैसा ही दूसरा छल्ला उतारकर उनकी ओर बढ़ा दिया । वह कहती गई—'एक दिन तुमने ये दोनों एकसाथ बनवाए थे कि हम-तुम सारी रुकावटों को ठोकर मारकर एकसाथ जीवन बिताएंगे । लेकिन धन और अधिकार के कारण तुमने अपने-आपको बेच दिया और वे छल्ले, प्रेम के वे बन्धन, निर्बल पड़ गए । किन्तु फिर भी एक दिन तुमने कहा था कि सुन्दर, यदि यह सब भी हो गया तो भी कुछ नहीं, मैं तुम्हें अब भी प्यार करता हूं । जब हम-तुम कभी किसी भी विपत्ति में पड़ेंगे तब यही छल्ला लौटा दिया जाएगा और आज तुमने मेरे प्रेम की थाती लौटा दी है ।'

सुन्दर ने दो कदम पीछे हटकर हाथ फैलाकर कहा—'मालकिन इस बात को भी नहीं जान सकीं । गांव में कुछ दुश्मनों ने सन्देह अवश्य किया, किन्तु कभी कुछ नहीं कह सके । आज तुम भी उसको झूठा बना देना चाहते हो ? बोलो ! तुम गांव के मालिक हो, राजा हो, क्या अपनी प्रजा से न्याय ऐसे ही होता है ?'

ज़मींदार साहब ने घिघियाते स्वर में कहा—'मैं कुछ नहीं हूं सुन्दर ! मैं एक घोर पापी हूं; किन्तु आज मेरी मर्यादा का प्रश्न है, आज सब कुछ डूब रहा है । मैं नहीं जानता मैं क्या करूं ?'

'क्या हुआ ?'—सुन्दर ने उत्सुकता से पूछा ।

ज़मींदार साहब ने हाथ जोड़कर कहा—'भगवती मेरे खिलाफ बगावत कर रहा है । वह गांववालों को भड़का रहा है । मेरी जिस इज़्ज़त को तुमने सब कुछ त्यागकर बनाया है, उसे आज वह जड़ से उखाड़कर फेंक देना चाहता है ।'

सुन्दर हंस दी । उसने कहा—'बड़े अभिमानी बनते थे । तुम अभिमानी हो सकते हो तो वह नहीं हो सकता ?' उसने हंसते हुए ऊपर देखकर कहा—'हे प्रभु ! सब कहते हैं तू किसी की नहीं सुनता, किन्तु आज मैंने जाना कि तू सबकी सुनता है ।'

ज़मींदार सर वृन्दावनसिंह विक्षुब्ध हो गए। उन्होंने खड़े होकर कहा—'सुन्दर!'

सुन्दर चुप हो गई। ज़मींदार साहब ने हाथ पसारकर कहा—'ले जाओ यह सब। क्यों न उस दिन मुझे बदनाम कर दिया था? क्यों न तुमने मुझे ज़हर देकर मार डाला जो आज तुम मेरे हृदय के घावों पर नमक छिड़कने आ गई हो! क्या यही इस प्रेम का अन्त है? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? जहां मैं विवश था वहीं मैंने सिर झुकाया था। तुम्हीं बताओ, क्या मैंने तुझे कभी दुतकारा? क्या मैंने तुमसे नहीं कहा कि तुम्हें जब आवश्यकता हो, मुझसे कहो? क्या मैंने स्वयं तुम्हारे पुत्र की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया? बोलो सुन्दर!'

सुन्दर ने गर्व से कहा—'तुम इतने अभिमानी हो तो क्या मुझे भी तुम्हारी प्रेमिका होने के नाते अभिमान करने का अधिकार नहीं है? लेकिन मैं जानना चाहती हूं कि मैंने किया क्या है?'

ज़मींदार ठिठक गए। उन्होने उसके पास जाकर कहा—'तुम भगवती की मां हो और वह बागी है।'

सुन्दर ने कहा—'और तुम उसके पिता हो।'

ज़मींदार साहब को चक्कर आ गया। सर वृन्दावनसिंह वहीं फर्श पर निःशक्त से बैठ गए। शायद पैरों की गठिया फिर उभड़ आई। सुन्दर ने कोई चिन्ता नहीं की। वह तीखे स्वर से बोल उठी—'अभिमानी का बेटा यदि अभिमानी है तो उसे कोई नहीं रोक सकता। आज राजेन का उठा हुआ सिर देखकर तुम्हारा अंत करण हर्ष से पुलक उठता है, किन्तु यदि तुम्हारा दूसरा पुत्र यही करता है, तो तुम उसे कुचल देना चाहते हो? लेकिन मत भूलो कि जिस वंश का तुम्हें इतना गर्व है, जिस रक्त का तुम्हें इतना घमण्ड है, उसकी रगों में वही लहू बह रहा है। आज तक मैं एक पाप नहीं, अनेक पाप करती रही हूं। मैंने एक बेटे को, अपने पेट के जाये बेटे को उसके असली पिता का नाम नहीं बताया है। मैंने उससे विश्वासघात किया है। वह एक दरिद्र का बेटा नहीं है। दरिद्र को धर्म ने दिया था, मां के जीवन की काली चादर पर ओढ़ा देने के लिए, क्योंकि वह आदमी जिससे उससे ब्याह करने का वचन दिया था, अपनी बात को पूरा नहीं कर सका। उसे उसकी मां से प्रेम नहीं था, अपनी गद्दी, अपने धन और अपने अधिकार के पीछे उसकी इन्सानियत चकनाचूर हो गई थी। जिसकी मां ने एक दिन रानी बनने का सपना देखा था, मगर जिसने खून पसीना कर दिया, पर कभी भीख के लिए हाथ नहीं पसारा, आज वह फिर रानी बनकर खड़ी है और राजापन के बोझ को ढोने वाला उसके सामने भिखारी बनकर खड़ा है। आज भगवती ने पढ़-लिखकर उन बातों को कहा है जो मैं कहना चाहती थी, पर सोच नहीं पाती थी। उसने उस पाप पर चोट की है जिसके कारण आदमी आदमी नहीं रहता।'

ज़मींदार साहब ने कहा—'तो तुम भी यदि उसे ठीक समझती हो तो मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मेरा-तुम्हारा तो जो होना था, बीत गया। अब कहो, राजेन ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'

सुन्दर नमित हो गई। वह किसी चिन्ता में पड़ गई। ज़मींदार साहब ने कहा—

'मैं उसे पुलिस में दे सकता था, जेल भिजवा सकता था, पर मैंने तो यह सब नहीं किया। इसीलिए कि वह मेरा बेटा है, वह प्रेम की उपज है। राजेन तो प्रणाली का भी हो सकता है। क्या राजेन से तुम्हारी कोई सहानुभूति नहीं है? क्या तुम चाहती हो कि उसके सुख का स्वप्न इसलिए चूर-चूर हो जाए कि उसके पिता ने एक घोर अपराध किया था? सुन्दर, अपराध मैंने किया था। जीवन-भर मैंने तुम्हें दण्ड दिया है, तुम्हारे हृदय पर धधकती हुई चिताएं जलाई हैं, तुम्हारे अरमानों को चकनाचूर किया है, किन्तु क्या इसका बदला यही है कि अनजान बनकर दो भाई आपस में लड़ते रहें, और एक जिसके पास अधिकार है, दूसरे को कुचल दे? यह तो कोई न्याय नहीं सुन्दर! आओ! तुम मुझे जो चाहो दण्ड दे लो। जब दण्ड देने का समय था तभी तुमने मुझे क्षमा कर दिया था तो फिर आज तुममें इतनी स्पर्धा कैसे जाग उठी? बिना मेरी राय के ही राजेन की बहू ने, मैंने सुना है, भगवती को शहर से मोटर भेजकर बुलाया है कि उसे तमाम जायदाद का मनीजर बना दिया जाए। राजेन भगवती से केवल एक वर्ष छोटा है। किन्तु उसका पालन आराम से हुआ है। वह भगवती से बड़ा मालूम देता है। मैं पूछता हूं, उन्होंने उसे क्यों बुलाया? क्या वह रगों में दौड़नेवाले खून का अनजान खिचाव नहीं था? क्या वे एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो सकते हैं? मैं नहीं जानता, फिर उनमें लड़ाई क्यों होगी? किन्तु मुझे बताओ यदि वे साथ-साथ रहते हैं तो कोई हर्ज है?'

सुन्दर ने कहा—'यह मुझे मालूम है। सुबह भगवती इसके लिए मना कर रहा था। उसने मुझसे कहा था कि वह उनका नौकर नहीं बनना चाहता। वह उनके बराबर है। सच कहती हूं मालिक! उस समय लगा था, जैसे एक तूफान आ रहा था। अरे, इसे कैसे मालूम हो गया कि यह उनसे नीचा नहीं है? उस समय एक खुशी हुई थी, किन्तु परिस्थिति देखकर मैंने कहा था—तू नौकरी कर ले। उन्हें अपना ही समझ। वे पराये नहीं हैं।'

जमींदार ने कहा—'सुन्दर, एक बात तुमसे पूछना चाहता हूं। इस इस्टेट का मालिक मैं हूं। यदि लवंग ने बिना मुझसे राय लिए किसी और को रखा होता तो तुम समझती हो, मैं उसे रहने देता? किन्तु नहीं; भगवती अपना है। सब कुछ सोच चुका हूं। बस के बाहर सब बात चली गई है। यही सोचकर तुम्हें बुलाया है। याद है, तुमने उस दिन प्रतिज्ञा की थी कि जब विपत्ति पड़ेगी तुम मुझे बचाओगी? मैं तुम्हारे मुंह पर नहीं बताना चाहता कि मेरे जीवन का कितना बड़ा दुःख मेरे हृदय के भीतर छिपा है। क्या मैं नहीं जानता कि तुमने मेरे लिए अपने-आपको तिल-तिल करके मिटा दिया है...'

सुन्दर ने बीच ही में कहा—'मैंने क्या किया है? कुछ तो नहीं। यदि यह नहीं करती तो करती ही क्या? जहां मेरा सबसे बड़ा स्वार्थ था वहां तो तुम्हीं जीत गए। भगवती क्या तुम्हारी मदद के बिना पढ़ पाता? मैं गरीब हूं, किन्तु मैंने अपनी जवानी को एक भूल माना है। मैंने असंभव को संभव करना चाहा था, किन्तु वह नहीं हो सका। मुझे तुम गर्व का भार न दो मालिक! तुम मेरे सबसे अधिक निकट हो। आज जब हमने आपस में मनुष्यों की तरह बात की है, तुमने मुझे उसी नाम से पुकारा है, सुन्दर, और मेरे सामने तुम कहीं भी नहीं, केवल वृन्दावन हो। जब तुम कुछ भी और हो, तब

तुम मेरे नहीं हो। तुमने उस और कुछ को ही सब कुछ समझा, तुममें वह हिम्मत नहीं थी कि सब कुछ कर डालते। सच बताओ ! भगवती ने कुछ झूठ कहा—पिता का पुत्र होने से ही तो मनुष्य को सम्मान नहीं मिल जाता ? जो सम्मान राजेन को मिला है, वह क्या उसके भाई को नहीं मिलना चाहिए था ?'

'किन्तु वह कानूनन बेटा नहीं है।'

सुन्दर ने विक्षुब्ध होकर कहा—'कौन-सा कानून है जिससे बाप बेटे का बाप नहीं है, बेटा बाप का बेटा नहीं है, मां बेटे की मां नहीं है ? ये कानूनों की आड़ बनानेवाले पापी आदमीयत का गला घोंटनेवाले हैं। सुन्दर भिखारी की बेटी नहीं थी। उसका बाप भी गांव का एक सम्मानित व्यक्ति था, कानूनगो था। भाग्य ने नहीं, उसकी निर्बलता ने उसे भिखारिन बना दिया था। उसका बेटा दूध की जगह पानी पिया करता था। जब एक बेटे का बचा हुआ दूध कुत्ते पिया करते थे, दूसरा अपना अंगूठा चूसा करता था। जब एक के पास रेशम और मखमल के कपड़ों के ढेर थे, दूसरा धूल में नंगा लेटा करता था। लेकिन कौन सुने ? गरीबों की कोई नहीं सुनता। दो रोटी देकर सोचा जाता है कि उनकी भूख हट गई। किन्तु उन रोटियों के पीछे कितनी मजबूरियां रोया करती हैं, बाल नोच-नोचकर सिर पीटा करती हैं। उनके दिल को सदा यह बात कचोटा करती है कि वह उनके टुकड़ों पर पलता है। कितना घृणित है यह संसार ! रोटी को आदमी खाने के लिए नहीं रखता, रोटी के बल पर आदमी आदमी को दबाता है। अमीरों ने गरीबों को कुत्ता बनाकर रखा है। मैं नहीं जानती, आदमी इस पाप से बचने के लिए क्या कर सकता है ! किन्तु मालिक ! भगवती पढ़ा-लिखा है। यदि वह अपने बाप और भाई से सच कहकर उन्हें छुड़ाना चाहता है, उन्हें उस अंधेरे में से बाहर निकालना चाहता है, तो क्या वह बुरा है ?'

ज़मींदार साहब ने दोनों हाथों से अपने दोनों घुटने दबाते हुए कहा—'पागलों की-सी बातें न करो सुन्दर ! वह मेरा है, इसी ममता से मैं उसे जेल भिजवाना नहीं चाहता। मालूम है आजकल रूस के एजेण्ट छोकरे ऐसी बातें करते फिरते हैं, और वह भी उसकी हां में हां कर रहा है। अगर सरकार को ज़रा भी भनक पड़ गई तो उठाकर जेल में ठूंस देगी। क्या तुम चाहती हो, वह जेल जाए ? जानती हो इस वक्त तरह दे जाने से उसके लिए और कोई परिणाम नहीं है। यह सरकार सन्देह पर भी ज़िन्दगी-भर की सज़ा दे सकती है। यह आत्मरक्षा के प्रयत्न को हत्या भी करार दे सकती है। जेल में वह कैसे रहेगा ?'

उनका स्वर कांप उठा। उन्होंने फिर कहा—'यदि मैं उसे छोड़ देता तो आज इस वक्त वह जेल में होता।'

सुन्दर चौंक गई। उसने कहा—'क्या मतलब ? वह कहां है ?'

'उसको पंडित ने नीचे बन्द कर रखा है।'

'घृणा से काला होकर सुन्दर का मुंह विकृत हो गया और उसके होंठों से फूट निकला—'कायर ! यही है तुम्हारा स्नेह ? यही है तुम्हारी ममता ? तुमने मेरे बेटे को बन्द कर रखा है। जैसे वह कोई मामूली चोर हो। तुम्हें शर्म नहीं आती ?'

ज़मींदार साहब ने दोनों हाथों से अपना मुंह छिपा लिया। उन्होंने कहा—

'और क्या कर सकता था मैं···सुन्दर ?'

'सुख देने के वक्त कुछ नहीं तुम्हारे पास ? तुम दे सकते हो सज़ा ? किस मुंह से तुम उसे सज़ा दे सकते हो ?'

ज़मींदार साहब ने पुकारकर कहा—'पंडित !'

पंडित का कठोर चेहरा द्वार में से झांक उठा। ज़मींदार ने कहा—'पंडित ! भगवती को ले आओ।'

सुन्दर उसके जाने के बाद फिर फुफकार उठी—'एक दिन गोद में नहीं खिलाया गया, एक दिन प्यार नहीं किया गया, क्योंकि वह कुलटा का बेटा है, क्योंकि तुम आज एक प्रसिद्ध धर्मात्मा हो।'

उसने देखा, ज़मींदार सिर झुकाए बैठे थे।

नीचे जाकर पंडितजी ने भगवती के कमरे का द्वार खोल दिया। भगवती ने कुर्सी पर बैठे-बैठे देखा। पूछा—'ले आए पुलिस ?'

पंडित ने अदब से सिर झुकाकर कहा—'आपको मालिक ने पधारने को कहा है।

उस पंडिताऊ भाषा को सुनकर, उस इज़्ज़त देने के प्रयत्न को देखकर भगवती को आश्चर्य हुआ। व्यंग्य से उसके होंठ टेढ़े हो गए। उसने कठोर स्वर में कहा—'कहां हैं तेरे मालिक ?'

'हुज़ूर ऊपर हैं।'

भगवती आगे-आगे, पीछे-पीछे पंडितजी। अभी ये लोग ऊपर के कमरे के द्वार पर पहुंचे ही थे कि एकाएक नीचे बड़े ज़ोर का कोलाहल मच उठा। यह क्या ? मोटर रुकने की देर नहीं और यह कैसा हाहाकार ?

गठियावाले ज़मींदार सुन्दर के कन्धे पर हाथ रखकर जल्दी-जल्दी नीचे उतरने लगे। भगवती स्तम्भित हो गया। पंडितजी ने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे अपने साथ उनके पीछे-पीछे खींच ले चले। उन्होंने नीचे पहुंचकर देखा, कमरे में शोर हो रहा था। लवंग ज़ार-ज़ार रो रही थी। सबके चेहरे लटके हुए थे और सबके बीच में गांव का डाक्टर कुर्सी पर से निराशा से सिर हिलाता हुआ खड़ा हो रहा था। बगल में पलंग पर खून से भीगा राजेन का शव पड़ा था।

ज़मींदार साहब ने देखा और उनका स्थूल शरीर अचेतन होकर सुन्दर पर लुढ़क गया। भगवती किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा।

सबने बढ़कर उन्हें संभाल लिया। जब वह उन्हें पलंग पर लिटाने लगे तो सुन्दर ने गरजकर कहा—'खबरदार ! जिसका जवान बेटा आज सदा के लिए ज़मीन पर सो गया वह बाप भी आज खाट पर सोएगा ? यह हम लोगों के पापों का फल नहीं तो क्या है कि जिनको हमारी आंखों के सामने फलना-फूलना चाहिए, आज हमसे पहले वे डोरी तोड़ गए।'

उसका गला रुंध गया। सबकी आंखों में एक आर्द्रता कांप उठी।

लोगों ने ज़मीन पर ही केवल दरी बिछा दी और उन्हें उसी पर लिटा दिया गया। वीरेश्वर ने दौड़कर आवाज़ दी। गांव का फटा-टूटा डाक्टर भीतर आ गया

और आते ही घबरा गया।

कामेश्वर अपनी अवाक् आकृति को लिए देखता रहा। यह क्या से क्या हो गया ? क्या यह सच है कि राजेन अब नहीं रहा ?

उसने पास आकर देखा। दिल पर सीधी मार पड़ी थी पंजे की। पूरा सीना फट गया था। सचमुच वह मर गया था। उसे कोई नहीं जिला सकता। आदमी का भी क्या जीवन है ? अभी तो सब कुछ था, अब नहीं है तो कुछ भी नहीं रहा।

समर एक बार अपने-आप कांप उठा। उसने देखा, सुन्दर और लीला धीरे-धीरे ज़मींदार साहब को पंखा झल रही थीं। उनके मुंह पर दो बार ठण्डे पानी के छींटे भी दिए।

विटर्टन और सिट्वैल दोनों स्तब्ध थे। कमरे में एक दहशत-भरा सन्नाटा हाय-हाय करता हुआ मन को भींचकर मसल देना चाहता था। उस शव को देखते हुए आगे बढ़कर पण्डित ने हाथ जोड़कर कहा—'मालिक ! तुमने पण्डित के वंश को सबसे बड़ा दण्ड दिया है। तुम चले गए हो, हम सब तो अधिक दिन के नहीं रहे, लेकिन तुमने मगन को जो निराधार छोड़ दिया है, उसके लिए अब मैं किससे कहूं ? उसका और कोई आसरा नहीं। अब वह किसकी ओर देखकर जिएगा ?'

पण्डित का गला रुंध गया। उसने कांपते हाथों से शव को सफेद चादर ओढ़ा दी और डगमगाते पैरों को लेकर बाहर चला गया।

भगवती देर तक उस शव को देखता रहा और न जाने क्यों, न जाने किस स्नेह के भावातिशय में, रो पड़ा। उसके रुदन को देखकर आश्चर्य से लीला ने उसकी ओर देखा। सच, भगवती ही था। वही तो रोया है अभी। किन्तु पुरुष होने के नाते भगवती ने शीघ्र ही अपने ऊपर संयम कर लिया।

लवंग फूट-फूटकर रो रही थी। उसके काले चिकने बाल इस समय रूखे-रूखे-से फैल गए थे। घर में एक भी नहीं जो उसी के शब्दों में उसी की व्यथा को माप सके। यह किस जीवन का पाप है ? कल माथे में सेंदुर था, आज वह सदा के लिए मिट गया। पुरुष कभी स्त्री के वैधव्य की व्यथा की अथाह गम्भीरता नहीं समझ पाता, किन्तु नारी का हृदय उस समय इतना व्याकुल हो जाता है कि वह कुछ भी नहीं सोच पाती। आज तक का भूतकाल इसी परिणाम की प्राप्ति का एकमात्र साधन था। वही तो उसका सब, सब कुछ था। आज वह गया, अपने साथ भविष्य और वर्तमान, सबको अपने पद-चिह्नों के साथ मिटाकर चला गया। क्या होगा ? पहाड़ हो गई है यह क्षण-क्षण की बहती हवा, जम गई हैं बर्फ-सी वह छोटी-छोटी कोमल लहरियां। आत्मा नहीं चाहती कि वह उसे स्वीकार करे। काश वह जाग उठे ! अरे, लगता है, अभी सांस चल रही है, उसका शरीर भीतर हिल रहा है, देखो न कपड़ों में, चादर में कैसी एक सिहरन अभी-अभी दौड़ी है।

व्यर्थ है लवंग, यह भी व्यर्थ है और फिर सन्नाटे पर घहराता हुआ वह लवंग का हृदयवेधी रुदन, जैसे करुणा स्वयं से कराह रही हो, जैसे कोई कह रहा हो—पानी ! पानी ! और कोई नहीं, उस पर केवल मरु की भीषण लू ठहाका मारकर हंस उठती है…

वह तो गया। अब वह क्या लौट सकता है! जो गया वह सदा दूसरों को रोता छोड़कर ही गया।

गरीब हो, अमीर हो, सबका यही अन्त है। किन्तु वह हंसमुख आकार, वह चंचल गरिमा, वह स्निग्ध त्वचा और लवंग! वह मधुर उष्ण आलिंगन, वे प्यार-भरी आंखें···

टूट जा रे हृदय, चटक जाओ दीवार! आज सोहागिन का वैधव्य तुम्हें ललकार रहा है। आज एक हताश बन्दी की हथकड़ियां झनझना उठी हैं। फड़फड़ा रहा है यह आतुर पक्षी, पिंजरे में से कैसा हृदयवेधक क्रंदन आ रहा है; जैसे मरते हुए हिरन के दो नेत्र देख रहे हैं। देखो यह जीवन की पुकार आज मृत्यु को चुनौती देना चाहती है।

किन्तु कोई क्या करे? राजेन कितना नीरस है! क्या वह इतना निष्ठुर है? आज उसे अपनी प्रिया की एक भी पुकार सुनाई नहीं देती।

एकाएक लवंग ने ऊपर देखा। उसने दोनों हाथ फैलाकर कहा—'मैंने तुम पर कभी विश्वास नहीं किया, किन्तु आज तुम मेरे स्वार्थ का बदला दे सकोगे भगवान्?'

कोई उत्तर नहीं मिला। निराकार के सामने इस घटना का कोई मूल्य नहीं। वह तो न कभी बोला है, न बोलेगा। लवंग ने मुड़कर देखा, विंटर्टन उदास-सा बैठा था। लवंग उसे देखकर चिल्ला उठी—'कायर! शासक बनते हो! तुम्हें शर्म नहीं आती? चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए तुम्हें। ले जाओ इसे, यह मेरा सुहाग है, तुमने मुझे विधवा बना दिया है······'

किन्तु क्या हो गया कहकर! विंटर्टन ने तो सिर झुका लिया है। वह बात सब ऊपर से निकल जाएगी जैसे चावल की खड़ी फसल पर से हवा। हिन्दुस्तानियों की मौत का उसके वर्ग में कोई महत्त्व नहीं। आते हैं, मर जाते हैं। आने-जानेवालों से लाभ नहीं है, लाभ तो स्थिर हिन्दुस्तान से है।

लवंग के मन में आया कि उसका गला घोंट दे, किन्तु फिर जाने क्यों साहस नहीं हुआ और वह चारों ओर से निराश होकर पृथ्वी पर लेटकर रोने लगी। इन्दिरा अभी तक चुप थी, किन्तु अब उसका सिर उठाकर अपनी गोद में रख लिया और उसे अपने हाथ से धीरे-धीरे सहलाने लगी। लवंग ने कोई विरोध नहीं किया। उस स्पर्श में उसे ऐसी कोमलता, इतना संवेदन मिला कि उसके घाव पर जैसे किसी ने शीतल लेप कर दिया हो। इंदिरा की आंखें भीग गईं। उसके हृदय में विचार आया—'क्या भगवान् ने भगवती के प्रति किये गए अत्याचार का बदला लिया है? किन्तु यदि यही है, तो भगवान् ने भीषण अत्याचार किया है। मर्ज़ मिटाने का मतलब यह तो नहीं कि एकदम मरीज़ को ही खत्म कर दिया जाए, कि न रहे बांस न बजे बांसुरी···और फिर राजेन का दोष!!!'

घर के नौकर कमरे के बाहर गमगीन-से इकट्ठे हो गए थे। जगह-जगह सूचना देने दो नाई दौड़ गए थे।

और लवंग! अभागे बालक! तू हंस रहा था कि तेरा गुब्बारा कितना रंगीन है? कितना स्निग्ध है—आसमान में उमड़ता चला जा रहा है···ले ये चिथड़े, यही है उसका अन्त, यही है तेरा धर्म, दर्शन मर्यादा, अभिमान, रक्त, सबका अन्त; बसा ले

साम्राज्य, किन्तु उनका ढहना आवश्यक है। गर्व न कर कि तू हंसा है, तेरी इस दुनिया में हंसना-रोना समान है।

इन्दिरा ने स्नेह से कहा—'बहिन !'

इस एक शब्द के कारण लवंग की आंखें खुल गईं और एक घोर श्रद्धा से मुख झुक गया। फिर अपनी याद आते ही उस पर एक स्याही फैल गई।

भोर हो गया था। मगनराम इन्तज़ाम करता फिर रहा था। किन्तु कुल की रीति तो पण्डितजी ही जानते हैं। उन्होंने गम्भीर स्वर से बुलाकर कहा—'मगन !'

मगन ने उनके सामने आकर कहा—'दादा !'

'क्या हुआ रात को ?'

मगन ने कहा—'जिस मचान पर मालिक थे, बीबीजी, मैं और वह लम्बा साहब तथा एक शिकारी भी बैठे थे। जब जगार हुई तो शेर निकलकर आया। छोटे सरकार ने, ज्यों ही वह करीब सौ गज़ पर दिखाई दिया, उसके गोली मारी। गोली खानी थी कि शेर दहाड़कर झपटा। गोली उसके पुट्ठे पर से फिसल गई थी। हम खाली हाथ थे। उसका उस भयंकरता से दहाड़ना सुनना था कि विटर्टन इतनी ज़ोर से कांप उठा था कि सारी मचान हिल गई और छोटे सरकार, जो गोली का निशाना साधने में लगे थे, फिसल गए। एकदम नीचे गिर गए। अब शेर में और उनमें केवल पच्चीस गज़ का फासला था। शिकारी धड़ाम से नीचे कूद पड़ा। धाँय की आवाज़ हुई। वीरेश्वर बाबू ने ताककर गोली चलाई मगर चूक गई। दूसरे पुट्ठे पर लगी और उछल गई। शेर उस वेग को नहीं सह सका। क्षण-भर के लिए उसकी पिछली टांगें झुक गईं। छोटे सरकार बन्दूक लेकर खड़े हो गए थे, उसी समय लीला जोर से चिल्लाकर बेहोश हो गई। दूसरे साहब ने उसे एक हाथ से थाम लिया। वीरेश्वर ने गोली चलाई, पर मचान हिल रही थी। वह निशाना नहीं लगा सका। शेर ने झपटकर छोटे सरकार पर प्रहार किया। उस समय बीबीजी ने उसपर पिस्तौल चलाई और शिकारियों ने अपनी-अपनी राइफलें दाग दीं। शेर मर गया।'

पण्डित ने कहा—'शेर तो पहले ही मर गया था।'

मगनराम ने कहा—'दादा ! लवंग बीबी का दिल पत्थर का है।'

पण्डित ने कहा—'वह उसका सुहाग था।'

पण्डितजी के होंठ कांप रहे थे। जैसे आज तक जो विवशता नहीं आई थी उसने आज शेर का आकार ग्रहण करके उनपर प्रहार किया था। अब क्या होगा ? वह स्वयं निश्चय नहीं कर सके। वह दाह-संस्कार का प्रबन्ध करने लगे। गांव-भर बाहर इकट्ठा हो गया था। सबके मुख पर शोक दिखाई दे रहा था। बड़े-बूढ़े राजेन की प्रशंसा के पुल बांध रहे थे। गांव की कई लड़कियों की आंखों में इस सुहाग के टूटने पर आंसू भर आए। राजेन सुन्दर था। आकर्षण में लवंग भी कम नहीं थी।

भीतर ज़मींदार साहब अभी तक अचेतन पड़े थे। गांव का डाक्टर सर्दी में भी पसीने से तर था। पण्डितजी ने दो मोटरें, एक के बाद एक, शहर की ओर डाक्टरों के लिए दौड़ा दी थीं। अब एक-आध घण्टे मे वे लोग भी ग्रा ही जाएंगे। किन्तु फिर क्या होगा ? क्या ज़मींदार की यह मूर्छा उनकी चेतनावस्था से कहीं अधिक ठीक नहीं है ?

बाहर सम्बन्धियों की भीड़ हो गई थी।

लीला ज़मींदार साहब के पास सुन्दर के साथ सेवा कर रही थी। वीरेश्वर, कामेश्वर, समर और दोनों अंग्रेज़ शव के पास सिर झुकाए बैठे थे। भगवती अब भी आंखों में आंसू भरकर उन्हें टकटकी लगाकर देख रहा था। उस नीरवता में एकमात्र लवंग का रुदन कभी-कभी फूट उठता था। वह आर्त्त-सी दिखाई दे रही थी। लवंग कभी रोष से विंटर्टन की ओर देखती, जैसे कच्चा चबा जाएगी, कभी रोने लगती, किन्तु कमरे की हवा इतनी भारी थी कि सबका दम घुट रहा था। विंटर्टन एक सिगरेट और दो पेग व्हिस्की के चढ़ाकर अपने-आपको दुरुस्त करना चाहता था। दुःख के समय वे लोग ऐसा ही किया करते हैं, वर्ना मनुष्य के भावुक हो जाने का भय बना रहता है और भावुक मनुष्य अपना काम नहीं कर पाता।

कामेश्वर अब भी चुप ही बैठा था। उसने एक बार भी कुछ नहीं कहा।

एकाएक ज़मींदार साहब ने आंखें खोल दीं और कुछ बड़बड़ा उठे। उनके होंठों से अस्फुट शब्द निकले—'राजेन ! राजेन !'

फिर बन्द कर लीं आंखें। सुन्दर ने पानी पिलाया। ज़मींदार साहब तनिक चैतन्य हुए। उन्होंने कहा—'सुन्दर, मुझे उठा दो।'

सुन्दर ने उन्हें पीछे से सहारा देकर बिठा दिया। ज़मींदार साहब ने व्याकुल कंठ से पुकारा—'राजेन ! राजेन ! कहां चले गए तुम राजेन ! बेटा…!'

उनकी आवाज़ शून्य में लय हो गई। आज राजेन कहां है जा उन्हें उत्तर दे ? अब नहीं है वह यौवन की मादक उच्छृङ्खलता जो धमनियों में कुल-कुल करती पुकार उठती थी। वह दीपक बुझ गया है जो इतने बड़े अन्धकार में एकमात्र आशा का प्रकाश था। अब चारों ओर वही सूनापन, हृदय को खा जानेवाला सूनापन छा रहा है।

एकाएक उनकी दृष्टि सामने खड़े भगवती पर पड़ी। ममता के आवेश में वह चिल्ला उठे—'बेटा ! भगवती बेटा ! वह तो सचमुच बड़ा निर्मोही था। मौका देखकर चला गया। हाय परमात्मा, मेरे पापों का तूने उससे बदला क्यों लिया ? उसने तेरा क्या बिगाड़ा था ? आह ! मेरा दिल डूबा जा रहा है। भगवती ! भगवती !! कहां हो बेटा ? इधर आओ, अपने बूढ़े बाप को सहारा दो। आज उसके जीवन की नाव, पतवार टूट जाने से डांवांडोल हो गई है।'

भगवती चौंक उठा। और सब चौंक उठे। जमींदार साहब क्या कह रहे थे ? सुन्दर का सिर झुक गया। वह नीचे ज़मीन की ओर देख रही थी।

ज़मींदार साहब ने कहा—'बेटा ! मैंने तुझपर बहुत अत्याचार किया है। तभी परमात्मा ने मुझे बुढ़ापे में लंगड़ा कर दिया है। लेकिन परमात्मा के दरबार में अन्याय नहीं चल सकता। बड़ा फिर भी बड़ा ही है।'

तो क्या भगवती इसी रक्त के बन्धन के कारण रोया था ? क्या इसीलिए इतनी घृणा करके हृदय में एकदम करुणा भर गई थी ? यह वह क्या सुन रहा है ? मां ! मां शान्त बैठी है ! उसे कोई विरोध नहीं ? तो क्या यह सत्य है ? क्या यह सौम्य दिखाई देनेवाली ममतामयी मां भीतर ही भीतर इतनी कुटिल है ? क्या वह स्वयं एक अनाचार का परिणाम है ? व्यभिचार की उत्पत्ति है ? समाज की दृष्टि में वह गैर-

कानूनी है, एक रखैल का लड़का है ? क्या इसी स्त्री ने अपने दरिद्र और सीधे-सादे पति को इतने दिन तक छला था ?

ज़मींदार साहब ने फिर कहा—'मान न कर हठीले ! तेरे छोटे भाई की लाश आज तेरे कदमों में पड़ी है। तेरे बाप का दिल आज बिल्कुल टूट गया है क्योंकि धन, वैभव, धर्म, अधिकार और अभिमान सब, सब लड़खड़ा गए हैं। आज तो अपना यह मान छोड़ दे बेटा···'

भगवती सोच रहा था : वह एक रखैल का लड़का है, अभी तक वह दरिद्र था, किन्तु आज वह जन्म के पहले से ही पापी है ! नहीं, नहीं, किन्तु मां ! मां चुप बैठी है ? सांपिन ? और···वह दुराचार की सन्तान है···'

भगवती ने देखा और उसका चेहरा स्याह पड़ गया। उसने तड़पकर कहा—'यह झूठ है, यह मुझे बदनाम करने की नई रीति है। मां !' उसने सुन्दर की ओर हाथ करके कहा—'तुमने मुझे दरिद्र पैदा किया था। रूखी-सूखी रोटी खिलाई, मैंने कभी उफ नहीं की, मैंने कभी तुम्हारी तपस्या के सामने अपनी निर्बलता का प्रदर्शन नही किया। किन्तु यह मैं क्या सुन रहा हूं ? क्या यह सच है मां ? नहीं मां ! मुझसे नहीं, इन सबसे खोलकर कह दो कि तुम्हें धन ने कभी पराजित नहीं किया। तुम कभी इनके छल में नहीं फंसीं ? तुमने दरिद्र, मेहनती और अपने पर विश्वास करनेवाले पति को धोखा नहीं दिया। कहो कि मेरी इन धमनियों में इस वैभव के विष से गंदला रक्त नहीं हैं। मैं उसी का पुत्र हूं जिसने अपने रक्त का पानी बहा-बहाकर अपने-आपको श्रम के द्वारा पवित्र कर दिया था।'

किन्तु सुन्दर का सिर और भी झुक गया। स्नेह से ज़मींदार साहब ने दोनों हाथ खोलकर पुकारा—'बेटा···!'

किन्तु भगवती चिल्ला उठा—'मां ! मन करता है कि तुम्हारा गला घोंटकर आत्महत्या कर लूं। पवित्र है राजेन जो अपनी आंखों से यह घोर पाप न देख सका। क्यों नहीं तुमने पैदा होते ही मेरा गला घोंट दिया ? और आज ये मुझे सब कुछ देना चाहते हैं ? मैं घृणा करता हूं इस सबसे। नहीं चाहिए मुझे यह सब, मैं अन्तःकरण से इस सबसे घृणा करता हूं। मां! तुमने मेरे जीवन के ऊपर अन्तिम प्रहार किया है। तुम जो मुझे अब तक ममता की मृगतृष्णा दिखाती रहीं, तुमने मुझे रेगिस्तान में प्यासा तड़प-तड़पकर मर जाने के लिए त्याग दिया है। तुम, जिससे मुझे मृत्यु की भयानकता में भी अमृत की आशा थी, तुमने मेरा इन सबकी अपेक्षा सबसे अधिक अपमान किया है। ये लोग हंसते थे कि मैं दरिद्र था, लेकिन तुमने मुझे कहीं का नहीं रखा। आज संसार में भगवती कहीं भी मुंह दिखाने के काबिल नहीं रहा।'

सुन्दर ने कुछ नहीं कहा। ज़मींदार साहब ने कहा—'बेटा···यह सब तुम्हारा है···'

और लवंग के मुंह से निकल गया—'पिताजी···!!!'

शब्द हथौड़ों की चोट की तरह टकराकर अट्टहास कर उठा। भगवती ने सुना और वह तीर की तरह उस कमरे से बाहर निकल गया। गांव की औरतें रोने के लिए आ गई थीं। पण्डित उन्हें भीतर ला रहा था।

फिर अचानक उस जगह ऐसा भयानक रुदन उठ खड़ा हुआ कि सबकी आंखें छलछला आईं। जमींदार साहब अर्द्धचेतन-से अब भी सुन्दर का सहारा लिए पड़े थे और लीला ने निष्प्रभ मुख से देखा, सुन्दर ऐसे बैठी थी जैसे वह भूमि में जड़ी हुई थी। सूखे-सूखे मुंह से वीरेश्वर, समर और कामेश्वर चुपचाप खड़े थे। लवंग के बोल पड़ने से लीला का हृदय विक्षत हो गया। क्या यह स्त्री सचमुच इतनी नीच है? किन्तु अन्यथा भी वह क्या करती?

इन्दिरा अब भी लवंग को सांत्वना दे रही थी और लीला ने देखा, पंडित की आंखों से चिनगारियां निकल रही थीं।

'हाय, यह क्या हुआ? परमात्मा! तुझे दया नहीं आई। हाय रे मेरा फूल-सा कुंवर! मत उठाओ निर्दइयो, इसे बांसों पर न रखो। फूल-सी देह को कष्ट होगा···'

और पंडित को फिर भी एक तत्परता थी कि यह भी करना है, हृदय वज्र हो जा, आज फट जाएगा तो सब बह निकलेगा···

उस कोलाहल में लीला ने देखा—भगवती चला गया था···वह रो उठी।

30

पेड़ों की सघन छाया में वे दोनों बातें करते-करते बैठ गए। ऊपर एक छोटी तारिका निकल आई थी। पेड़ों के उस पार धुंधलके में अभी कैम्प के सफेद-सफेद डेरे दिखाई दे रहे थे। सांझ की वेला में धीरे-धीरे कहीं-कहीं से धुआं उठ रहा था और कोई-कोई गीत आकाश में पंख फैलाकर उड़ रहा था, जैसे बंजारों की कोमल मर्मर हो अथवा सागर की लहरों का संकुल स्वर थिरक रहा हो।

कॉलेज के ईसाइयों का यह एक बड़ा कैम्प लगता था। इस काम के लिए यह पार्वत्य स्थान चुना गया था।

रानी ने अपने क्रम को जारी रखते हुए कहा—'विनोद! कैम्प धर्म के नाम पर लगा है। बड़े-बड़े गोरे पादरी आए हैं। नित्य दुःखी मनुष्यों के लिए प्रार्थना मांगी जाती है। किन्तु वास्तव में लड़के और लड़कियां क्या करते हैं? मैं तो देखती हूं कि उन्हें यह सुन्दर स्थान, यह जंगल अपनी बासनाओं को तृप्त करने को ही मिले हैं। जहां वे, आजीवन जिसने नारी को छुआ भी नहीं, उस ईसा की प्रार्थना करते हैं, वहीं वे अंग्रेजी सभ्यता का पोला ढोल बजाने में लगे रहते हैं।'

विनोद ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। रानी कहती गई—'क्या यौन वासनाएं अन्त की पहली उत्तेजना हैं? क्या इसी तृप्ति में समस्त प्रेम भरा पड़ा है? किन्तु ये लोग करते ही क्या हैं?'

विनोद उलझन में पड़ गया। वह समझ नहीं सका कि रानी ने एक एकांत में उससे एक ऐसी बात क्यों छेड़ दी कि जिस पर कोई भी स्त्री अकेले तो क्या सबके बीच में भी बात नहीं करती। पुरुष की वही प्राचीन मूर्खता ऐसे समयों पर काम आने लगती

है। सहज ही उसने अपनी सिद्धि के उपकरणों को दैवी समझ लिया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह अत्यन्त संकोची था। तभी रानी उसे कचोट रही थी। चारों ओर अनन्त सौन्दर्य है, मनुष्य का हृदय यदि यहां भी प्यार नहीं कर सका तो फिर उसमें अनुभूति को चेतना व्यर्थ है।

रानी ने प्रश्नसूचक दृष्टि से विनोद की ओर देखा। विनोद ने कहा— रानी! मनुष्य जब प्रकृति की गोद में आता है तो उसके बंधन, उसका कलुष स्वयं पीछे छूट जाता है।'

रानी हंसी। उसने कहा—'तो ये सब अब प्रकृति के पुजारी हो गए हैं? मैंने तो ऐसे-ऐसे लोगों को न जाने क्या-क्या करते देखा है। सच, बड़ी घृणा होती है।'

विनोद हंस दिया। उसने तरल आंखों से उसे घूरते हुए कहा—'तुम तो पागल हो। संसार में अनेक ष हैं, अनेक स्त्रियां हैं। कहां तक उन सबको ठीक और गलत सिखा सकोगी? वे सब अपने को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं।'

'सुखी?' विद्रूप से रानी के अधर फड़क उठे। उसने कहा—'तो क्या यही सुख है?'

'सुख तो यही है रानी। आनन्द वास्तव में कुछ और है।'

रानी ने दृढ़ता से कहा—'किन्तु हम गुलाम हैं'...'

'यह तो ठीक है,' विनोद ने बात काटकर कहा—'किन्तु यह तो अन्तिम उत्तर नहीं। चाहे मनुष्य स्वतन्त्र हो, चाहे गुलाम, जहां उसकी शारीरिक वासनाओं का प्रश्न है वहां वह समान है। अगर शासक प्यास लगने पर पानी नहीं पिए नो वही हाल उसका होगा जो प्यासे शासित का। शरीर तो दोनों का एक है। यदि दैहिक कार्य रोक दिए जाएं तो गुलाम क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकता।'

रानी निरुत्तर हो गई। विनोद ने बिलकुल ठीक कहा था। यदि गुलाम को भूख लगनेवाली चेतना है तो मनुष्य-शरीर में होनेवाली समस्त चेतना का वह उत्तराधिकारी है। यदि यह न होता, तो फिर...फिर वह किस एकता और साम्य के वल पर अपने को स्वतन्त्र करना चाहता?

गुलामी और आज़ादी के लिए सबसे पहले एक शरीर की आवश्यकता है, मनुष्य की देह की, जिसके बिना न कला है, न विज्ञान। उस शरीर का प्राकृतिक नियम है वासना का वेग और फिर वह भी एक भूख है जिसे पूर्ण करना, मिटा देना, मनुष्य का सहज स्वभाव है।

रानी ने पराजित होकर स्नेह से उसकी ओर देखा। विनोद मुस्कराया। देर तक वे चुप बैठे रहे, चोरी-चोरी एक-दूसरे को देखते रहे और फिर दोनों ही ऐसे परिचित-से हो गए जैसे दोनों में कोई भेद न था। विनोद का हृदय भीतर ही भीतर बज उठा। हवा का ठंडा झोंका प्राणों में एक स्पन्दन-सा भर गया। उसने कहा—'रानी!'

रानी ने कुछ नहीं कहा। केवल उसकी ओर देखा और बड़े-बड़े नयनों में एक तरल-सी मुस्कराहट छा गई। क्षण-भर में जैसे वह सचमुच व्याकुल हो उठी थी।

विनोद ने रानी का हाथ पकड़कर उसे धीरे से दबा दिया। रानी के मांसल कपोलों पर एक लाल रेखा कुटिल गति से सरककर कानों के पीछे जाकर खो गई। वह

कुछ उन्मन थी। विनोद इसे देखकर भी देख नहीं पाया, क्योंकि उसने उसे न देखने में ही श्रेय समझा।

रानी निर्विवाद नीरवता से खड़ी रही। फिर उसने उसकी ओर देखा। विनोद हार चुका था। एक बार रानी के मन में आया—कैसा अपमान? कैसा प्रतिशोध? क्या यह सौन्दर्य, यह प्रकृति का अपरूप उच्छृङ्खल कोष, केवल अपनी प्रतिहिंसा में खो देना होगा।'

अचानक ही नारी का हाथ में पुरुष के हाथ दब उठा—एक मांसल दबाव, जिससे रोम-रोम जल उठे।

हठात् रानी चैतन्य हो गई।

विनोद को आतुर होते देखकर रानी ठठाकर हंस पड़ी। विनोद भय से दो पग पीछे हट गया। वह रानी के इस अनुचित व्यवहार को तनिक भी नहीं समझ सका। क्षण-भर ठिठका-सा खड़ा और उसकी आंखों के नीचे एक काली छाया-सी घूम गई। वह चुपचाप खड़ा रहा। फिर रानी ने उसे स्नेह से देखा। छाया धुल गई। पेड़ों की गंध से दूर-दूर तक कानन कांप रहा था। भारालस समीर आग बन गया, झीना हो गया, उसमें दम घुटने लगा। लम्बे-लम्बे पेड़ों पर चिड़ियों का कलरव मदिर सुहावना, जैसे बस अनन्त की क्षितिजपटी पर यह आनन्द का मनोहर उत्सव था। गूंजेगी हृदय की रागिनी कि जो मांसल उभार क्षण-भर दबकर दूसरे अन्तस्तल में ताप न भर दे, तो गोलाई की पूर्णता व्यर्थ है, उसकी कोमलता की कठोरता बेकार है। नयन हैं वे जो भूल जाएं कि समाज है कि संसार है, गलों में हाथ पड़े रहें। तारिका तारों में झांकती रहें और फिर उस आलिंगन में भर जाए प्यार, जैसे आकाश से ओस गिरती है और मृदुल दूर्वा पर मोती बनकर छा जाती है, जैसे अनन्त गरिमा का प्रस्फुटित स्फटिक टूट गया हो, टुकड़े-टुकड़े करके बिखर गया हो और सूर्य के उज्ज्वल प्रकाश की अपरूप किरणें फिर आकाश की ओर उठ गई हों कि पकड़ लें, पकड़ लें और अन्तराल में विस्फारित उन्माद राशि-राशि छा गया हो, फैल गया हो।

रानी भाग चली, विनोद उसके पीछे बेसुध-सा दौड़ पड़ा। राह में निर्झरी कल-कल नाद करती बह रही थी। रानी दौड़कर उसके किनारे उगी घास पर लेट गई और हंस उठी। एक बार विनोद ठठाकर हंस पड़ा, जिसकी प्रतिध्वनि करता हुआ पहाड़ भी एक बार बोल उठा। वृक्षों में सलज्ज मर्मर कांप उठा, जैसे प्रियतम की बातें सुनकर प्रेमपगी सुकुमारी वधू प्राचीनकाल में अपने वस्त्रों में अपने आपको ढंकने के लिए आतुर हो जाती थी। आकाश की रंगीन आभा निर्झरी के स्वच्छ जल में बहती हुई वृक्षों की पंक्तियों में चमक उठती थी। कितना महान् था वह अनिर्वचनीय सौन्दर्य का प्रसार! कितना नीरव था वह शान्ति का प्रवहमान तारतम्य कि यद्यपि वे उतना सब नहीं समझ पाए, फिर भी सब कुछ बहुत अच्छा लगा; क्योंकि उसमें इतना रूप था कि हृदय का वेग उद्वेलित हो गया। यह नहीं अतिचित्य उपोद्घात का आनुषंगिक उन्माद, कि न हो हृदय में व्याप्त दिशावधि मादकता का स्पर्श। ल गए दोनों क्षण-भर को सारा संसार—संसार जो घृणा का गीत है, गीत जिसमें वेदना का प्राधान्य है। रानी ने अपने जूते उतार दिए और ठण्डे जल में पैर डालकर बैठ गयी। हाथों से रोकने लगी उस

धारा का प्रवाह, जिसे पत्थर नहीं रोक पाए, जो उपलों पर भी मर्मर किए जाती है, कल-कल की अविश्रांत ध्वनि से आकाश और पृथ्वी के बीच नाद का क्षीण तार जोड़ देती है, जिस पर उंगली चलाने की आवश्यकता नहीं, जो अपने-आप मदिर-मदिर स्नायविक कंपन से गूंजा करता है, लहर, लहर…

विनोद घास पर लेट गया और उसने टकटकी बांधकर रानी के मुंह को देखा ! सुन्दर नहीं है रानी ! कौन कह सकता है ?

वासना ने दिखाया—कितनी मांसल है, कितनी चिकनी है और क्या चाहिए तुझे। उन्माद ने कहा देखता नहीं यह यौवन है, इसका वेग महानदी है, क्षीण निर्झरी की प्रतारणा में भूलनेवाला यह नहीं, यह कभी नहीं है। उच्छृङ्खलता ने कहा—पुरुष वह है जो नारी को अपने अंक में लेकर बेसुध कर दे।

रानी हंस रही थी। कितना खेद था उस किलकारी में, जैसे शैशव का अबोध लावण्य मुखरित यौवन की दोला पर आरूढ़ होकर झनझना उठा हो। हाथों के स्पर्श से लहरियों में मानो यौवन का रस बहा जा रहा था। वह कोमल हथेलियां, कितनी लालिमा है उनमें ? जैसे कोमल-कोमल किसलय का दल हो। घर और बाहर, कहां है ऐसा स्वर्ग ? यह साक्षात् हालीवुड की अभिनेत्री-सी, जो आंचल की सुधबुध भूले, खेल रही है, क्या इसके…इसके अधर उफान के लिए व्याकुल नहीं हो उठे हैं, क्या इसका यौवन अमृत बनना नहीं चाहता ?

विनोद ने रानी का हाथ पकड़कर कहा—'रानी ! वह देखो ! सुदूर वह सब कितना अच्छा लगता है ! क्या ऐसी ही शान्ति हमें कभी कैम्प में भी मिली है ? वहां असाम्य है, घृणा है, विद्वेष है; यह साम्य, यह स्वर्ग, यह आनन्द वहां कहां ? असम्भव ओह ! कितना उन्माद ! कितना सौन्दर्य ! और क्या चाहिए मुझे रानी ! आज मेरे जीवन का सबसे बड़ा वरदान मेरे साथ है। आज मैं कुछ नहीं चाहता। सब कुछ है, मेरे लिए सबसे बड़ा सौन्दर्य तुम हो, तुम मेरे लिए सबसे बड़ा आकर्षण हो।'

रानी ने हंसना बन्द कर दिया। आंखें तरेरकर विनोद की ओर देखा, जैसे उसे विश्वास नहीं था, वह रंग में भंग देखना नहीं चाहती थी।

विनोद समझा नहीं। उसने अचकचाकर कहा—'सच कहता हूं रानी ! तुम्हें विश्वास नहीं होता ? लेकिन तुम्हें यह नहीं चाहिए कि मैं विनोद हूं, मैक्सुअल नहीं।'

विनोद !' रानी ने गम्भीरता से अधिकार के स्वर में कहा। चारों ओर जैसे विष ही विष बरस रहा था। यदि मनुष्य का अपना हृदय कलुष से भरा है, तो संसार में रूप मिथ्या है, प्रकाश एक धोखा है। जो आंखें आनन्द देखती हैं वे अन्तस्सुख हैं, बहिरागत नहीं।

विनोद अवाक् देखता रहा। यह पल में क्या से क्या हो गया ? वह स्थिर दृष्टि से अवरुद्ध-सा रानी की ओर देखता रहा।

'विवाह करोगे ?' रानी ने व्यंग्य से पूछा।

विनोद ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसका मन खट्टा हो गया।

रानी हंसी। उस हंसी में घृणा का विष था, जैसे उसकी आत्मा की परितृप्ति संसार का सबसे बड़ा अपमान था। विनोद विक्षुब्ध-सा देखता रहा। वह रानी के इस

भयानक परिवर्तन को देखकर इतना अधिक अनुभव कर सका कि क्षण-भर के लिए ढूंढ़ने पर भी उसे कोई शब्द नहीं मिला। रानी ने हंसते हुए कहा—'ईसाई !' और वह पागलों की तरह हंस उठी। विनोद किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा देखता रहा। उसकी समझ से टकराकर सब कुछ लौट गया। उसने चारों दिशाओं से वही घृणा का हास्य टकराकर लौटता हुआ सुना जिसपर उसका अपमान द्रिम-द्रिम करके थिरक रहा था···।

31

कमरे में अंधेरा छाने लगा। नादानी ने उठकर स्विच दबा दिया। कमरा प्रकाश से जगमगा उठा। कामेश्वर ने सिगरेट को मुंह से लगाकर जला दिया और नादानी की तरफ बढ़ाकर कहा—'पीओ।' वह चुपचाप पीने लगी। कामेश्वर को एक डर-सा लगने लगा। रुपये तो उसने दे दिए थे ? और यहां न मनुष्य देख सकता है, न ईश्वर। रुपये की इस चहारदीवारी के भीतर भय ?

कामेश्वर ने देखा। नादानी ! फूल। सिर्फ फूल, जो रुपये का गुंजन सुनकर झूम उठती है, जो धन की किरण पाकर खिल जाती है और इन दोनों के न होने पर कठोर होकर बन्द हो जाती है। यह न दांत से कटती है, न पैरों से कुचली जाती है, क्योंकि पत्थर जिस दिन रुंद-रुंदकर धूल बन गया फिर उस पर पैर रखने में आदमी घबराने लगा।

ज़मीन पर फर्श वैसे ही बिछा हुआ था। कामेश्वर के दिमाग में विचार आया कि विवाहित के पास अपनी चोरी छिपाने को एक पति होता है, वेश्या के पास रुपया। नादानी एक गम्भीर व्यवस्था से भरकर उसे देख रही थी, लेकिन आज कामेश्वर कठोर था। वह अपना जाल फेंकने को उठी। एक-दो पग, छूम-छननन-छननन······

कामेश्वर को याद आया, एक दिन इसी तरह इन्दिरा इसी अदा से कॉलेज में कला के लिए नाची थी। उस दिन भी नाच पर टिकट लगा था और लड़कों के दिलों पर छुरी चल रही थी। लेकिन उसकी बहिन तो कुमारी है। पवित्र !

नादानी देख रही थी, कितना सुन्दर, कितना अच्छा, लेकिन अपना जीवन बरबाद कर रहा है, संसर्ग मात्र से पतित समझने के लिए उस विश्वास की आवश्यकता है जो भीतर घुन बन कर समा जाए। कुचला हुआ फूल अपने को देवता के चरणों पर चढ़ने योग्य नहीं समझता।

थोड़ी देर तक नादानी नाचती रही। उसकी सिगरेट ऐश ट्रे में रखी-रखी एक गंदी बदबू फैलाकर, जलकर खत्म हो गई। राख की ढेरी पड़ी रह गई। किंतु कामेश्वर का पुरुष आज नहीं जागा। उसने पास आकर कामेश्वर के कंधे पर हाथ रखकर उसे शंकित नयनों से देखा। कामेश्वर के बदन में बिजली-सी दौड़ गई, जैसे कीड़ों ने, गंदे कीड़ों ने, उसे छू दिया। दोनों ने एक-दूसरे को देखा। नादानी के मुंह पर युगान्तर से पुरुष को हरानेवाला नारीत्व अंकित था, कि यह क्या है ? और कामेश्वर के मुंह पर

असुख तन्मयता थी कि यह क्यों है ?

'नादानी !' कामेश्वर कहने लगा, मैंने तुम्हें लूटा है, मगर मैं नहीं जानता तुम क्या हो ?'

'मैं ?' उसने हंसकर कहा—'वेश्या हूं ।'

'तो क्या तुम स्त्री नहीं हो ?' कामेश्वर का स्वर गले में खिंच आया ।

'नहीं,' नादानी ने कहा—'मेरे सतीत्व का मतलब इतना सरल नहीं जितना घरेलू औरतों का ।'

'यानी ?' कामेश्वर ने चौंककर पूछा ।

नादानी चुप हो रही । फिर रुककर कहा—तुम संसार की सब स्त्रियों को एक ही सा मानते हो ?'

कामेश्वर ने स्वीकृति में सिर हिलाया ।

'अपनी बहिन को भी ?'

'चुप रहो !' कामेश्वर गरज उठा ।

'मैं चुप रहूं ?' वह हंस पड़ी, 'मैं तो सदा चुप ही रही हूं । बताओ ? तुम्हारी बहिन सुन्दर है ? सज्जाद कहता था, वह बड़ा अच्छा नाचती है ?'

'केवल संगीत-सम्मेलनों में ।' कामेश्वर मन ही मन सज्जाद पर क्रुद्ध हुआ । नादानी कहती गई—'सज्जाद कहता था वह बड़ी सुन्दर है । तुम कहोगे ये गंदी बातें हैं । मगर इस गन्दगी में तुम पैदा हुए, तुम्हारी बहिन पैदा हुई । क्या तुम्हारी बहिन का कोई प्रेमी भी है ?'

कामेश्वर क्रोध से उठ खड़ा हुआ । उसे वह तीखी दृष्टि से देखता रहा ।

नादानी ने कहा—'सच कहो बाबू ! तुम मेरी बात से नाराज़ हुए हो ? लेकिन मैं तो वेश्या हूं ।'

उसे न कोई दुःख था, न सुख; न संकोच की पीड़ा, न अवसाद की तड़प । वह खड़ी थी, कि बस वह खडी थी । सुन्दर थी, मगर जैसे पत्थर की मूर्ति ।

कामेश्वर के कन्धों पर हाथ रखकर नादानी ने कहा—'कामेश्वर ! मैं एक रिक्शेवाले की तरह हूं । पैसे के लिए दौड़ लगाते-लगाते थक गई हूं । अब मेरे फेफड़ों में दर्द होने लगा है । अब मैं सदा के लिए चली जाऊंगी ।'

कामेश्वर चुप नहीं रहा । उसने पूछा—'कहां जाओगी नादानी ?'

'ओह ! अपने रुपयों की याद दिला रहे हो ? नहीं, सो तो पाई-पाई करके चुकाकर ही जाऊंगी । लेकिन मैं उस सज्जाद को नहीं सह सकती । वह एकदम घृणित है । नहीं-नहीं, तुम्हारी पहली मुलाकात के बाद ही मेरे भीतर...'

कामेश्वर समझा नहीं । वह मुस्कराया । वेश्या भी एक पतिव्रता का ढोंग करती है । उसने व्यंग्य से कहा—'क्यों ? उसके रुपये पर क्या बादशाह की मुहर नहीं होती ?'

'दुनिया की हरेक औरत हरेक आदमी को नहीं चाहती बाबूजी,' उसने नम्र होकर कहा । एकाएक वह ज़ोर से बोल उठी—'बरसात में गन्दी नालियों में बहते पानी को एक गड्ढे में जमा करना ज़रूरी हो जाता है, वैसे ही तुमने मुझे बना रखा है,

तुमने मच्छरों की भन-भन सुनकर कदम दूर ही रखा। कामेश्वर ! तुम आजकल के पढ़े-लिखे आदमी हो, तुम···तुम भी मुझे नहीं उवार सकते ? बोलो। जो तुम दोगे वही खाऊंगी, जो दोगे वही पहनूंगी, मगर यह नरक मुझे जीवित में ही मुर्दा किए हुए है, मुझे इससे वाहर ले चलो।'

वह क्षण-भर चुप रही। कामेश्वर निश्चल-सा बैंठ गया। उसका कोई अंग हिल नहीं सका। नादानी फिर कहने लगी—'जवाव नहीं दिया ? मैं जानती हूं कि जिस जगह रंडी और भिखारी होते हैं वहां आदमी कमीना और कायर होता है। मैं विवाह नहीं चाहती। तुम मुझे रख लो।'

कामेश्वर सिहर उठा। उसको देखकर नादानी हंस दी।

'रख लो, इसलिए कहा कि मुझमें और विवाहिता स्त्री में अधिक फर्क नहीं है। बताओ कामेश्वर ! एक वार की चोरी उसे सदा के लिए जेल में रख देती है, मुझे बार-बार नई चोरी करनी पड़ती है। अगर तुम्हारी बहिन को डाकू पकड़कर बेइज्जत करें, तो तुम क्या बहिन को कसूरवार सावित करोगे ? लेकिन तुम मुझसे नफरत कर सकते हो; क्योंकि तुम्हें मजा जो आता है वावू !'

वह ठठाकर हंस पड़ी। उसकी हंसी से कामेश्वर झुलसने लगा। जाने क्यों उसमें प्रतिवाद करने की शक्ति बिल्कुल नहीं बची थी।

'तुम अबोध हो कामेश्वर ! मुझे तुमपर कोई गुस्सा नहीं है,' नादानी ने मां की तरह कहा—'तुम नदी में नहाते हो, मगर तुम तो गन्दे नहीं होते, उल्टे बहनेवाली नदी गंदी हो जाती है ? क्या न्याय है तुम्हारा ? और पाप को दूसरों पर मढ़ने के लिए शहर-भर के गन्दे नालों को नदी में लाकर छोड़ने का प्रयत्न करते हो ?'

मगर कामेश्वर ने कुछ नहीं कहा। दोनों चुप हो रहे। आंधी आई थी। तूफान उठा था। तब नदी फुंकार उठी थी और पेड़ गरजकर उखड़ गया था, मानो आने दो, जो नीचे आएगा, दबकर मर जाएगा। और पेड़ गिर गया, पानी में झकोरे खाने लगा। फिर आंधी रुक गई, मृदुल कोमल लहरियां बेजान पेड़ को धीरे-धीरे सहलाने लगीं। दोनों को एक-दूसरे का ज्ञान न रहा। दोनों बैंठे रहे। दोनों बहुत देर तक चुपचाप बिना बोले बैंठे रहे। घड़ी ने धीरे-धीरे मौत के डंके की तरह ग्यारह बजा दिए। बाहर घना कोहरा गिर रहा था। दुःख-सुख की भावना की लघुता से परे वे दोनों बेमतलब-से उस घुटन में बैठे रहे। कामेश्वर ने धीरे से समंदर में डूबते-डूबते सांस लेने को सिर उठाया। नादानी की आंखों में आंसू डबडबा रहे थे।

'नादानी !' कामेश्वर चीख उठा।

'मुझे माफ करो कामेश्वर ! कहना नहीं चाहती थी, मगर कह गई, क्योंकि मेरा-तुम्हारा सम्बन्ध अब एक कारण से बहुत गहरा हो गया है। तुमने बुरा तो नहीं माना ?'

'नहीं नादानी ! बाढ़ कब तक रुकेगी ? तुम देवी हो।'

'मैं ? नहीं, नहीं,' वह रोने लगी—'काश मैं भी कुछ होती···मैं कुछ नहीं हूं। मैं···मैं सिर्फ एक घिनौना कीड़ा हूं।'

'शश···' कामेश्वर की आत्मा विद्रोह कर उठी, 'तुम कीड़ा नहीं हो नादानी,

तुम वह हो जो मैं सोच भी नहीं सकता था ।'

वह उसके हाथ को सहलाने लगा । 'तुम्हें दुनिया ज़हर कहती है, मगर तुम अमृत हो । सब कहते हैं, क्या करें ? दुनिया ही बुरी है । मगर उनका जीवन इतना गंदा है कि ये उसे सह सकने को पुण्य का सुपना देखा करते हैं । आदमी पैदा होता है तब साम्य और एकरूपता लेकर, किन्तु उसके माध्यम ने, उसकी बर्बरता और घमण्डी सभ्यता ने उसे अधूरे द्वंद्वों में बाध दिया है ।'

'तुम औरत को नहीं जानते,' नादानी कहने लगी । उसकी आवाज़ दृढ़ थी—'नारी की गहराई को जताने वाली उसकी उठान होती है । जिस जवानी की औरत को शर्म होती है उसे ही वह दो बच्चे पैदा करके सबके सामने खोल देती है, नहीं तो अधेड़ होकर भी इसके लिए तैयार नहीं होती । जैसे-जैसे नारी के यौवन की गांठ कठोर होने लगती है, उसे कठोर नर के प्रति एक आकर्षण-सा हो जाता है, किन्तु मां होने के बाद उसी औरत को, अधेड़ होने पर, अपने ही पुत्र के यौवन पर अविश्वास हो उठता है । नारी को बीते यौवन के प्रतिएक करुणामयी भूल की अनुभूति होती है और नई लड़कियों पर संदेह, उनके यौवन से घृणा । उसे अपने बेटे से स्नेह होता है, पति के लिए एक गई-गुज़री कहानीका अल्हड़ स्पंदन, लेकिन पति के मर जाने के बाद उसे लगता है कि विवाह एक बांध था, पुरुष मायावी और तब भी वह चाहती है कि बुराई के खज़ाने उसके बेटे को एक औरत मिले जो पुरुष के ही नहीं अपने यौवन से भी हारी हुई हो ।'

'तुम मेरी श्रद्धा चाहती हो नादानी ?' कामेश्वर कह उठा—'किन्तु बदले में कुछ दोगी नहीं ? उलाहना यह है कि तुम सब कुछ त्याग दोगी ? तुम नदी के हरे-भरे एक किनारे से उठी लहर हो । दूसरे किनारे से टकराकर उसे उपजाऊ बनाती हो । नदी तुम्हारी है, किनारे तुम्हारे हैं । तुम्हारी मदद से प्यास बुझती है । तुम्हें एक बालक मिल जाए तो पति भी दूर हो जाएगा । तुम पुरुष को अपना खिलौना समझती हो ?'

'नहीं, नहीं,' नादानी चीख उठी—'तुम स्त्री को दासी बनाना चाहते हो ? हमारी चीख में तुम्हारा समाधान है, हमारी हंसती सिसक में तुम्हारी विजय । हम अपराध सहती हैं, स्वयं रो लेती हैं इसलिए कि पाप से घृणा करती हुई भी आगे आती हैं अपराध स्वीकार करा देने, किन्तु होती हैं हम ही अधिक अपराधिनी । पुरुष की भूल की भांति नारी की भूल क्षणिक नहीं होती ।'

कामेश्वर ने सिर हिलाकर कहा—'मैं नहीं मानता ।'

'तब तुम समाज में गुलामों की सत्ता का न्याय देते हो । नारी सन्तान को प्यार करती है, इसलिए कि उसके यौवन की क्षमता भूल नहीं पाती । नर और नारी का जो अव्यक्त और अनबूझ भाग है वही शिशु है । युगान्तर से यौवन सदा निर्व्याज है । हम दोनों एक-दूसरे को धोखा देने का प्रयत्न करते हैं । दोनों एक-दूसरे को धोखा दे रहे हैं और अन्त में दोनों दो आवारों की तरह लड़-लड़ाकर फिर एक-दूसरे से मिल जाते हैं ।

दोनों ठठाकर हंस पड़े । अब वे फिर पास-पास थे । नादानी के पास कामेश्वर, कामेश्वर के पास नादानी ।

'सचमुच तुम्हें कोई बांध नहीं सकता, तुम स्वतंत्र हो, तुम मां हो...'

नादानी ने काटकर कहा—'मां होने का गर्व किसलिए कामेश्वर ? मैं जानती हूं, मां क्या होती है, किन्तु मुझे गर्व नहीं है। तुम कामेश्वर ! तुम पिता का हृदय नहीं जानते ?'

कामेश्वर सोते से जाग पड़ा। वह बोला—'तुम जानती हो मां का हृदय ?'

वह मुस्करा उठी। धीरे से वह मधुर, सुगंधित नारी बोली—'मैं मां बनने वाली हूं। तुम्हारा-सा बच्चा होगा।'

कामेश्वर कांप उठा। उसका बच्चा एक वेश्या के गर्भ से ? समाज उसे न जानेगा, कोई नहीं और उस अच्छे वंश के बीज की भी ईश्वर रखवाली नहीं करेगा। गुलाब जंगल में उगाना मना है, वह तो बगीचों की शोभा है। कामेश्वर इतना रुपया भी नहीं दे सकेगा कि बालक उससे पल सके। साथ वह उसे रख नहीं सकता। सिवाय खून के और कोई छींट बात नहीं रहती। मगर वह पुरुष अब पिता हो जाएगा ? उसे एक बच्चे का पिता होना पड़ेगा ? उसके हृदय में एक गुदगुदी मच उठी। इस नारी ने मेरा बीज पकड़ लिया है और वह मुझसे घृणा होते हुए भी इतने सहज स्नेह से उसे सहेजे हुए है। वेश्या बच्चों का गर्भपात नहीं करातीं, कुलीन वर्गों की स्त्रियों का ही यह भूषण है।

उसे उस असहाय नारी के साहस पर गर्व हुआ, अपनी कमज़ोरी पर शर्म। यह नारी जो धर्म, ईश्वर, समाज, सबसे मानवता की आंखें खोलने को टक्कर लिए खड़ी है, वंश परम्परा से अपनी बलि आदमी की घमण्डी सभ्यता के सामने दे रही है···और कामेश्वर एक भूकंप के गिरते महल में फंस गया था। एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते ही पीछे की छत गिर जाती थी।

उसकी रचना यदि लड़की हुई तो वह भी एक दिन अड्डे पर चढ़ेगी और यदि लड़का हुआ तो आवारागर्दी में पड़कर कीड़ा बन जाएगा। वह पिता होकर भी कभी उस बालक को दुलार न दे सकेगा। उसकी लड़की वेश्या बनेगी ? नहीं···नहीं··· नहीं···

उसने नादानी को देखा और जैसे सब पशुओं में मादा के गर्भ धारण करने पर नर में अपने-आप एक सहानुभूति और प्यार उपज आता है, वैसे ही संकोच का उसने नादानी के प्रति अनुभव किया।

इस मातृत्व में इसका हृदय सब बन्धनों से परे है। समाज इसके पैरों की धूल भी नहीं, ईश्वर इसकी छाया की झलक तक नहीं।

समाज इससे घृणा करता है क्योंकि यह झूठ को झूठ के रूप में नहीं रख सकती।

कामेश्वर ने हठात् पूछा—'नादानी ! तुम्हें सब यह किसने सिखाया ? आज तक अनेकों स्त्रियां मिली हैं, किन्तु वे सब सिर्फ मादा थीं, तुमने यह सब कहां से सीखा ?'

नादानी ने भोली-भोली-सी आंखें उठाईं। फिर कहा—'मैं एक विधवा हूं, जिसे चचा ने धोखे से कुम्भ के मेले में छोड़ दिया था। मैं नवें दर्जे तक पढ़ी थी। उस भीड़ में ही मैं कुछ गुण्डों के हाथ पड़ गई। प्रारम्भ में मुझे अपने पहले के नीरस जीवन की

तुलना में यह जीवन रस का स्वर्ग लगने लगा। मैं उसी में बह गई और तब से मैं ऐसे ही जी रही हूं। कहानी-उपन्यास पढ़ने का मुझे सदा से शौक रहा है। मैंने प्रेमचन्द का 'सेवासदन' भी पढ़ा है। एक बार मन किया, उनसे मिलकर वेश्याओं के भविष्य पर बातें करूं, किन्तु फिर नहीं गई। लेखक तो था, क्या जाने असलियत में मिलता भी या नहीं। मुमकिन है टाल देता।' फिर वह हंसी और बोली—'मैं जानती हूं, वह गरीब था। बेचारा क्या करता?'

कामेश्वर ने देखा। वह एक बार मुस्कराई और फिर कह उठी—'अब तो मैं सोच भी नहीं सकती कि मैं यह जीवन छोड़ सकती हूं। क्या होगा छोड़कर? सब ठीक है। रंडियों को शर्म कैसी? अब तो एक ही अरमान है। तुम्हारी लड़की होने पर उसको पाल-पोसकर बड़ी करूं और बुढ़ापे के लिए एक सहारा तैयार करूं।'

कामेश्वर ने फूत्कार किया—'तुम उसे भी अपनी जैसी बना दोगी?'

'नहीं तो?' आंखें फाड़कर नादानी ने कहा—'अगर तुम ऐसा नहीं चाहते, तो पैदा होते ही तुम उसे ले जाना, पाल लेना।'

कामेश्वर फिर दुविधा में पड़ गया। नादानी हंसी। कहा—'तो मैं क्या करूं? न इधर की बात न उधर की। ठठाकर सड़क पर फेंक दूं?' फिर एकाएक बर्बरता से उसने कहा—'रंडी किसी की रिश्तेदार नहीं होती। यह तुम्हारी लड़की नहीं होगी। यह सिर्फ मां को जान सकेगी। पन्द्रह साल की ही तो बात है। आना फिर। तुम्हारी लड़की भी जवान हो जाएगी।' और कुरूपता से ठठाकर हंस पड़ी। कामेश्वर हताश-सा सिर झुकाकर सोचने लगा।

रात का एक बज रहा था। धुंधला चांद खिड़की से बाहर कहीं दूर चमक रहा था और घोंसले की दो चिड़ियों की तरह वे सिमटे-से बैठे थे जैसे समय बढ़ नहीं रहा था। नादानी वेश्या नहीं थी, कामेश्वर भोगी नहीं था, कहीं कुछ नहीं था, केवल अंधेरा, शून्य था—निस्तब्ध शून्य, वह शून्य जिसमें सब काली-गोरी समस्याओं का एकत्व होकर मुस्करा उठता है, जहां समाज के पाप और पुण्य, प्रकृति और पुरुष, आनन्द और सत्य को बांध नहीं सकते, असमर्थ रह जाते हैं, जहां हरेक कर्मक होता है, जहां कोई किसीको लूट नहीं सकता···यद्यपि सबके कन्धे अपने-आप मिले रहते हैं—कामेश्वर···नादानी···बच्ची···कुछ नहीं।

32

उस समय कांग्रेस के व्यक्तिगत सत्याग्रह खूब जोरों से हो रहे थे और सरकार द्वारा लड़ाई का चन्दा लोगों से बलात् इकट्ठा किया जा रहा था। रायबहादुर हीरामल ने लड़ाई का चन्दा जमा करने के लिए टेनिस का मैच करवाया था। भारत-चैम्पियन का आस्ट्रिया के किसी खिलाड़ी से, जो वहां का चैम्पियन था, आज मैच था। लेकिन लीला की तबीयत नहीं लग रही थी। वह उन्मन और बेचैन थी।

अंग्रेज़ और ऐंग्लो-इण्डियन उस यूरोपियन को बढ़ावा दे रहे थे, किन्तु भारतीय खिलाड़ी को भारतीय भी बढ़ावा देने में हिचक रहे थे, क्योंकि उनपर अंग्रेज़ों का दिया सांस्कृतिक दोगलापन लद रहा था। उस समय भारत और आस्ट्रिया में कोई भेद न था। आस्ट्रिया पर जर्मन राज कर रहे थे और वह गुलाम था।

लीला देखती रही। कैप्टेन राय दूर अपने साथी डाक्टरों के साथ बैठे पाइप पी रहे थे और कहकहे लगा रहे थे। वह सेना के जीवन को जानते थे, तभी उनके स्वर में वह भारीपन था।

लीला याद करने लगी। वहीं मिलेगा वह। सुनकर चौंक उठा था। पूछा थां—'क्यों मिलना चाहती हो? वह स्थान तो बिलकुल एकान्त है?'

लीला ने कहा था—'इसीलिए तो।' जैसे सारी लज्जा, मर्यादा अपने आप छूट गई।

भगवती का मुख क्षण-भर को आरक्त हो गया और उसने निर्जीव स्वर से कहा था—'आऊंगा।' लीला सिहर उठी।

उसने बियरर को बुलाकर चाय मंगवाई। चाय पीते हुए उसने देखा, भारतीय ने दो सेट ले लिए थे। गोरों के मुंह पीले पड़ने लगे थे।

लीला देखती रही, यानी कि वह नहीं देखती-सी देखती रही, क्योंकि उसकी आंखों में कोई और ही खेल रहा था, जिसे वह आज तक तनिक भी नहीं समझ पाई।

सांझ हो गई थी। अन्तिम सेट होने लगा। लीला चाय पीती रही, जीवन यही है। उसने सोचा—'यहां नारी अप्सरा मानी जाती है, क्योंकि यहां सभी इन्द्र बंनने का दावा करते हैं।' लीला ने चाय समाप्त कर दी। इधर-उधर देखा और वहां से उठकर भटकने लगी। एक ऐंग्लो-इण्डियन लड़का अपनी चाची को बैठा-बैठा चिढ़ा रहा था। रायबहादुर हीरामल नीरो की तरह हंस रहे थे। उनका हंसना उपयुक्त था, क्योंकि वह अंग्रेजी कपड़े पहनकर भी अंग्रेज़ी भाषा बहुत कम समझते थे।

कैप्टेन राय उठ गए थे। लीला राय ने देखा अंधेरा छा गया था। खिलाड़ी कोट पहन रहे थे। लीला 'बार' के पास पहुंच गई। देखा—ग्रैंड होटल के 'बार' में कैप्टेन राय पी रहे थे और उनके पास एक ऐंग्लो-इण्डियन लड़की बैठी व्हिस्की से छोटा गिलास भर रही थी।

निराशा से ग्लानि खेलने लगी। लीला उधर नहीं देख सकी। आज मां होती तो क्या डैडी यह सब कर सकते थे? किन्तु लवंग के भी तो मां नहीं है, मां तो सिर्फ भगवती के है।

लीला मोटर में आ बैठी और उसने गाड़ी स्टार्ट कर दी। कैंट की दूकानों का-सा वैभव शहर की दुकानों में नहीं होता। वह और ही बात है जो बलिष्ठ गोरों के साथ मांसल युवतियों के अंग-अंग प्रकाशन में होती है। उनके पैर पढ़ते हैं, जैसे संसार उन्हीं के लिए है और भारतीय कदम पड़ते हैं जैसे अब और कहां जाएं? लीला चकरा गई। गाड़ी चलती रही। दो-चार सोल्जर साइकिलों पर चले जा रहे थे और उनके साथ दो रंगी हुई लड़कियां साइकिलों पर चली जा रही थीं। लीला ने देखा, उन लड़कियों की पिंडलियां, कटि और वक्षस्थल बहुत ही आकर्षक थे। उसे कोफ्त हुई। ये लड़कियां

रुपया पाने के लिए अपनी सुन्दरता को बनाए रखती हैं। कार कैंट से निकल गई। अब मोटर-आरूढ़ा ने देखा कि वही हिन्दुस्तानी अड़ियलपन था, कोई इक्के में आ रहा है, कोई सिर पर गट्ठर रखे चला जा रहा है और इने-गिने बाबू भी अपनेपन का स्वांग रचाकर चले जा रहे थे।

लीला के हृदय में एक चीज़ चक्कर काटने लगी। मोड़! वही मोड़!!

खट से मोटर मोड़ पर रुकी। लीला ने बत्ती बुझा दी। अंधकार गहन हो गया। एक छायामूर्ति इधर-उधर घूम रही थी। वह व्यक्ति पास आ गया। लीला मोटर में से उतर आई। वह कांपते स्वर से बोल उठी—'भगवती!'

आगन्तुक ने गम्भीर स्वर से कहा—'लीला!'

लीला अंधकार में ही सिहर उठी।

दोनों एक पत्थर पर जा बैठे। हवा मतवाली हो रही थी। ठंड पड़ रही थी। दोनों एक पेड़ की छाया में थे। कुछ ही देर बाद कुहरे ने मोटर को धुंधला कर दिया।

लीला कांपते-कांपते बोली—'तुम आ गए भगवती! मुझे तुम्हारे आने की तनिक भी आशा न थी। मैं तो समझी थी, मैं तो समझी थी···जाने दो, तुम आ गए।'

उसने एक लम्बी सांस ली। भगवती ने पूछा—'तुम इतनी उत्तेजित क्यों हो?'

'उत्तेजित नहीं हूं। सच, मेरा हृदय आज फट जाएगा। इतने दिन उसमें केवल तुम थे और उसे संकुचित करनेवाला अभिमान था, आज उसमें हर्ष भी अकुला उठा है। ओह! पागल!'

'पगली!' दोनों हंस पड़े, इतने धीमे कि वे ही एक-दूसरे को सुन सके।

भगवती कहने लगा—'लीला! आज मैं व्याकुल हुआ जा रहा हूं। जानती हो, मैंने जीवन में सब तरह के स्वप्न देखे हैं, किन्तु यह कभी नहीं देखा कि कोई मुझे प्यार करेगा और एक दिन कोई मुझसे अभिसार करने आएगा। ओह, कितना परिवर्तन! न जाने कितने तूफान झेलने हैं कि आज मैं यहां आ ही गया हूं। तुम एक कैप्टेन की लड़की और कहां मैं एक···जाने दो लीला! जीवन की विषमताएं सदा बनी रहती हैं। तुम टूर्नमिंट हो आईं। तुम कुछ जल्दी कैसे आ गई हो?'

'जी नहीं लगा वहां,' लीला ने हंसते हुए कहा। भगवती ने देखा, लीला की आंखें जल रही थीं। मुंह पर वासना की एक मीठी हिलोर थी। शरीर जैसे ताप से फुंक रहा था। लीला ने देखा, आज भगवती अभिभूत हो रहा था। वह उसे निरन्तर पलक डाले विना देख रहा था। दोनों देर तक एक-दूसरे को देखते रहे।

भगवती ने लीला का हाथ पकड़ लिया। लीला ने कुछ आपत्ति नहीं की। फिर दोनों के होंठ एक-दूसरे की ओर झुकने लगे। दोनों ने अपने होंठों के ऊपरी भागों पर गर्म श्वासों का अनुभव किया। अचानक ही भगवती हट गया। लीला ने हठात् आंखें खोल दीं। 'क्षमा करो लीला' 'भगवती कह उठा—'तुम मेरी कभी नहीं हो सकोगी। फिर इस क्षणिक सुख का क्या होगा? इस व्यभिचार के बाद भी समाज वैसा ही रहेगा। मुझे क्षमा करो। मैं क्षणिक आवेश में क्या से क्या कर गया होता! उफ़!'

'भगवती,' लीला ने रुआंसी होकर कहा—'तुम यों मेरा अपमान नहीं कर सकते।'

'अपमान !' भगवती ने कहा—'लीला, यदि नारीत्व के प्रति श्रद्धा प्रकट करना अपमान है तो वह वैसा ही बना रहे। क्या तुम अपने-आपको मशीन समझती हो, जिसे पुरुष अपने आनन्द के लिए जब चाहे चला ले ? नारी भूमि है, पुरुष बीज़ है। केवल प्रतिकृति के लिए जो प्रकृति ने अपना नियम बनाया है, मैं नहीं चाहता कि हम उसका दुरुपयोग करें।'

लीला गम्भीर हो गई। उसने व्यंग्य से कहा—'ब्रह्मचारी !'

भगवती कहता गया। आज मैं तुम्हारे साथ पहली बार बैठा हूं। नारी के इतने निकट मैं कभी नहीं बैठा था। आज वही पुरुष की आदिम निर्बलता मुझमें झलक उठी थी। लीला ! तुम्हें विस्मय और क्रोध दोनों ही सता रहे हैं, किन्तु तुम सोच भी नहीं सकतीं कि अपने ऊपर मैंने कितना संयम करना सीख लिया है। एक दिन किसी को मोटर में बैठे देखकर मेरी इच्छा होती थी कि मैं भी बैठूं। किन्तु अभाव ने मुझे निराश कर दिया। उस निराशा की ग्लानि में मैंने अपनी तृष्णा के अहंकारी को कुचलना प्रारम्भ किया। तुम युवती हो। तुम्हारे हृदय में रोमांस है। किन्तु समाज ने मुझे उससे वर्जित कर दिया है। मैं तुम्हारा अपमान नहीं करना चाहता।'

'भगवती ! तुम भूल करते हो। किसी भी नारी को किसी भी नर को स्वतंत्रता से प्रेम करने का अधिकार है। समाज उनके हृदयों को नहीं बांध सकता।'

'समाज व्यभिचार की आज्ञा देता है। प्रेम को यदि समाज स्वीकार नहीं करता तो वह भी केवल व्यभिचार है। समाज ने वास्तव में हमारे हृदयों को बांधा है, जीवन को रुद्ध कर दिया है। मैं इस समाज में स्वच्छन्द प्रेम को ठीक नहीं कह सकता। यहां स्वच्छन्दता है ही नहीं। स्वच्छन्दता में कलंक का विषाद नहीं है। तुम जानती हो, विवशता क्या है ?'

'मैं स्त्री हूं, इसलिए यह समझना मरे लिए अधिक कठिन नहीं।'

'नहीं,' भगवती हंसा, 'तुम नहीं जानतीं। तुम्हें सब कुछ प्राप्त है, केवल यौन-वासनाएं अतृप्त हैं ! विवाह होने पर वह भी उतनी नहीं रहेंगी। लीला ! तुमने·· तुमने कभी भूख के बारे में भी सोचा है ?'

लीला मूक बैठी उंगली से ज़मीन कुरेदने लगी। भगवती भी चुप हो गया। वायु तेजी से भाग रही थी। ठंडी-ठंडी स्पंदनमयी चेतना उस अंधकार में आलोड़न-विलोड़न कर रही थी। एक ही स्वर व्याप्त हो रहा था। उस सन्-सन् की भयद ध्वनि में दोनों निस्तब्ध चितामय बैठे थे। दूर तारे रेंग रहे थे, धुंधले-धुंधले···

लीला ने कुछ देर बाद कहा—'भगवती, मैं तुम्हें समझ नहीं सकती।'

भगवती ने कहा—'समझ नहीं सकतीं ? ऐसा अद्‌भुत तो मैं निश्चय ही कभी नहीं हूं।'

लीला ने उससे फिर कहा—'जीवन में तुम कभी और भी इतने व्याकुल हुए हो ? मैंने तुम्हें तुम्हारे सुख-दुःख में देखा है, एकदम ऐसे चुप क्यों हो गए ?'

भगवती कराह उठा—'लीला ! जो मैं नहीं कहना चाहता था वह तुमने मुझे आज कहने को बाध्य किया है। मेरे जीवन में प्रेम की विवशता कभी नहीं आई थी। एक बार एक वेश्या ने मेरा नशा उतार दिया था, वह अब कहीं चली गई है। होती तो

अवश्य उसका आभार स्वीकार करता ।'

लीला चौंक उठी—'तुम ? वेश्या ?' भगवती हंसा। उसने धीरे-धीरे पूरी कहानी सुना दी। लीला अवाक् सुनती रही। भगवती ने कहा—'किन्तु विवशता ने मुझे कोमल बना दिया है। वह कोमलता भी एक ऐसी जड़ता बन गई है कि तुम्हें वह निष्ठुरता लग रही है। मैंने तुम्हारी उपेक्षा की। तुम्हें भूलने का प्रयत्न किया। मां का विषाद, गरीबी, इन्दिरा का स्नेह और अनेक रूपों में यह बहता हुआ जीवन; न जाने क्यों घृणा करके भी तुम्हारे स्नेह के आगे मन हार गया। मैंने तुम्हें भूलने का जितना प्रयत्न किया, उतनी ही तुम मेरे निकट आ गईं। मैंने हफ्तों तुम्हें चांदनी रात में मुझे बुलाते देखा है। एक दिन रात का एक बज गया और मैं बैठा-बैठा नहर के किनारे अपने हृदय को उस विराट् शान्ति में डुबा रहा था। लीला! स्वप्न कितने मधुर होते हैं, किन्तु जागरण कितना विषम! तुम्हारी प्रतिमा लैंप के धुंधलके में छाया बनकर मेरी आंखों के आगे नाचा करती थी। किन्तु वह शीशा टूट गया है। परीक्षा आ गई है, विद्यार्थी-जीवन का अभिशाप सिर पर मंडरा रहा है। एक ओर तुम थीं, ज़मींदार का प्रबन्ध था, स्वर्ग था, किन्तु मेरा अपमान था, पराजय थी, घृणा थी; दूसरी ओर मेरा जीवन था नरक! लेकिन मुझे क्षमा करो लीला! स्वार्थ ने मेरे प्रेम को पराजित कर दिया। मैंने देखा कि मेरे पास यह साफ कपड़े भी नहीं होते, तो तुम मेरी ओर कभी भी नहीं देखतीं। तुम लीला! किसी आई० सी० एस० से विवाह करके पार्टियों में घूमोगी और मैं जो स्कालरशिप और ट्यूशन के बल पर पढ़ रहा हूं, विना निर्ममता के कुछ नहीं होऊंगा। पुरुष का सुख धन है, स्त्री का सुख धनी पुरुष। सारा प्रेम यहीं समाप्त हो गया। किन्तु मेरे लिए एक यह तपस्या थी। मैंने जहां-जहां तुम्हारा नाम लिखा था वहीं से मिटा दिया। तुम्हारे नाम से घृणा करने लगा।'

भगवती चौंक उठा। लीला हाथों में मुंह छिपाए सिसक रही थी। उसने रोते-रोते कहा—'भगवती! यह तुमने क्या किया?'

भगवती ने निर्विकार स्वर से कहा—'मेरी अंधेरी रात मेरे लिए अधिक मूल्यवान् है। किन्तु तुम दूर की तारा बनकर टिमटिमा उठी थीं। मेरा अपनेपन का स्वार्थ उतना ही उचित है जितना तुम्हारा प्रेम। 'लीला!' भगवती ने उसके हाथों को पकड़ लिया। वह घुटने के बल नीचे बैठ गया और उसने कहा—'लीला! मैं जानता हूं कि धनी होने से ही तुम मानुषी नहीं हो, यह कहना ठीक नहीं। मैं जानता हूं कि तुममें नारीत्व की वही अमोल तृष्णा है। फिर भी मेरी अवस्था देखो। तुम मुझे प्यार करती हो, क्योंकि कोई स्त्री सचमुच इतना सब कुछ जानकर भी मुझे अपना बनाने का प्रयत्न नहीं करती। इसीलिए तुम्हारी दया चाहता हूं। मुझे क्षमा करो।'

लीला बिलख रही थी। उसने केवल एक बार कहा—'भगवती!'

भगवती उसके घुटनों पर सिर रखकर सिसक उठा। लीला ने देखा, वह अभिमानी जो कहीं नहीं झुका, सारी विषमताओं के रहते हुए भी पराजित हो गया था, क्योंकि लीला के स्नेह को उसने स्नेह के रूप में स्वीकार लिया था। लीला उसके बालों को अपने हाथों से सहलाती हुई कहने लगी—'तुम्हारा वास्तव में कोई दोष नहीं है। मैंने ही एक दिन अपने स्वार्थ के लिए तुम्हारी आग को भड़का दिया था और उसी के

प्रतिफल तुमने मुझे ठुकरा दिया है। लेकिन मेरी एक बात मानो। अन्तिम प्रार्थना है। बस, एक बार, मेरी ओर देखो !'

लीला ने अपने हाथों से भगवती का सिर उठा दिया और उसे देखने लगी। उसने उसकी दृष्टि में अपने-आपको खोजा। क्षण-भर उसके आंसुओं में उसे अपना ही प्रतिबिम्व जान पड़ा। फिर धीरे-धीरे अपना मुंह झुका दिया। भगवती निर्लिप्त-सा प्रशांत बैठा रहा। लीला की श्वासों ने भगवती के होंठों को गर्म कर दिया। भगवती चौंककर हट गया। वह चीख उठा—'नहीं, नहीं, लीला ! अब नहीं ! इसकी तृष्णा अब मुझमें नहीं है। मैं अब इतनी स्पर्धा भी नहीं कर सकता।'

लीला चिल्ला उठी—'भगवतीऽऽऽ···'

भगवती हटता गया। वह कह रहा था—'नहीं लीला ! मुझमें इतना बल नहीं है। मुझमें इतना अभिमान भी नहीं। नहीं, नहीं, मुझे जाने दो······'

लीला फिर पुकार उठी—'भगवती···' उसकी आवाज़ गूंज उठी, किन्तु भगवती अंधेरे में खो गया था।

लीला अपनी 'मर्सीडीज़ वेन्स' के 'स्टियरिंग-व्हील' पर दोनों हाथ टिकाकर, उसपर सिर रखकर, फूट-फूटकर रो उठी। ऐश्वर्य का अभिमान अभिशाप बनकर आंसुओं के रूप में टपक-टपककर नीचे गिर रहा था।

लीला बेंत की कुर्सी पर लॉन में बैठी थी। सामने ऊषा थी। भूमि से चार फुट ऊंचा एक चमकता हुआ बिजली का स्टैंड-लप रखा था, जो अभी जला नहीं था। हरी-हरी दूब मखमल-सी मुलायम थी। उस दूब में यौवन था, मादकता थी। शीतल समीर बह रहा था। उदास संध्या अपने पर फैलाए आ गई थी। चारों ओर पक्षी कलरव कर रहे थे। धीरे-धीरे सूर्य अस्त हो गया और चारों ओर से अन्धकार झुकने लगा।

रात की निस्तब्धता में चांदनी धुंधली-सी उतर रही थी। पेड़, पत्ते, घास सब अंधेरे में सुनसान चुपचाप खड़े थे।

कुछ भी नहीं मिला,' लीला ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा।

'मिलता किसी को कुछ नहीं लीला ! हम लोग आते हैं और इस भंवर में फंस जाते हैं। निस्सारता आडम्बर बनकर धोखा दे सकती है।' ऊषा चुप हो गई। चांद धूमिल-सा, लीला के कटाक्ष-सा आकाश में झलक रहा था। उसमें से फुहार-सी धीमी-धीमी रोशनी निकल रही थी। निर्द्वन्द्व, निर्विकार, शांत, गम्भीर निर्मलता से अन्तराल व्याप गया था।

ऊषा ने अचानक ही कहा—'लीला ! बहुत दिन हो गए, तुमने मुझे गाना नहीं सुनाया। आज एक गीत ही सुना दो।'

लीला ने कोई आपत्ति नहीं की। वह गाने लगी !

'कौन तुम इस जीवन में आए। जब यह जीवन ही इतना क्षणभंगुर है तो उसमें यह वेदना का दीप किसने इतने यत्न से जलाया है। पतंगे दीपक पर नहीं आते। इसमें से निकली करुणा की ज्योति पर अपनापन खोने आए हैं।

'रात है, तुम नहीं आए। न आओ। तुम कभी नहीं आए थे। फिर भी मेरे हृदय

में यह प्रकाश का कण क्यों जगमगा उठा है। मैं आत्मविभोर हो उठी हूं। सखी भी सो गई है। तुम इस छोटे-से नश्वर जीवन में क्यों आए ?

'विषमताओं का साम्राज्य है, फूल मुरझा चुके हैं, पतझड़ ही पतझड़ है। लेकिन यह किसने अंग-अंग में नवजीवनमय मलय समीर छुआ दिया है! मैं जाग उठी हूं। संसृति हंस उठी है, अरे तुम तो मुझी में थे। मैं क्यों इतनी विह्वल थी ? सहस्रों युगों की मानव की शान्ति मुझमें छाई है। मैं अपने-आपको भूल गई हूं। सचमुच इस छोटे जीवन को युगान्तर तक गीत की लय बनाने तुम आए थे, हां, तुम आए थे।'

गीत थम गया। ऊषा ने भर्राई आवाज़ में कहा—'लीला!' लीला ने कुछ कहना चाहा, किन्तु उसका गला रुंध गया। पास ही बेरों का जंगल था। समीर उनकी गन्ध से भारी-सा उमड़ता चला आता था। अन्धकार उसके कारण झूम उठता था। वह यौवन की आकुलता थी, वासना का दुलार था।

ऊषा ने कहा—'लीला! तुम्हारे गीत को सुनकर मुझे आज प्राचीन वैभव के प्रासादों में यौवन से अधीर तृष्णाकुल विरहिणी राजकुमारी की सुधि हो आई है।'

लीला ने कहा—'डूब गया ऊषा, अब तो जहाज़ ही डूब गया। अब कभी उससे नहीं मिलूंगी। उसके वैषम्यों का आदर्शवाद, उसकी सहिष्णुता का छल, वह सब मैं नहीं झेल सकी।'

उषा ने कहा—'लीला! यह सब कुछ नहीं। पल-भर का खेल है। बताओ जब से परीक्षा सिर पर आई है, कोई प्रेम करता दीखता है ? कहां है रानी ? कहां है कला ? सब अपने-अपने काम में लग गए हैं। तुम भी पढ़ो। तुम समझती हो, भगवती नहीं पढ़ेगा ? जाने दो उसे। ये सम्बन्ध बहुत क्षणिक होते हैं। आंखों से ओझल होते ही परिचय का अंजन धुल जाता है। मध्यवर्ग के लोग जीवन-भर झूठे स्वप्न देखा करते हैं। उनकी सेक्स की भूख बहुत ही अतृप्त होती है। वह यहां सहशिक्षा में इतना उग्र वेग धारण करती है कि सब बातें उसके सामने डूब जाती हैं।'

सनापन घना हो गया। चारों ओर फिर ठण्डक में हवा की सनसनाहट अन्धकार के भयद रूप में डूब गई।

ज़िन्दगी कठिन है। एक गुलाम कौम की हलचल बड़ी विषम होती है। उस विषमता को और कुछ न समझकर ईश्वर पर ठेल दिया जाता है और ईश्वर बेचारा, क्योंकि कुछ नहीं कह सकता, सब चुपचाप झेला करता है।

ऊषा चली गई। लीला उदासमना फिर गा उठी—

'यह हलचल निर्जीवता की द्योतक है, यह स्वच्छन्दता ही विषमता है, यह जीवन-मरण की करवट है...

'मेरी ही आत्मा का चेतन सबकी आत्मा का चेतन है। मुझमें ही गति और लय का उपक्रम और उपसंहार है। आओ, प्यार के गीत गाकर मुझमें खो जाओ...

'सब विषमताओं से वह परे है। कलुष उसके पास भी नहीं है। विकार उसकी छाया भी नहीं छू पाता। तुम भी अपनी लालसा का लघुत्व छोड़कर उसमें घुल जाओ!

'वह महामानव के नयन से निकली ज्योति है। इस प्रकाश से मेरा हृदय चैतन्य हो उठा है। मैं कुछ नहीं चाहती। यदि मेरी सत्ता से उसे दुःख होता है, तो मैं अपनी

अयोग्यता का उस तक प्रसार नहीं करना चाहती। मिल गया, उसने मेरा प्यार स्वीकार तो कर लिया और क्या चाहिए, मुझे सब कुछ मिल गया है, आज मैं भिखारिन नहीं रही—मेरी स्पर्धा का भस्म भी ठण्डा हो चुका है… '

लीला रोने लगी।

33

विद्यार्थी-संघ को जब कहीं भी आज्ञा नहीं मिली, तो उसने पार्क में अपनी मीटिंग प्रारम्भ कर दी। विद्यार्थी-जीवन में पानी के बुलबुले का-सा उत्साह होता है।

कॉमरेड रहमान ने कहा—'साथियो ! आज आप पहली मीटिंग की रिपोर्ट सुन लीजिए।' इसके बाद वीरसिंह अपनी बेनुक्ता आवाज़ में सर-सर करके पढ़ गया। मीटिंग में बहुत कम लोगों ने उसे सुनने और समझने का प्रयत्न किया। स्टेट्समैन का संवाददाता और दो सी० आई० डी० रिपोर्ट लिखने में मशगूल थे। तीन दारोगा सादी पोशाक में भीड़ में छिपे खड़े थे। उनके सार्ज़िदे, लाल पगड़ीवाले सिपाही, चार-चार की टोली में चारों कोनों पर खड़े थे, जैसे ख़ून से भीगी चोंच वाले गिद्ध आंखें गड़ाए टूट पड़ने की प्रतीक्षा कर रहे हों। उनके हाथों में हथियार थे, जिनके दुरुपयोग को विदेशी सरकार ने कानूनी बना दिया था।

सभापति रहमान ने कहना प्रारम्भ किया—'कॉमरेड्स ! आज आप लोगों को अपमान से जागना होगा और यदि आपमें इतना भी जीवन नहीं है, तो आपको दुनिया में रहने का अधिकार भी नहीं है। चीन के विद्यार्थियों ने अपने देश को कितना जाग्रत् कर दिया है। यदि आज वे न होते, तो चीन जापान के सामने झुक चुका होता। लेकिन उन्होंने गिरती हुई इमारत में अपनी शक्ति से नये स्तम्भ लगा दिए। स्पेन के विद्रोह में जब बर्बर फासिस्टवाद को जर्मनी और इटली सशस्त्र सहायता दे रहे थे, इंग्लैंड और फ्रांस अपने स्वार्थों की रक्षा के लिए उसे गृहयुद्ध कह रहे थे, तब केवल विद्यार्थियों ने आग भर दी थी। आप नौजवान हैं, आपके ऊपर ज़िम्मेदारी है। आप अपने बुनियादी हकों से दूर हट रहे हैं। आपकी सभ्यता आज अंधेरे में भटक रही है। यूरोप में हिटलर सब पर कामयाब हो रहा है। उसने फ्रांस को भी पराजित कर दिया है। सिर्फ विद्यार्थियों का एक ऐसा 'फ्रंट' रहा है जिसपर उसे कुछ न कुछ करने के लिए सदा चिन्तित रहना पड़ता है। दूसरी ओर रूस को देखिए। वहां का विद्यार्थी एक सजीव शक्ति है। वह देश की हलचल से दूर नहीं रहता। इंग्लैण्ड को ही लीजिए। यदि किसी ने वहां की सरकार का खुलेआम विरोध किया है, तो केवल विद्यार्थियों ने।

'आप लोगों को चाहिए कि अपने-आपका संगठन करें। करोड़ों किसान और मज़दूर आपके नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

तालियां बज उठीं। सुन्दरम् ज़ोर से चिल्ला उठा—'हियर ! हियर !!'

कॉमरेड रहमान ने गरजते हुए कहना शुरू किया—'आज समय आ गया है कि

आप लोग अपनी सदियों की गुलामी की नींद छोड़कर, पूंजीवाद और साम्राज्यवाद की जड़ों को हिलाते हुए, देश के एक से दूसरे कोने तक इन्किलाब का नारा गुंजा दें। आप लोगों के लिए मज़दूर भी एक रोमांटिक चीज़ हो चला है। उसे अपनी रानी की याद नहीं आती, रोटी की याद आती है। विद्यार्थी सरकारी नौकरियों की टोह में विद्रोह से डरते हैं। लेकिन सोचिए। जिन्हें नौकरी मिलती है वे कितने कम होते हैं और आप लोग टुकड़ों के पीछे सारी ज़िन्दगी बरबाद करते हैं। इस नींद से जागना होगा। हिन्दुस्तान को खून चाहिए, खून। खून चाहिए उनका जिन्होंने आदमी को एक कुत्ता बना रखा है, जो अपनी जूठन डालकर उसे फुसलाकर रखना चाहते हैं। क्रान्ति चाहिए ऐसी कि ज़मीन और आसमान में एक ललाई छा जाए...।'

कॉमरेड रहमान बोलता गया। उसकी आवाज़ भयंकर हो गई। वह गुस्से से कांपने लगा और उसकी मुट्ठियां बंध गईं। इसी समय सुन्दरम् चिल्ला उठा—'इन्किलाब !'

सैकड़ों विद्यार्थी चिल्ला उठे—'ज़िन्दाबाद।'

कॉमरेड रहमान के नथुने फूल गए। वह बोलता गया—'कॉमरेड्स ! जीवन संघर्ष है, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तुम्हें बोलने के लिए मजबूर कर रही है...'

संवाददाता और सी० आई० डी० लिख रहे थे। उन्हें फुर्सत न थी। अचानक ही सीटी बज उठी। एक वर्दीधारी दारोगा ने आकर फरमान सुनाया—'कलक्टर साहब के हुक्म से यह सभा बरखास्त की जाए।'

लड़के हुंकार उठे। यह आग पर घी था। दारोगा ने कहा—'आपको पांच मिनट का वक्त दिया जाता है।'

भीड़ गरज उठी। क्षण-भर को पुलिस चकरा गई। इतने में सशस्त्र सिपाहियों से भरी दो लारियां आ पहुंचीं। तहलका मच गया। किसी में डिसिप्लिन नहीं रहा। कॉमरेड रहमान के होंठों पर एक अद्‌भुत मुस्कराहट छा गई। सुन्दरम् ने बढ़कर कहा—'परवाह मत करो।'

वीरसिंह चिल्ला उठा—'इन्किलाब !'

सारी भीड़ चिल्ला उठी—ज़िन्दाबाद !'

दारोगा ने बढ़कर रहमान को हथकड़ी पहना दी।

विद्यार्थी भीषण ध्वनि से फिर चिल्ला उठे। पुलिल लड़खड़ा गई। सुन्दरम् और वीरसिंह भी गिरफ्तार कर लिए गए थे। उस रोर में फिर कोई चुप नहीं रहा। साथियों को गिरफ्तार होते देखकर विद्यार्थी विक्षुब्ध हो उठे।

दारोगा ने सीटी दी। लाठी चार्ज शुरू हो गया।

यह साम्राज्यवाद का न्याय था, यह पूंजीवाद की दया थी, यह दार्शनिकों की वर्ग-सभ्यता का उपभोग था कि निहत्थों पर वार हो रहा था। किसो का सिर फूटा, किसी का हाथ उतर गया, किन्तु लाठी चलती रही। आज़ादी की बत्ती नहीं बुझी, क्योंकि भारतमाता अपने बेटों के रक्त से भीग गई थी। बर्बर साम्राज्यवाद अपने-आप अपने पाप से कराह उठा, क्योंकि उन आरामपसन्द लड़कों में से एक भी पीछे नहीं हटा; देर तक उनके नारे गूंजते रहे, क्योंकि उनमें सदियों की यातना क। विक्षोभ था,

आजादी की परम्परा का प्रश्न था।

हिन्दुस्तान ने वार करना नहीं सीखा, लेकिन कातिल के वार सहकर उसे रुला देना सीखा है।

34

आज ईसाइयों की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण सभा थी। इस प्रस्ताव की चर्चा प्रत्येक मुंह पर थी कि ईसाइयों के अतिरिक्त अन्यधर्मा विद्यार्थी भी 'विद्यार्थी-ईसाई सभा' में सदस्य बन सकें। कुछ मालूम नहीं पड़ रहा था कि नतीजा क्या निकलेगा। हॉल भर गया। लोगों में कुछ मज़ाक-सा हो रहा था। लड़कियां भी बैठ गईं। प्रार्थना के बाद जब आत्माएं पवित्र हो गईं तो सभापति ने उठकर कहा—'माननीय सज्जनवृन्द! आप लोगों के सामने आज एक प्रस्ताव रखा गया है। इसकी प्रस्तावना करने वाले हैं मिस्टर राज-मोहन और इसका समर्थन करने वाली हैं मिस रानी रेनाल्ड। प्रस्ताव यह है कि 'विद्यार्थी-ईसाई सभा' में कॉलेज के अन्यधर्मा विद्यार्थी भी सदस्य बन सकें, क्योंकि सांप्रदायिकता भारत में विष-वृक्ष का बीज है। प्रस्ताव में कुछ कठिन बात नहीं है। इससे हानि-लाभ दोनों ही हैं। इसके लिए मैं प्रस्तावक मिस्टर राजमोहन से अपने मत के प्रतिपादन के लिए प्रार्थना करूंगा।'

लोगों की निगाहें राजमोहन की ओर खिंच गईं। वह उठा, झुका और फिर सीधा खड़ा होकर पेंसिल हाथ में लेकर, उसने अंग्रेजी में कहना शुरू किया—'माननीय बंधुगण! आज आपके सामने मैं यह प्रस्ताव रखने की धृष्टता कर सका हूं। आशा है आप खुले दिमाग से सुनेंगे। हम आज ऐसे कगार पर खड़े हैं जहां से हमें आगे और पीछे—दोनों ही दुनियाओं का डर पड़ा है। बूढ़े पीछे खींचते हैं और उन्हीं का खून होने के कारण जवान भी आगे बढ़ने में डरते हैं। हमारे समाज के आज कई अंग बन गए हैं। पुरानी बातें नई बातों के चक्कर में पड़कर ऐसी बिगड़ गई हैं कि अब सफेद और काले को शीघ्र ही अलग-अलग नहीं किया जा सकता। इस प्रकार दो सभ्यताओं में एक संघर्ष व्याप्त हो गया है। एक आम माध्यम के नष्ट होने पर एकता का ह्रास हो जाता है। मनुष्य सदा से उस ऐक्य को बनाने की चेष्टा करता रहा है। नये-नये धर्म केवल उस आत्मिक संगठन को एकरूप करने उठे हैं और अधिक बहुरूप करके असफल हो गए हैं।

'हमारी सभा एक धार्मिक बन्धन पर खड़ी हुई है। लेकिन धर्म मात्र ही कितना असफल है, यह आज कौन नहीं जानता? कालेज संस्कृति का केन्द्र है। यही जीवन का केन्द्र होना चाहिए, यहीं से सब बहना चाहिए। अभाग्य से यहां अधिकाधिक सांप्रदायिकता फैलती जा रही है।

'हम लोग ईसा के अनुयायी हैं, जो अहिंसा का पुजारी था। लेकिन आज वे उपदेश केवल रूढ़ि बन गए हैं और उनके पीछे हम आंख बन्द करके भटक रहे हैं। इस

मशीन-युग ने हमें कल की बहुत-सी बातों से मुक्त कर दिया है। माध्यम एक ऐसी वस्तु है जो सर्वसाधारण के लिए एक हो। धर्म भी एक माध्यम है। यदि धर्म का अर्थ विश्व-समाज की सेवा है, सत्य की खोज है, तो किसी भी धर्म की बुनियाद एक ही है, क्योंकि सभी की प्रेरणा एक है, स्वरूप भिन्न और कार्य सब उल्टे। इसीलिए मैं कहता हूं कि भेद संस्कृति के कारण होते हैं। प्रकाश सबको एक लगता है। हमारी सभा ने इसके विपरीत एक वर्गीकरण करके एक असामंजस्य का उत्पादन किया है। अन्यधर्मा लड़के-लड़कियां इसे विवाह-घर के रूप में लेते हैं। हमें बन्धनमुक्त हो जाना चाहिए। इसलिए हमें अपनी राह अधिक-से-अधिक खोलनी होगी। पथिक को पथ का विश्वास चाहिए, अन्यथा पग कभी सुस्थिर नहीं होगा। पगडंडियों से चलनेवाला सदा शंकित रहता है।

'प्रस्ताव तो आपने सुन ही लिया है। सांस्कृतिक ऐक्य की बुनियाद डालने का अपना अधिकार आपको याद रखना पड़ेगा। धन्यवाद!'

राजमोहन बैठ गया, लेकिन लोग नासमझ-से देखते रहे। उसे इस बात का दिल में सख्त अफसोस रहा कि किसी ने ताली नहीं बजाई।

एक व्यक्ति समाज सुधारने का ठेका लेकर चुंगी के दारोगा की शिकायत भेजता है। दारोगा उसपर, उसके मकान में खुचड़ निकालकर जुर्माना करा देता है। तब वह व्यक्ति सेवा से घबराकर काम छोड़ देता है। यही हाल राजमोहन का हुआ। उसे अपने ऊपर कोफ्त होने लगी। वह एकदम चुप हो गया।

सभापति ने कहा—'अब आप लोगों में से किसी को यदि दूसरे पक्ष का प्रतिपादन करना हो तो बोलें।'

आशाओं के विरुद्ध विनोद उठा। लोग एकदम स्तम्भित हो गए। कौन, विनोद बोलेगा? मैक्सुअल में जान पड़ गई। लोगों को ऐसा ही विस्मय हुआ जैसे जगत्-विजयी सिकन्दर को अन्त में जंगलियों अथवा आर्यों से पिटते देखकर हुआ था। एक फुसफुसाहट मच उठी। लेकिन विनोद उठकर बोलने लगा—'बन्धुगण! मेरे मित्र मिस्टर राजमोहन ने अभी प्रस्ताव का दार्शनिक पहलू समझाया। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि तिल की ओट में पहाड़ भी छिप सकते हैं, फिर भी पहाड़ और चूहे की कहानी हमें नहीं भूलनी चाहिए।'

सब हंस पड़े और व्यंग्य से विनोद ने राजमोहन की ओर देखा। विनोद कहता गया—'जीवन के दो पक्ष सदा रहे हैं और बने रहेंगे। किन्तु आपको याद रखना चाहिए कि अंधकार समय-असमय नहीं देखता, वह एकदम से टूट पड़ता है। मैंने भूल से राजनीति में भाग लेने का प्रयत्न किया था, किन्तु वास्तव में ईसाई के लिए धर्म ही सब कुछ है! यह धर्म उस मनुष्य की कहानी है जिसने अपने रक्त और मांस का संसार के लिए बलिदान दिया था। राजनीति क्षणिक है, कल यह इतिहास बन जाएगी। किन्तु धर्म एक विशाल सुदृढ़ चट्टान की भांति खड़ा रहेगा।'

फिर करतलध्वनि हुई। विनोद बिना मुस्कराए कहता गया—'आखिर क्या कारण है कि आज संसार में ईसाइयों का प्रभुत्व है, हमारा बादशाह ईसाई है! और सोवियत रूस से लोग क्यों इतनी घृणा करते हैं? क्योंकि ईश्वर न्यायप्रिय है, वह सदा सत्पथ की ओर प्रेरित करता है। अंग्रेजों ने हमें आकर मनुष्य बनाया। हमें बराबरी का

संदेश दिया। अभी तक मैं धर्म से दूर था, तभी भटक रहा था।'

राजमोहन टोककर खड़ा हो गया। बोला—'सभापति महोदय! मैं निवेदन करता हूं कि वक्ता से व्यर्थ का जीवनचरित सुनाने का निषेध करें। यहां मोक्ष का प्रश्न नहीं है।'

समस्त समुदाय ठठाकर हंस पड़ा। सभापति ने कहा—'जारी रखिए।'

राजमोहन काला पड़ गया। मैक्सुअल चिल्ला उठा—'हियर! हियर!!'
विनोद बोलने लगा—'बन्धुओ! अभी मेरे एक मित्र ने आक्षेप किया कि मैं व्यर्थ की बातें कर रहा हूं। किन्तु उन्होंने मुझे गलत समझा है। मेरा कहना ही यह है कि यह सभा एक धार्मिक संगठन है, न कि विवाह-घर। अपने-अपने धर्म को अपने-अपने लोग संभालें। हमने सबका ठेका नहीं लिया है। यदि वे रूढ़ियों को छोड़कर ईसाई हो जाएं तो हम उनकी भी चिन्ता किया करें। मनुष्य का जीवन उत्थान और पतन की एक धार्मिक प्रणाली है। यहां हम नये-नये रूप लेकर ईसा के शरणागत हैं। मनुष्य अपने को उठाने के प्रयत्न में लगा रहता है, इसी में गिरता भी है। मनुष्य भावनाओं का केंद्र है। कभी अच्छे भाव उठते हैं, कभी बुरे। ईश्वर मनुष्य का भाग्य धर्म के अनुसार बनाता है, तभी हिन्दू और मुसलमान आज गुलाम हैं और उसी भारत में रहकर हम ईसाई स्वतंत्र हैं। किन्तु सबके विचार एक-से नहीं रहते, तभी एक न एक भेड़ भटक जाती है।

'अतः मुझे कुछ बातें आपके सामने प्रश्नों के रूप में रखनी हैं और उनके परिणाम भी बताने हैं।

'हमारी सभा धार्मिक है, जब अन्यधर्मा इसमें आएंगे, तो इसका स्वरूप क्या होगा? क्या यह बात उचित है कि सभा को गप्प मारने का क्लब बना दिया जाए? आप अन्यधर्मा को किस सिद्धांत पर निमंत्रण देंगे? क्या आपको विश्वास है कि अपनी बनाई सीमा में फिर विस्तार नहीं होगा? क्या आप समझा सकते हैं कि फिर उन्नति की किस पथ पर प्रेरणा होगी?'

विनोद ने रुककर इधर-उधर देखा। सब प्रभावित थे। वह फिर कहने लगा—
'कॉलेज में ईसाई तथा अन्यधर्मा में शिक्षा की बात एक है, बताइए उस समय क्या होगा? धर्म के विना हमें कला, विज्ञान, राजनीति अथवा क्या है, जो माध्यम बनाना पड़ेगा? जब कुछ नहीं होगा तो गप्पें होंगी। क्या आप इसे सह सकते हैं कि ईसा के पवित्र नाम को फेंककर कुछ अश्लील बातें हों? हम किस सिद्धान्त पर एकत्रित होंगे? हमें चाहिए कोई बात जो अपने-आपमें ठोस हो। आज कॉलेज के अन्यधर्माओं का प्रश्न है, कल अन्य कॉलेजों का उठेगा, परसों नगर-भर का। तब सभा कहां होगी? इतनी बड़ी मीटिंग का प्रबन्ध कहां होगा?'

सब हंस पड़े। राजमोहन विक्षुब्ध-सा बैठा रहा। रानी निःस्पंद, शान्त थी।

'और जब हमारे पास कोई बात ही न होगी तो हमें किस पथ पर चलना होगा? किधर की ओर उन्नति करनी होगी? लेकिन मेरे पास इस सबके लिए एक प्रस्ताव है, जो स्वतः सबसे बड़ा उत्तर है।'

अचानक विनोद की आवाज़ तीखी हो गई और वह कुछ उत्तेजित होकर कहने लगा—'मुझे फिर भी कोई विरोध नहीं है। मैं आप लोगों को साफ़-साफ़ समझा देना

चाहता हूं। क्षमा कीजिए। आप लोगों को स्यात् यह सत्य कचोट उठे, किन्तु विश्वास रखिए, उस प्रकार ही यह सभा वास्तव में विवाह-घर बन जाएगी। लोगों को केवल रोमांस का आकर्षण रह जाएगा। लड़कियों के कारण इतनी भीड़ हो जाएगी कि कुछ पता नहीं चलेगा। हरएक गुण्डा अपने को भर्ती करा लेगा। उसकी ज़िम्मेदारी कोई भी नहीं ले सकेगा। लड़कियां बिगड़ जाएंगी। चाय उड़ेगी, सिगरेटों का धुआं उड़ेगा और उसके साथ ही धर्म भी उड़ जाएगा। फिर सभा कई भागों में विभक्त हो जाएगी और आप बदनामियों के बोझ से दबकर लंगड़े हो जाएंगे। मैं कहता हूं, दरवाज़ा खोल दो, लेकिन लड़के-लड़कियों को अलग-अलग कर दो। फिर देखें, सभा के कितने सदस्य बनते हैं।'

विनोद बैठ गया। उसके बैठते ही महान् कोलाहल मच उठा। वह ऐसे बोला था जैसे मसीहा कब्र में से उठकर बोला हो। उस कोलाहल में सब अधीरता से ज़ोर-ज़ोर से बातें करने लगे। राजमोहन ग्लानि से कट रहा था, किन्तु रानी प्रशांत बैठी थी। मैक्सुअल अकेला ही हियर-हियर चिल्ला रहा था। जब कोलाहल धीमा पड़ गया तब धीरे से गम्भीरमुख रानी उठी। उसके उठते ही फिर शांति छा गई। उसने कहा—'सभापति महोदय ! मिस्टर राजमोहन ने प्रस्ताव का दार्शनिक रूप ही दिखाया था, मैं इसका क्रियात्मक रूप दिखाती हूं। क्या मुझे बोलने की आज्ञा है ?'

सभापति की आज्ञा मिलने पर रानी ने पतली, तीखी और चुभती हुई आवाज़ में कहना प्रारम्भ किया—'बन्धुओ ! आज इस मशीन-युग में हम मानसिक और भौतिक रूप एक केन्द्र की ओर चल रहे हैं। दृष्टिभेद के अनुसार ही भेद बनते हैं और मनुष्य इन्हीं कारणों से देश, वर्ण और धर्म में बंटता है। आधुनिक सभ्यता यह स्वीकार करने को विवश करती है कि मनुष्य का ईश्वर मनुष्य है, कोई और वस्तु नहीं। संघर्ष आज मानो एक देन होकर आया है—देन—वह देन जो बिना दिए ली जाती है, जिसके प्रारम्भ और अन्त में संसार की अरूप रहस्यात्मकता और दो पैर के कीड़े आदमी का इतिहास ऊंघता-सा पड़ा रहता है। सब सत्यों से ऊंचा सत्य मनुष्य है। मिस्टर विनोदसिंह ने कहा कि हमारी सभा धार्मिक है। हममें से कितने हैं जो जन्म और मत-परिवर्तन से नहीं, कर्म से सच्चे ईसाई हैं ? हम लोग केवल ढोंग के सिवा और करते ही क्या हैं ? जिस सिद्धांत पर—मनुष्यता के सिद्धांत पर, हम मिले हैं, क्या और लोग उसी पर नहीं मिल सकते ? मेरा प्रश्न है—क्या प्रत्येक स्वतंत्र सभा में करोड़ों सदस्य होते हैं ? कई सौ लड़के-लड़कियां साथ पढ़ते हैं। वहां प्रबन्ध हो सकता है, यहां नहीं ? क्या कॉलेजों में गुण्डे नहीं होते ? गुण्डापन दमन से दबता है। हम साम्य, प्रेम, सहानुभूति और सत्य के पथ पर उन्नति करेंगे। अंतिम बात भी साफ कर दूं। जब मां-बाप लड़कियों को उनके ऊपर छोड़कर विदेश में पढ़ने को भेजते हैं तब उनके चरित्र का ज़िम्मेदार कॉलेज नहीं होता, मिशन नहीं होता। वे स्वयं होते हैं। कॉलेज में क्या ईसाई लड़के लड़कियों से प्रेम की दुश्चरित्रता नहीं दिखाते ? जो आज है कल नहीं है, केवल शारीरिक सुख मात्र है। मिशन के अंग्रेज़ पादरी और मेमों की खुशामद किए जाओ, वज़ीफे लिये जाओ, अंग्रेज़ी ढंग पर कोर्ट-शिप करके प्रेम करो, छोटी नौकरी करके मर जाओ, जीवन-भर साहब के गुणगान करो, हिन्दुस्तानियों से घृणा करके अंग्रेज़ों को देवता समझो, ईसाई होकर भी कभी उनसे

बराबरी करने का साहस न करो, यह मिशन सिखाता है। मिशन ने हमारी हड्डियों की नींव पर साम्राज्यवाद का महल खड़ा किया है। उसने हमारे खून मे गुलामी के कीड़े भर दिए हैं, जो भीतर ही भीतर हमारा ही रक्त चूसकर, हमें खाकर मोटे हो रहे हैं। मिशन ने हमारी भारतीय परम्परा में एक ऐसा विदेशी विष मिलाया है जिसने हमें हास्यास्पद बना दिया है। कहां हैं हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े दुनिया को दिखाकर हिन्दुस्तान को बदनाम करनेवाले ? वही क्या ईसाइयों में नहीं हैं ? मिशन ने दलितों को मनुष्य नहीं बनाया है, मनुष्यता वेचनेवाले जानवरों का समूह बनाया है, जो फिर भी घृणा से दबे हैं; बस अब वे पिंजरे में नहीं चांदी की ज़ंजीर से बंधे हैं। मिशन ने धोती की जगह साहब की पुरानी पतलून पहनना सिखाया है। हमारा विश्वास हमारा नहीं रहा। हमने सत्य के लिए उठी तलवार को स्वार्थों में लिप्त होकर कलुषित विद्रोह कहा है, हमने मनुष्यता का अपमान किया है। संसार इसे कभी भी नहीं भूलेगा।

'आपको अपने ऊपर विश्वास नहीं, तभी अपने घर की स्त्रियों पर अविश्वास है। आप ठीक हैं क्योंकि आपमें गुण्डों का दमन करने का साहस नहीं है। आखिर आप भी तो टट्टी की आड़ में वही शिकार करते हैं। यह समझना भूल है कि हिन्दू-मुसलमानों के रूप और धन से लड़कियां आकर्षित होंगी, क्योंकि ईसाइयों के पास यही नहीं है। क्या हिन्दुस्तान की काली औरतें अंग्रेज़ों पर मोहित हैं ? हिन्दू और मुसलमान अपनी रूढ़ियों के पाप से दबे हैं, हम भी वैसे ही हैं। हमारा गर्व व्यर्थ है। कुत्ते को सोफे पर बिठाने से साम्य नहीं हो जाता। हमारा भला करने की आड़ में जिन्होंने हमसे मनुष्यता छीन ली, मैं उनसे विद्रोह करती हूं। यदि लड़के-लड़कियां अलग किए जाएं, तो कॉलेज में सहशिक्षा रोक दी जाए, स्वयं ईसाई सभा में विभाजन हो जाए। फिर देखें कितने धार्मिक हैं। नीचे बहनेवाला हर जगह नीचे बहेगा। और यदि हो सके तो संसार के सब स्त्री-पुरुष अलग-अलग कर दिए जाएं। अविश्वास ही धर्म बने, सत्य केवल विकारमात्र रह जाए।'

रानी बैठ गई। कोई भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। जब बाज़ी हारने पर खिलाड़ी
पहुंचने लगता है, तो वह खेल उठाने की सोचता है। नैतिक सत्यवादी मूर्खों में दब जाता
है। यही ईसा के साथ हुआ था। रानी के बैठते ही बातें प्रारम्भ हो गईं। मैक्सुअल ने
कहा—'हरी ने बड़ा ज़ोर मारा। इश्क हो तो ऐसा हो।' कोलाहल बहुत बढ़ गया।
रानी ज्वालामुखी की भांति फुंकार उठी। किन्तु मुख पर विकार न आकर वही
गाम्भीर्य छाया रहा। राजमोहन ने रानी के पास आकर कहा—'आज तुमने इज़्ज़त रख
ली रानी बहन ! मुझे तो आशा न थी।'

रानी ने धीरे से कहा—'राजमोहन ! विनोद के पतन के लिए मैं ही ज़िम्मेदार
हूं। वह स्वतन्त्र विचारों का था, किन्तु मैंने उसे बेवकूफ बना दिया। मेरा काम हो
गया। मैं बदला ले चुकी हूं। सांप को दूध पिलाया है। देखना चाहती हूं, वह पत्थर पर
फन मारे और फटकर उसमें से रक्त निकल आए। तुम विक्षुब्ध हो जाओगे, किन्तु मैं
तब हंसूंगी।'

सभापति ने उठकर कहा—'और कोई बोलना चाहे तो बोले। बोलने की यहां पूर्ण स्वतन्त्रता है।'

कोई नहीं बोला। सभापति ने फिर कहा—'तो मैं प्रस्ताव पर वोट लेता हूं। पहले वे हाथ उठाएं जो इसके पक्ष में हों।'

रानी ने हाथ उठा दिया। राजमोहन ने भी कांपता हुआ हाथ उठाया, जैसे महात्मा ईसा के दो हाथ उठे हो, आनेवाली पीढ़ियों को आशीर्वाद देते-से, माता-पिता के हाथ-से···

लेकिन और कोई हाथ नहीं उठा। प्रस्ताव रद्द कर दिया गया।

तीन ही दिन बाद रानी रेनोल्ड और राजमोहन को कॉलेज से डिसप्लिन खराब करने के अपराध में निकाल दिया गया। बोलने की पूर्ण स्वतन्त्रता ने उन्हें स्वतन्त्र कर दिया।

35

रेस्त्रां पर वैसी ही घनी भीड़ थी, जैसी कॉलेज में वर्ष प्रारम्भ होने के समय चुनावों में होती थी। आज मास्टर की गाड़ी चली है। चलती तो सदा है, लेकिन राह में दचके लगाना आवश्यक है। नित्य सांझ को वहां पार्टियां जमती थीं। किन्तु आज तो बहुत-से वहां झांकने तक में घबरानेवाले आ पहुंचे थे और बाकायदा कुर्सियों पर डटे हुए थे। भीतर के कमरे में कमल, मैक्सुअल और वीरेश्वर चाय पी रहे थे। तीनों पर असंतोष की एक भारी भावना थी।

कल रात एक तूफान की गड़गड़ाहट हुई थी। पहले तो अविश्वास के वोट का 'मोशन' तैयार होने में ही कठिनाई हुई, क्योंकि विधान के अनुसार प्रेसीडेंट में कमियां पाना कठिन था, लेकिन उनको ढूंढ़ लेना ही अन्त न था। तीन-चौथाई कॉलेज के विद्यार्थियों के हस्ताक्षर कराना भी कम कठिन नहीं था। फिर भी यह काम बहुत ही गुप-चुप हुआ। वीरेश्वर ने पहले सज्जाद की ओर बोलने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वह अकेला पड़ गया, कमल की ओर रहना ही उसे अपना कल्याण दिखाई दिया। अध्यापक-वर्ग तनिक भी पत्ता नहीं खड़का। फिर सज्जाद से जैसे हवा कुछ कह गई और कल रात पार्लियामेण्ट हुई। असली पार्लियामेण्ट में भी भारत और मानवता के प्रश्न पर केवल खेल होता है, यह तो उसकी भी नकल है। मिस ऊषा और मिस मुमताज़ बोलने वाली थीं, इसलिए हॉल में काफ़ी लोग आए थे। लिट्रेरी सेक्रेटरी ने स्पीकर के आने की सूचना दी। आज सब लोगों पर एक भयंकर सन्नाटा छाया हुआ था। सब लोग खड़े हो गए। सज्जाद गाऊन पहने आकर बैठ गया। सब बैठ गए। सेक्रेटरी पहली मीटिंग की कार्रवाई सुनाने लगा। उसकी आवाज़ काफ़ी सुनाई देने योग्य थी, किन्तु कमल ने कहा—'सर ! आवाज़ सुनाई नहीं पड़ रही है।'

सज्जाद ने कोई ध्यान नहीं दिया। वहीद वैसे ही पढ़ता गया। उसके समाप्त करने पर सज्जाद ने उठकर कहा—'आप लोगों के सामने ये मिनिट्स हैं। आपमें से

किसी को कुछ आपत्ति हो तो बताइए ।'

वह बहुत भलमनसाहत से बोला था, किन्तु उसकी बात में सबको अभिमान झलकता दिखाई दिया। वे चीलों की तरह उसकी ओर देखते रहे। कोई बड़ा प्रोफेसर हॉल में नहीं था। दो-चार रीडर अवश्य इधर-उधर देखकर चौकन्ने हो रहे थे। उन्हें आशंका थी और इसीलिए वे लड़कियों के आसपास ही घूम रहे थे।

बहुत से लड़के एकसाथ खड़े हो गए और मतलब-बेमतलब की बातें करने लगे। सज्जाद उठकर खड़ा हो गया। वह गरजकर बोला—'बैठ जाइए आप लोग, एक-एक करके बोलिए ।'

और तब कोई भी नहीं बोला—'मिनिटबुक बन्द करते-न करते सज्जाद ने सुना, कोई उठकर कह रहा था—'सर ! हमारे प्रस्ताव का क्या हुआ ?'

सज्जाद ने पूछा—'कौन-सा प्रस्ताव ?'

'आपके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव ।' उत्तर अपनी उद्दंडता से लहर उठा ।

'किस पर अविश्वास ?' सज्जाद की आवाज़ भर्रा गई।

लड़का बोला—'आपके विरुद्ध, प्रेसीडेंट के विरुद्ध ।' जन-समाज ठठाकर हंस पड़ा। उस कोलाहल के रुकने पर सज्जाद फिर कुर्सी खिसकाकर उठ खड़ा हुआ। सब चुप हो गए। सज्जाद ने गम्भीर स्वर से कहा—'इस समय मैं प्रेसीडेंट नहीं, स्पीकर हूं। अतः यह बात यहां अनुपयुक्त है। स्पीकर को प्रेसीडेंट के विरुद्ध अभियोग पर राय देने का कोई अधिकार नहीं ।'

बहुत कम हंसे। कमल ने क्रोध से कहा—'नहीं, तुम्हारे खिलाफ ही, स्पीकर के खिलाफ ही ।' सज्जाद विचलित-सा दिखा। उसने कोट के बटन पकड़ कर कहा—नोटिस मुझे तीन बजे के बाद मिला, अतः उस पर विचार नहीं हो सकता। दूसरे, उसमें प्रेसीडेंट शब्द का प्रयोग है। तीसरे, विधान के अनुसार आप बिना मेरे हस्ताक्षर के इसे आगे नहीं ले जा सकते। मैं हस्ताक्षर करने से इन्कार करता हूं ।'

उसके बैठते ही पहले लड़के ने कहा—'हम लोग असहयोग करते हैं।' और देखते ही देखते तीन-चौथाई लड़के उठकर चले गए। भीतर रह गईं लड़कियां, रीडर और कुछ लड़के जो या तो रीडरों के पिट्ठू थे या सज्जाद के मित्र थे। बाहर जाते ही लड़कों ने कोलाहल और दंगा मचाना शुरू कर दिया, गालियां बकीं, आवाज़ें कसीं। उस शोर से कोई कुछ सुन नहीं पाया। सज्जाद ने मेज़ पर से रूलिंग रौड उतारकर ज़मीन पर रख दी और कहा—'मैं मीटिंग समाप्त करता हूं।' और वह उतर कर नीचे आ गया। वहीद ने कापी बन्द कर दी। प्रधानमन्त्री और विरोधी दल के नेता पहले ही चले गए थे। एक-आध ईंट हॉल में घुस आई। रीडरों ने हाल के फाटक बन्द करवा दिए। बाहर तूफान की आंधी की तरह लड़के गरजते रहे और भीतर ये लोग कमरा बन्द करके बिजली की चमक पर डरनेवाली युवती की भांति निस्तब्ध खड़े रहे। जब कोलाहल धीमा पड़ा तो ये लोग बाहर चले।

बाहर प्रबन्ध और ही हुआ था। बहुमत ने यही मत प्रतिपादित किया कि सज्जाद को पीट देना चाहिए। लेकिन जब सज्जाद बाहर निकला, तो किए-कराए पर पानी फिर गया। चारों ओर रीडर थे, उनके भीतर लड़के, उनके भीतर सज्जाद और

लड़कियां थीं। वे सब ऐसे गंभीर और चिन्ताहीन निर्भय-से चल रहे थे कि कोई भी उनपर हाथ उठाने का साहस न कर सका। दस कदम चलकर सज्जाद अंधेरे में गायब हो गया। लड़के लुटे हुए-से खड़े रह गए।

वीरेश्वर से कमल कह उठा—'कोई नहीं, कोई नहीं, सज्जाद को देख लेंगे, स्टाफ को भी देख लेंगे।'

सब हंस पड़े।

रीडर मैथ्यूज़ ने जाकर रात ही को सारा किस्सा प्रोफ़ेसर मिसरा से कहा—प्रोफ़ेसर मिसरा बहुत हंसे और अन्त में बोले—'मैं अभी प्रिंसिपल से जाकर कहता हूं सब।'

उस समय रात के ग्यारह बजे थे और प्रिंसिपल उस दिन की अन्तिम सिगरेट का अन्तिम कश खींच रहा था।

बेचैनियों में रात गुज़र गई और ऐसी गुज़री जैसे वह रात सौ-दो सौ घंटे की थी।

चाय का प्याला उठाते हुए वीरेश्वर ने कहा—'रात की सब बातें प्रिंसिपल के पास पहुंच गई हैं।'

मैक्सुअल ने टोककर कहा—'कैसे?'

कमल ने कहा—'मैक्सुअल! उसे कहने दो। आज तक उसने कभी गलत बात नहीं की। विश्वास के बिना हम कुछ भी नहीं कर सकते।'

वीरेश्वर ने पूछा—'अब क्या होगा?'

कमल चाय पीता रहा। दरवाज़ा बन्द रहने के कारण भीतर धुंधलापन था। ऊपर के ढलवां रोशनदान में से हवा और प्रकाश घुस रहे थे। नीचे गर्म फर्श बिछा था। साफ मेज़पोश, पुंछी हुई कुर्सियां और गर्म-गर्म चाय। कमल सिगरेट पीता जाता था और राख को अपने पैरों पर ही गिराता हुआ बेसुध-सा चाय पीने लगता था। तीनों गम्भीरता से सोच रहे थे। सिगरेट का धुआं उस अंधेरे में सफेद-सा चिलक रहा था। वीरेश्वर ने फिर एक बार प्याले भरे। तीनों फिर पीने लगे, तब बहुत देर बाद कमल ने कहा—'आपको मालूम है, कॉलेज में आते ही मेरी आज प्रिंसिपल से मुलाकात हो गई।'

'अरे सच!' दोनों के प्याले होंठों तक जाकर ठहरे ही रह गए।

कमल हंसा—'हां! और वह मुझसे मिलना चाहता है, मेरे साथ दो आदमी और हैं।'

धड़कते दिल से दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा और फिर दोनों ने एकसाथ कमल की तरफ देखा।

कमल ने कहा—'वीरेश्वर और मैक्सुअल! और अब क्या होगा, इसी की प्रतीक्षा करनी है। रीडर मैथ्यूज सदा से कामेश्वर और सज्जाद का दोस्त रहा है। उसने सिर्फ हमारी बुराइयां की होंगी। इसी से प्रिंसिपल हमारी बात का कोई विश्वास नहीं करेगा।'

मैक्सुअल ने भर्राई आवाज़ में पूछा—'कै बजे चलना है?'

कमल ने उठकर कहा—'एक बजे।'

एक बजने में सिर्फ पांच-छ: मिनट की देर थी। तीनों उठकर बाहर आ गए। बाहर लहरों के तीर से टकराने का-सा शब्द हो रहा था। लड़के बातें कर रहे थे। कोई कह रहा था—'यार, उसकी क्लास खत्म होनेवाली है। एक बार दरवाज़े पर मिलेंगे। जल्दी चल यार, वह तो उड़ती है···'

शाम को सात बजे रेस्तरां के बाहर बहुत भीड़ थी। सब लोग उत्सुकता से दबे जा रहे थे।

बिखरे हुए बालोंवाला कामेश्वर हाथ के टेनिस-रैकेट को बगल में दबाए इधर-उधर घूमता हुआ सिग्रेट फूंक रहा था। उससे कोई बोल नहीं रहा था। न वही किसी की ओर देखता था। उसे इन सबसे कोई मतलब नहीं था। कमल ने आकर अचानक ही उसके कंधे पर हाथ रखा।

'हलो भाई कमल!' कामेश्वर ने चौंक कर कहा—'अरे भाई, यह क्या झगड़ा है? आखिर मुझसे तुमने पहले ही क्यों न कह दिया? सज्जाद तो अपना ही आदमी था।'

कमल ने गम्भीरता से कहा—'जो आदमी चुनाव और कॉलेज-पॉलिटिक्स (राजनीति) से दूर रहता है, वह ज़रूर सबका दोस्त होता है।'

कामेश्वर सकपका गया। कमल ने उसका हाथ पकड़कर कहा—'चलो, भीतर के कमरे में बैठेंगे, जहां दो और लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। तुम आज इधर कैसे भटक पड़े?'

कामेश्वर ने कहा—'आज मेरा जी बहुत बेचैन है। मुझे कोई बात करने को नहीं मिला। इतनी देर से यहां प्रतीक्षा कर रहा था कि कोई जान-पहचान का मिल जाए। मुझे अकेले खड़े-खड़े कोफ्त होने लगी थी।'

कमल मुस्कराता रहा। लेकिन यह मुस्कान एक विजयी की नहीं थी। जुए में हारकर जब अपनी खिसियाहट छिपाने को खिलाड़ी मुस्कराता है, वही मुस्कान उसके मुख पर लोट रही थी। आज कमल अच्छा लग रहा था। लुटे हुए पथिक से हर कोई सहानुभूति जताता है।

कामेश्वर कुछ बड़बड़ाता रहा। उसमें भी अब वह जोश नहीं रहा था। ऊब-कर बोला—'आओ, भीतर ही चलें। कौन बैठा है वहां?'

अन्दर जाते ही उन्होंने फिर दरवाज़ा बन्द कर लिया। बिजली की बत्ती जल रही थी। उसका प्रकाश मेज पर रखे प्यालों पर पड़ रहा था और वे चमक रहे थे। लट्टू के चारों ओर झाड़-फानूस लटक रहे थे। उनमें से सतरंगी रोशनी पड़ रही थी, किन्तु सिगरेट के धुएं ने उसे प्राय: ढक दिया था। कामेश्वर को देखते ही सब उत्साहित हो गए।

'यहां! कामेश्वर, यहां!' वीरेश्वर ने कुर्सी की ओर इशारा करते हुए कहा।

कामेश्वर उस कुर्सी पर बैठ गया। जब मैक्सुअल प्याले भर चुका तो उन्होंने अपनी सिगरेटें सुलगा लीं। बाहर लड़के गुल मचा रहे थे। कई स्टोव बाहर आवाज करके जल रहे थे।

कामेश्वर ने कहा—'यार ! क्या गजब कर डाला ? और इस कमबख्त बुढ़ापे में ?'

चारों ओर धुआं कांप उठा। किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। जब सबने पहला प्याला समाप्त कर लिया और मैक्सुअल फिर उंडेलने लगा, तब धीरे से वीरेश्वर ने कहा—'मैं प्रिंसिपल से मिला था। अब क्या पूछते हो ?'

कामेश्वर ने प्रश्न भरी आंखों से उसे देखा।

मैक्सुअल बोला—'देखते ही उसने मुझे बुलाया और बहुत शराफत से पेश आया फिर धीरे-धीरे मतलब की बात पर आया। बोला—तुमने यह किया ? ऐसा इस कॉलेज में अभी तक कभी नहीं हुआ था। इसमें तो बदनामी का डर है। तुम चाहो तो पार्लिया-मेंट और यूनियन सभा को बन्द कर दिया जाए, मगर इसका क्या मतलब कि तुम किसी को पहले तो प्रेसीडेंट बना दो और जब वह तुम्हारी गुलामी में न रहे तो तुम उसकी ज़िन्दगी बिगाड़ने की कोशिश करो ? यह तो रोना हुआ। इसमें कालेज के छात्रों का गांभीर्य कहां रहा ? मैं भी सुनता रहा। जब वह कह चुका तो मैंने कहा कि मैं उस पार्टी का हूं जो सज्जाद के विरुद्ध है। हमने अपना मौका ढूंढ़ा। प्रजातन्त्र का अर्थ ही यह है। हमने गलत कोई बात नहीं की।

'प्रिंसिपल हंसा। बोला—बच्चों की-सी बातें न करो। मुझे सज्जाद के विरुद्ध विधान के अनुसार तो कोई बात नहीं मिलती। उसने मुझे बोलने का मौका ही न दिया अन्त में बोला—तो अपनी गलती महसूस करते हो न ?

'मैं चुप रहा। मैंने समझा, शायद बात यहीं खत्म हो गई। मुझे चुप देखकर वह फिर बोला—मुझे बड़ी खुशी हुई कि तुमने अपनी गलती महसूस की। आज सुबह स्टाफ़ ने एक रूलिंग दी है। उसके मुताबिक तुम ज़रूर काम करोगे। आओ माफी लिख दो कि तुम्हें अपनी हरक़त पर सख्त अफसोस है। मुझे आना-कानी करते देखकर बोला—तुम्हारा साल बिगड़ जाएगा। वज़ीफा रुक जाएगा, तुम कॉलेज से निकाल दिए जाओगे। तुमने वह काम किया है जिससे विद्यार्थी-संघ लाभ उठा सकता है। लिख दो।

'मैं कांप उठा। कांपते हाथों से मैंने दस्तखत किए।'

कामेश्वर स्तब्ध बैठा रहा। मैक्सुअल ने हाथों में मुंह छिपा लिया। वीरेश्वर ने सिर झुका लिया। उसकी मुद्रा से प्रकट था कि वह माफी मांगने से भी ज़्यादा दर्द-नाक थी। कामेश्वर ने चौंककर उसकी तरफ देखा। कमल हंसता रहा। कामेश्वर ने उसके कंधे झकझोरकर उससे कहा—'कमल ! इस तरह इनका अपमान न करो। कॉलेज और घर में बड़ा अंतर होता है। कोई नहीं जानता कि किसके घर में किसकी क्या हालत है ! आजकल जीना भी बहुत मुश्किल है।'

कमल चुप हो गया। कामेश्वर ने सिगरेट का अन्तिम कश खींचकर सिगरेट फेंक दी और साथ ही कमल उन तीनों को देखकर उठाकर हंस पड़ा। उसने कहा—'माफी मांग ली और लोगों से आकर कह दिया कि प्रिंसिपल क्या कर सका हमारा ? मजाल है उसकी कि कुछ कर सके ! मगर कल जब वह ही सुबह असेम्बली में पढ़कर उन कागज़ों को सुनाएगा, उस वक्त···' कमल बीभत्स कठोरता से ठहाका मारकर हंसा। कामेश्वर सिहर उठा। कमल ने धीरे से बुझते हुए कहा—'मैंने माफी नहीं मांगी, मुझे

कॉलेज से निकाल दिया गया है।'

तीनों स्तब्ध बैठे रहे, किन्तु कमल फिर हंसने लगा। आज उसके पास और था ही क्या···?

36

लवंग का जीवन क्या है, वह सबके लिए एक समस्या बन गया है। वह चुप रहती है। भगवती को अब वह कभी नहीं मिलती। सारा जीवन प्रायः छिन्न-भिन्न हो गया-सा लगता है। सभी एक-दूसरे से मिलते हैं, किन्तु वह उत्सुकता किसी में भी नहीं है। मां को अकेली छोड़कर भगवती जब से गांव से फिर कॉलेज में लौट आया है, वह किसी से नहीं मिलता। उस दिन लीला का हृदय व्याकुल किया था। इन्दिरा को वह सब नहीं मालूम। कामेश्वर भी भगवती से नहीं मिलता। हृदय में सन्देह की गांठ पड़ गई है। राजेन की मृत्यु का शोक अधिक दिन तक किसी के हृदय में नहीं टिक सका। किन्तु कभी-कभी जब भगवती सोने जाता है तो राजेन का मुख उसकी आंखों के सामने नाचने लगता है और भगवती व्याकुल होकर करवटें बदलने लगता है।

लवंग को विधवा के वेश में देखकर कॉलेज के लड़कों को कोई शाक नहीं हुआ। वे सब उसे टके सेर समझते थे और इसमें उन्हें कहीं भी अपने विचारों को सुधारने की सहनशीलता नहीं थी।

लवंग का एक अनोखा रूप प्रारम्भ हो गया है। इसे कॉलेज में एक लड़की जानती है, वह है लीला।

राजेन की मृत्यु को प्रायः दो महीने बीत चुके हैं। वह निर्दयी था, उसने वे आभूषण उतरवा दिए, वह सजधज छीन ली और एक प्रकार से उसे नंगा करके चला गया। देर तक लवंग बैठी रहती। चुपचाप कुछ सोचा करती। संध्या की उतरती धुंध में धीरे-धीरे उसकी दृष्टि जाकर लय हो जाती और फिर तन-मन उस अन्धकार में डूब जाते। वसन्त की वह सुलगती वायु झनझनाने लगती। पेड़ में से ध्वनि आती—आ रही हो ? और लवंग सूनी आंखों से ऐसे देखती जैसे उसे बुलाया है ? सच, विश्वास नहीं होता।

पेड़ों पर बौर फूटती है, यहां तक कि नीम तक में एक सुगन्ध फैल जाती है और धूप सुनहली होती है, दिन कैसे मधुर होते हैं···

रात को आकाश में तारे निकल आते हैं। कितना असीम विस्तार फैल जाता है। उन तारों के बारे में वह कुछ नहीं जानती, किन्तु वे मन की तृष्णा को जगा देते हैं। एक पुरुष था, करोड़ो मील पार। आज वह पुरुष नहीं है तो अपना मन भी खाली है, शून्य है।

वायु कैसी मतवाली होकर चलती है। सरसों के खेत फरफराते हैं। कल वह उन्हें देखती, उनके फूल अपने जूड़े में लगा लेती। और कोई होता तो उसे बाहु में

बांधकर चूम लेता। कितना अच्छा होता वह सब ! पर अब तो व्यर्थ है। वह जो जगह खाली हुई है, वह उसे कैसे भर सकती है !

लवंग चौंक उठी। उसने देखा। समर आया था। इतने बड़े संसार में आज उसका कोई नहीं। केवल एक यह ही है जो दुःख में सहारा बन गया है। कैसा निरीह ! कैसा उदास !

भैया को तो कोई मतलब ही नहीं। सुना था, राजेन मर गया और धड़ाम से कुर्सी पर बैठ गए। फिर कहा था—'लवंग ! ज़मींदारी है। घबराओ नहीं। पिताजी के रहते भी और बाद में भी सब तुम्हारी ही है। लेकिन मैं एक राय देता हूं, मानना न मानना तुम्हारा अधिकार है।'

लवंग ने आंख उठाकर देखा। भैया ने कहा—'तुम फिर से कॉलेज लौट जाओ।'

और लवंग कॉलेज लौट आई। मन की एक फांस थी। वह तो अब भी है। जब भगवती की उसे याद आती है तो हृदय व्याकुल हो उठता है। तो क्या आज वह वास्तविक मालकिन है ? कल जिसे उसने नौकर रखने को बुलाया था, आज वह उसका संरक्षक हो सकता है ?

फिर धागा टूट जाता, या उलझ जाता। बड़ी देर में जब दोनों छोर मिलते तब वह उन्हें जोड़ने का प्रयत्न करती। किन्तु उसका परिणाम और कुछ नहीं, हृदय में एक गांठ पड़ना ही तो था। दूर करना चाहती है वह उस गांठ को, किन्तु फिर डोरा एक नहीं रहता, टूट जाता है।

क्या सचमुच जो वह कहता है उसी में विश्वास भी करता है, या यह सब केवल दिखावे की बात है ? क्या वह वास्तव में इस सबसे इतनी घृणा करता है ? क्योंकि उसकी मां ने यह पाप किया था ? गैरकानूनी बेटा ! क्या ले सकेगा वह ? मुकदमा लड़ेगा तो हार ही जाएगा और फिर अदालत में जाने के लिए पैसा चाहिए। किन्तु अकेली रहकर वह कैसे सब काम संभाल लेगी ?

फिर कुछ समझ में नहीं आता। याद आता, कॉलेज में हाज़िरी पूरी नहीं है। शायद उसे इम्तहान में बैठने भी नहीं दिया जाये। लेकिन फिर ? फिर वह क्या करेगी ? इस साल जैसे भी हो सब पढ़ाई-वढ़ाई समाप्त कर दी जाए, और उसी समय बगल के बंगले में से यौवन-द्वार पर खड़ी कुसुमा की वीणा की झनझनाहट और वह मादक स्वर, जो कोयल की कुहू की तरह दहकते अंगार-भरा, आकाशगंगा की तरह विशाल-विशालतर होकर क्षीण पृथ्वी को दूर ही दूर से घेर लेता और तब सुलगती, चांदी की दूधिया चांदनी जगा देती, सुला देती, समस्त संसार, ताल, पेड़, घास, घर; दूर काली सड़क की प्रकाश में चमकती सफेद सतह ! और फिर पानी पर बहती-बहती चांदनी—बड़े-से चांद की परछाहीं; वह कोने में से निकलकर झोंका सब ओर फैल गया है, कोई कह उठा है—'सूनापन ! अंधेरा ! और लवंग वक्षस्थल पर दोनों हाथ रखकर सुनती है हृदय की धड़कन···सारी सृष्टि यहीं गरज रही है, कौन बुला रहा है···यौवन ! गर्म लोहे से दाग दो न यह उन्माद कि पीड़ा से घायल निःशक्त होकर गिर जाए, फिर प्यास नहीं लगे, कंठ इतना सूख जाए कि पानी की आवश्यकता ही न रहे।'

घृणा भी है, स्नेह की अज्ञान भावना भी है, उपेक्षा भी है, सबका प्यार पाने की गुप्त लालसा भी है, चाहती है सबसे घुल-मिल जाऊं, किन्तु मन को शीघ्रता से विश्वास नहीं आता और अभी तक जो प्यास कभी प्यास नहीं मालूम दी, उसे दो बूंद कंठ में डालकर कितना तीव्र बना दिया है उसने। चला गया है और समाज ने एक स्वर से कह दिया है—तेरा जीवन प्यास को फूंक देने में है, क्योंकि अब तुझे पानी कभी भी नहीं मिलेगा। इसी से तो जीवन और भी भयावना मालूम देता है। लवंग खाली हाथ पसार देती है। गरीब हो, अमीर हो, कोई कैसा भी हो, किन्तु क्या उससे भी गया-बीता है? साधन है, किन्तु उन्हें भोगने का अधिकार नहीं रहा; और फिर अनेक-अनेक चित्र याद आते: लोग सबकी खिल्ली उड़ाते हैं, किन्तु सबकी गुप्त अभिलाषा होती है, काश वही उस स्थान पर होते जहां लवंग विधवा थी। वह सारे संसार को अपने बंधनों में से ऐसे देखती जैसे वह एक वेश्या को देख रही थी, जिसे सब बुरा कहते हैं, किन्तु जिसका आनन्द स्त्रियों की टीस है, यौवन पुरुष की तृष्णा है।

अखबार आता। कितना बड़ा युद्ध चल रहा है। किन्तु लवंग के लिए उसका मूल्य? व्यर्थ है, सभी व्यर्थ है, वह उन्माद भी व्यर्थ है यदि लवंग में उसके प्रति अट्टहास करने की शक्ति नहीं है।

और फिर समर! कितना स्नेहशील है! और फिर भगवती···वह क्या करे? लवंग बार-बार न रोया कर···अभी तो दो ही महीने बीते हैं, जाने कितना लम्बा जीवन पड़ा है···दीर्घ···आज राह सचमुच कंटीली हो गई है···पग-पग पर रेत धधक रही है, पांव जल रहे हैं, और भीतर मन का दीपक अब भी बुझ-बुझकर जल-जल उठता है, जैसे समस्त जीवन, समस्त आकुल यौवन, एक लपट है, जो निराधार शून्य में हाहाकार कर रहा है···

सांझ की बेला थी। 'एकसरि तारा' आकाश में निकल आई थी। भगवती कॉलेज की फील्ड पर टहल रहा था। एकाएक एक मोटर के हॉर्न ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। देखा, लीला उतर आई थी। वह उसे बुला रहा था। विस्मय हुआ। उपेक्षा पीछे-पीछे चली आई है। क्यों आई है? सदा के लिए सब कुछ हो गया, फिर भी इसकी दावा पर अभी घोर वर्षा नहीं हुई।

वह पास गया। लीला ने आतुरता से कहा—'भगवती! आज मैंने व्यर्थ नहीं बुलाया।'

'क्यों, क्या बात है?' भगवती ने पूछा। उसने अपने कानों से सुना, उसका स्वर कुछ रूखा था। लीला ने कुछ बुरा माना। उसने कहा—'चलो, मेरे साथ मोटर में। आज ही तुम्हें एक मज़ेदार चीज़ दिखाऊंगी।'

भगवती ने कुछ सोचा। फिर कहा—'चलो।'

भगवती बैठ गया। लीला ने मोटर स्टार्ट कर दी। भगवती को विस्मय हुआ—'आज इतनी हिम्मत कैसे आ गई? दिन-दहाड़े बिठाए लिये जा रही है। आज कोई डर नहीं। कल तक तो बात करने में सांस भिचता था।' किन्तु लीला आवेश में थी। उसने वह सब बिल्कुल नहीं देखा।

एकाएक वह चौंक उठा। उसने कहा—'कहां जा रही हो?'

'पार्क की ओर,' लीला ने उसकी ओर देखे बिना ही कहा ।

'पार्क की ओर ? क्या दिमाग बिगड़ गया है ? पार्क की ओर ? क्यों ? इतनी निर्भीक !'

सड़क घूमी । लीला ने जनजनाती तेज़ी से गाड़ी ले जाकर एक पेड़ के नीचे खड़ी कर दी और सड़क पर उतरकर कहा—'मेरे साथ आओ ।'

भगवती को फिर विस्मय ने काट लिया । लीला तेजी से कदम बढ़ा रही थी । झाड़ियां आ गईं । भगवती ने चौंककर पूछा—'कहां जा रही हो ?'

'मेरे साथ आओ न !' लीला ने आतुर होकर कहा ।

'पहले मुझे बताना होगा ।' और भगवती ने अपने चारों तरफ की झाड़ियों की की ओर देखा, जिन्होंने उन दोनों को सबसे छिपा लिया था ।

'तुम्हें मुझपर सन्देह है ?' लीला ने लौटकर पूछा ;

'नहीं,' घास पर बैठते हुए भगवती ने कहा—'मैं तब तक नहीं चलूंगा जब तक तुम अपने मन की बात नहीं बतलाओगी ।'

लीला ने कहा—'तुम मूर्ख हो ।'

भगवती ने कहा—'वह मैं जानता हूं ।'

'भगवती !' लीला की आवाज़ तीक्ष्ण हो गई । किन्तु भगवती बैठा रहा । लीला भी हारकर बैठ गई ।

भगवती ने कहा—'मुझे इस एकांत में क्यों लाई हो ?'

लीला ने कहा—'मैं तुम्हारे दुःख से दुःखी हूं ।'

'हूं,' भगवती की आवाज़ निकली, 'धन्यवाद !'

लीला ने चिढ़कर कहा—'तुम मूर्ख ही नहीं, हठी भी हो ।'

भगवती हंस दिया । 'क्या बात है, कहतीं क्यों नहीं ?' उसने सरल स्वर से कहा ।

लीला ने धीरे से कहा—'एक बात कहूं ?'

भगवती ने सिर हिलाया ।

'आज समर और लवंग इसी पार्क में आए हैं कहीं । ढूंढ़ने पर मिल जाएंगे ।'

भगवती हठात् गम्भीर हो गया । पूछा—'क्या होगा ढूंढ़कर ?'

लीला सकते में पड़ गई । कैसे कहे । उसने कहा—'तुम नहीं समझते जैसे ।'

'समझता हूं, पर समझना नहीं चाहता ।' उसका स्वर दृढ़ था ।

'जानते हो,' लीला ने कहा—'लवंग कितनी घमंडिनी है । वही तुम्हारे रास्ते का एकमात्र कांटा है ।'

'कांटा ?' भगवती ने चौंककर पूछा—'कैसा कांटा ?'

लीला ने कहा—'यदि तुम उसे इस समय लज्जित करते हो तो वह सारी जायदाद तुम्हारी हो जाएगी और जो लवंग एक दिन तुम्हें नौकर रखने का दंभ दिखला रही थी, तुम उसे नौकर रख सकोगे ।'

भगवती ने देखा । क्या वास्तव में यह सत्य है ? लीला में यह स्वार्थ क्यों है ? उसने कहा—'लीला ! उससे क्या होगा ?'

'क्यों,' लीला ने व्यंग्य से कहा—'कल तक तो बार-बार सुनाते थे, मैं गरीब हूं मैं गरीब हूं और आज जब मौका आया है तो दूसरी शान दिखलाने लगे कि मैं रईस नहीं होना चाहता, मैं अमीर नहीं होना चाहता !'

'किन्तु क्या दूसरों की निर्बलता का लाभ उठाना चाहिए ?'

'और दुनिया में होता ही क्या है ?'

लीला को मन ही मन क्रोध आ गया। उसने कहा—'अच्छा, मान लो तुम्हें इस सबकी आवश्यकता नहीं, लेकिन क्या घर में ऐसी बात होती रहे और तुम देखते रहोगे ? हिन्दुओं में ऐसा तो नहीं होता।'

भगवती हंस दिया। उसने कहा—'लीला, कोई कुछ करे, हमें क्या ? वे सब भी परिस्थितियों के दास हैं। मनुष्य में दुर्बलता होना स्वाभाविक है। अब कोई मुझसे कहे—लीला से प्रेम करना छोड़ दो, तो क्या मुझे यही करना चाहिए ?'

लीला चौंक गई। उसने कहा—'भगवती ! क्या यह तुमने सच कहा है ?'

भगवती ने घास पर लेटकर हाथ फैलाते हुए कहा—'तो क्या तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं है ?'

'विश्वास !' लीला ने सोचा। प्रकट रूप में कहा—'तुमसे अधिक और किसमें मेरा विश्वास हो सकता है ?'

'नहीं लीला,' भगवती ने कहा—'तुम मुझे कभी प्रेम नहीं करती थीं। अभी तक जो तुमने किया वह एक गरीब के लिए दया मात्र थी। मैं देखता हूं, जब से यह बात खुल गई है, तुम मुझसे घृणा करने लगी हो...'

बात समाप्त होने के पहले ही लीला ने हाथ रखकर भगवती का मुंह बन्द कर दिया। कहा—'यह तुमने क्या कहा भगवती ? मेरे हृदय को टूक-टूक कर डाला। क्या तुम मुझे भी इन्दिरा जैसी ही समझते हो ?'

भगवती ने बदलकर कहा—'इन्दिरा की बात जाने दो। उसने कभी मुझे स्नेह के अतिरिक्त आगे और कुछ नहीं दिया। वह कभी मुझसे प्रेम नहीं करती थी। किन्तु तुम ? तुमने मुझे प्यार करने की बात कही थी। आज तो वह बात नहीं रही। तुम तो मुझसे दूर-दूर भागती हो...'

'किसने कहा तुमसे ?' लीला आवेश में उसपर झुक गई। 'तुमसे ऐसा किसने कहा'—वह रो रही थी—'तुमने ऐसा सोचा भी क्यों ? यदि लीला मूर्खा है तो तुमने उसे डांटकर ठीक क्यों न कर दिया ? भगवती, तुमने यह क्या कर दिया ? मैं तुमसे कभी दूर नहीं हो सकती, मैं कभी तुम्हें घृणा नहीं कर सकती...।' लीला के हाथों ने भगवती को घेर लिया, 'कोई भी मुझे तुमसे संसार में अलग नहीं कर सकता। मैं तुम्हारे बिना कभी भी जीवित नहीं रह सकती, भगवती, मैं तुम्हें प्यार करती हूं, भगवती,...' और लीला ने जी भरकर भगवती के गाल को चूम लिया, जैसे अंग्रेज़ी सिनेमा में होता है।

भगवती ने कहा—'जीवन कितना सुन्दर है !'

लीला गर्म-गर्म श्वास ले उठी और उसने मादक रक्तिम नेत्रों से 'भगवती को देखा। क्षण-भर भगवती की आंखों में भी एक छलना नाच उठी, किन्तु उसके बाद वह ठठाकर हंस पड़ा। उसने कहा—'लीला ! यह तुम क्या कर रही हो ?'

लीला ने चौंककर उसे छोड़ दिया। बैठ गई। वह कुछ भी नहीं कह सकी।

भगवती ने करवट लेकर कहा—'क्या हिन्दुओं में ऐसा होता है ?'

इससे ज़्यादा कुछ नहीं। लीला रोने लगी। बहुत रोने लगी। भगवती पड़ा रहा। उसने कहा—'बहुत न रोओ। कहीं इस समय लवंग ने हमें देख लिया तो जायदाद मिलने की जो दो-एक उमीदें हैं वे भी यहीं खत्म हो जाएंगी।' वह फिर ठठाकर हंस पड़ा। लीला ने चुप होकर उसकी ओर देखा। आंखों में आंसू थे। भगवती ने उसीके आंचल से उसके आंसू पोंछते हुए कहा—'कमबख्त निकल आते हैं, वक्त भी नहीं देखते। यह कीमती साड़ी आंसू पोंछने के लिए है ? रहने दो लीला। रोओ नहीं। कोई देखेगा, तो क्या कहेगा ? ऐसे त गांव की औरतें ससुराल जाते वक्त रोया करती हैं।'

लीला ने क्रोधपूर्ण नेत्रों से उसे देखा और कहा—'मैं तुमसे घृणा करती हूं।'

भगवती ने कहा—'धन्यवाद ! मतलब यह कि दिल से प्यार करती हूं।'

लीला क्रोध से फुंकारती धम-धम करती उठकर चली गई। जब वह झाड़ियों के पास जाकर अदृश्य हो गई, भगवती हंस पड़ा।

इसी समय लवंग उधर से निकली जिधर भगवती की पीठ थी। वह कुछ उन्मत्त-सी थी। उसने देखा, भगवती अकेला पड़ा हंस रहा है। वह ऐसे ठिठक गई, जैसे राही पथ में सांप को पड़ा देखकर उठा कदम पीछे धर लेता है।

दूसरे दिन कालज का असेम्बली में प्रिंसिपल ने पढ़कर सुनाया—'कल रात समरसिंह, एम० ए० के विद्यार्थी, ने अपने होस्टल में ज़हर खाकर आत्महत्या कर ली। उसने मरते समय एक पत्र छोड़ा है। मरने का कारण लिखा है कि 'मैं किसी भी योग्य नहीं हूं, अत: मैं अपने जीवन की अपमानित और घृणित सत्ता को अधिक नहीं चलाना चाहता। इसलिए मैं विष खाकर संसार को पवित्र कर देना चाहता हूं।' मैं आप लोगों से मृत आत्मा की शांति के लिए दो मिनट खड़े होकर सम्मान प्रदर्शित करने की प्रार्थना करता हूं।'

हॉल से निकलते समय चारों ओर सनसनी फैल गई।

दोपहर के वक्त भगवती लेबोरेटरी में टाईट्रेशन कर रहा था। मेज़ पर स्टैंड में ब्यूरेट लगा हुआ था, जिसमें एक सफेद द्रव था, जिसके नीचे एक फ्लास्क में लाल रंग के द्रव में वह धीरे-धीरे बूंद गिराने में तल्लीन था।

डॉक्टर कुमार ने कंधे पर स्नेह से हाथ रखकर कहा—'हो गया ?'

'जी हां, टाईट्रेशन खत्म होने में तो अब देर नहीं, बस मिक्सचर निकालना बाकी रह गया है।'

'ठीक है, शाबाश,' डाक्टर कुमार ने हंसते हुए कहा—और वह आगे बढ़ गए। किसीने झांककर पूछा—'डाक्टर गया ?'

भगवती ने कहा—'हां, आओ।'

लीला फिसलती-सी भीतर आ गई। उसने कहा—'बाहर चलो, मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूं।'

'मैं ज़रा अपना टाईट्रेशन खत्म कर लूं।'

'टाईट्रेशन ! फिर होता रहेगा । चलो, चलो ।'

भगवती ने मुस्कराकर कहा—'चलो ।'

बाहर पेड़ के नीचे से निकलकर दोनों नागफनी के पास जाकर खड़े हो गए । भगवती ने लीला की ओर देखा, जैसे पूछा हो—'अब कहो ।'

लीला ने कहा—'कल तुमने मेरा इतना अपमान किया था, पर अब तो देख लिया ?'

'क्या ?'

'यही कि कल चलते तो आज समर की मृत्यु नहीं होती ।'

'तो क्या,' भगवती ने गम्भीर होकर पूछा—'तुम्हारा मतलब है, लवंग ने ही समर को विष दिया था ?'

'नहीं,' लीला ने कहा—'किन्तु समर ने विष खाया ही क्यों ?'

'अपमानित जीवन से अपने आपको मुक्त करने के लिए । पुरुष का शरीर लेकर यदि वह पुरुष नहीं था तो उसमें लवंग का क्या दोष ?'

'तुम लवंग की ओर से बोल रहे हो ?' लीला ने आंखें फाड़कर पूछा—'क्या लवंग का इसमें कोई दोष नहीं ?'

भगवती ने दृढ़ता से कहा—'मैं उसको अपमानित करके बदला लेना नहीं चाहता । मैं नहीं जानता मैं क्या करूं । मां से भी आज मैं दूर हो गया हूं । तुम भी मुझे वास्तव में प्यार नहीं करतीं । गांव के दृश्य को देखकर आज मेरा मित्र, मेरा कामेश्वर भी संदेहों के कारण मुझे छोड़ गया है । केवल एक आशा है और वह है इंदिरा । उसने कभी भी अकेले में मुझे देखकर आलिंगन करने की चेष्टा नहीं की, उसकी मित्रता में कोई स्वार्थ नहीं ।'

'तुम झूठ बोलते हो । सरासर झूठ कह रहे हो ।' लीला ने कटाक्ष करते हुए कहा—'मैंने सब कुछ देखा है ।'

'क्या देखा है तुमने ?' भगवती के होंठ का एक कोना उपेक्षा से पत्ते की तरह बल खाकर मुड़ गया ।

'मैंने क्या नहीं देखा है, यह पूछते तो अधिक उपयुक्त होता । मैंने उसे तुम्हारी गोद में बैठे देखा है ढोंगी ! मैंने उसे तुमसे उस अवस्था में आंखें मिलाते देखा है । तुमने जो वासना से पतित कहकर मुझे बार-बार अपमानित किया है, वह और किस-लिए ? इसलिए कि तुम्हारा इन्दिरा से सम्बन्ध था । और क्योंकि तुम्हें मालूम था कि लवंग को यह बात ज्ञात है, इसीसे तुममें कल इतना साहस नहीं था कि उसे जाकर पकड़ लेते ।'

'तुम्हें यह मालूम कैसे पड़ा कि लवंग कल पार्क जानेवाली थी ?'

लीला ने कहा—'मुझसे और किसीने नहीं कहा । मैंने लाइब्रेरी में उन्हें एक-दूसरे से बात करते सुना था ।'

'और तुमने विश्वासघात किया ?'

'नहीं, मैं तुम्हें प्यार करती थी ।'

'मुझे इसका विश्वास नहीं ।'

'तुम्हें क्यों होने लगा ? इन्दिरा सलामत रहे। तुम तो हम दोनों को ही फांसे रखना चाहते थे, किन्तु वह तो मेरी किस्मत थी कि धोखे में नहीं फंसी।'

'लीला, वह मेरी बहन है।'

लीला ने उपेक्षा से कहा—'राजनीति में कम्युनिस्ट होना और प्रेम में प्रियतमा को बहन बताना आजकल की सबसे बड़ी ईजाद है।'

भगवती ने धीरे से कहा—'इस विषय पर मैं किसीको भी कोई सफाई नहीं देना चाहता।'

लीला ने मुस्कराकर कहा—'अब तो तुम इन्दिरा से ब्याह कर सकते हो! अब तो तुम्हें धन की कमी नहीं ? और तब भी मुझसे बातें करते समय ही तुम्हें अपनी गरीबी याद आती थी, इन्दिरा को गोद में बिठलाते वक्त बिरला बन गए थे ?'

'अच्छा मान लो यह सब सच है, लेकिन क्या इसमें ही तुम्हें इंदिरा से जलन है ?'

'जलन नहीं, मैं उसकी प्रशंसा करती हूं। मैं उतनी चालाक नहीं हूं। मैं यदि किसीकी लड़की हूं तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं। मैं यदि इस तरह पली हूं तो इसे अस्वीकार कर देना असम्भव है।'

'तो तुम कहना क्या चाहती हो ?' भगवती ने सिर उठाकर पूछा।

'कुछ नहीं। बस तुमसे बात करना चाहती थी!'

'ओह!' कहकर भगवती हंस दिया। उसने कहा—'लीला, एक बात कहूं, सुनोगी ?'

'कहो,' लीला ने उत्सुकता से पूछा।

'विश्वास तो तुम नहीं करोगी, किन्तु सुनकर यदि बुरा न मानो तो मैं कह सकता हूं।'

'कहो न ?'

'देखो! कामेश्वर, समर, समर तो रहा ही नहीं, वीरेश्वर, तुम, इन्दिरा और लवंग, यही न गांव गए थे ?'

'हां!'

'तो इन लोगों ने किसीसे भी गांव के किस्से नहीं कहे। तुम एक काम अगर करना चाहो तो कर सकती हो, और मैं समझता हूं तुम्हें वह करना ही चाहिए।'

'काम का नाम नहीं है ?' लीला ने ऊबकर पूछा।

'काम से ही तो नाम है मिस लीला!' भगवती ने हाथ फैलाकर कहा—'गांव के सारे किस्से, मैं नालायक बेटा हूं, लवंग दुश्चरित्रा है, मैं ढोंगी हूं, इन्दिरा व्यभिचारिणी है, यह सब तुम फैला नहीं सकतीं ? मैं समझता हूं, यह तुम्हारी प्रतिहिंसा को सबसे अधिक तृप्ति दे सकेगी। तुम इतनी निर्बल हो, मुझे तुमसे पूर्ण सहानुभूति है, मेरी यही सलाह है।'

लीला ने कहा—'तुम किसीसे नहीं डरते ? सारे वज़ीफे बन्द हो जाएंगे।'

'जैसे ज़मींदार से रुपये लेने छोड़ दिए, वैसे ही यह भी सही। इम्तहान के दिन है, खूब ट्यूशन मिल रहे हैं। ज़्यादा से ज़्यादा रोज सोलह-सत्रह घंटे ही तो काम करना

पड़ेगा। उसकी कोई चिन्ता नहीं। पर मैं चाहता हूं, तुम अपने अपमान का बदला न ले सकने की असमर्थता की याद से न कसको, तुम मन भरकर एक बार अपनी सारी वेदना उंडेल दो।'

लीला ने सुना और सिर झुका लिया।

37

जो मेहनत नहीं करता उसे खाने का अधिकार नहीं है। जो गैरहाज़िरी में कमाल करता है उसे इम्तहान में बैठने की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। यह एक कानून है। लेकिन संसार में आज दोनों ही बातें नहीं हैं, जैसे कि हर धर्म में झूठ बोलना मना है, धर्म के लिए लड़नेवाले अपने-अपने धर्म को बचाने के लिए उसी एक हथियार को काम में लाते हैं।

कॉलेज के दफ्तर में जब लवंग किसी काम को गई तो सेक्रेटरी ने कहा—'मिसेज़ लवंग, आपकी हाज़िरी पूरी नहीं है। आप इम्तहान में नहीं बैठ सकतीं।'

लवंग का चेहरा एकदम फक्क पड़ गया। उसने कहा—'आपने अब आखिरी वक्त बताया है!'

'इससे पहले मुझे फुर्सत नहीं मिली मिसेज़ लवंग, बिल्कुल फुर्सत, सांस लेने की फुर्सत नहीं मिली।' और वह फिर नोट गिनने लगा। बैठा बनिया बाट तोला करता है। हमेशा यही दिखाते रहना चाहिए कि हमें बहुत काम है। आजकल फिर सेक्रेटरी के ऐंठ दिखाने के ज़माने आ गए हैं। लवंग सोचती हुई लौट आई। सीधे जाकर ऊषा से कहा—'देखो ऊषा, मैं इम्तहान में नहीं बैठ सकता।'

ऊषा के मुंह से केवल एक शब्द निकला—'अरे!'

लवंग ने और कुछ नहीं कहा। वह चली गई। रास्ते में वीरेश्वर मिला। रोक-कर कहा—'मिस्टर वीरेश्वर!'

'जी,' वीरेश्वर ने उसपर दृष्टि डालते हुए उत्सुकता से पूछा।

'देखिए न! मेरी हाज़िरी कम हो गई है। सेक्रेटरी कहता था, मैं इम्तहान में नहीं बैठ सकती।'

'आप प्रिंसिपल से मिलीं?' वीरेश्वर ने सुझाते हुए कहा।

'अभी तो नहीं। लेकिन अगर पहले ही उससे मिलूं और वह मना कर दे तो समझ लीजिए, फिर वह पत्थर की लकीर है। वह अंग्रेज़ है, और हिन्दुस्तानियों पर रियायत करना उसकी नज़र में अपने धर्म को छोड़ना है।'

वीरेश्वर कुछ सोच में पड़ गया। कहा—'पर आपके पास तो गैरहाज़िर रहने के ठोस कारण हैं। उसमें तो आपकी कोई ग़लती नहीं। आप उसमें कर ही क्या सकती थीं?'

'यही तो सोच रही हूं। कुछ समझ में नहीं आता।'

शाम तक लवंग इसी उलझन में पड़ी रही। अन्त में उसने निश्चय किया और वह उसी हालत में जाकर मोटर में बैठ गई।

प्रोफ़ेसर मिसरा ने लवंग की ओर देखकर मुस्कराकर स्वागत किया। नौकरों को आवाज़ देकर कहा—'चाय ले आओ।'

लवंग मुस्कराकर बैठ गई।

प्रोफ़ेसर ने आज लवंग को मुद्दत के बाद अपने घर पर देखकर अपने भाग्य को सराहा। घर पर मिसेज़ मिसरा थीं नहीं। लड़कियां भी अपने रोज़गार से लगी, कहीं चली गई थीं।

लवंग ने कहा—'देखिए न! आज सेक्रेटरी साहब ने कहा कि मेरी हाज़री कम हैं। मैं इम्तहान नहीं दे सकती।'

'ओहो,' प्रोफ़ेसर के मुंह से निकल गया—'बड़े अफसोस की बात है!'

'मगर आप ही बताइए, इसमें मेरा क्या कसूर है? आप तो सब कुछ जानते ही हैं?'

'Of course,' प्रोफेसर ने सिर हिलाकर कहा—'आपका इसमें कोई दोष नहीं।'

लवंग ने लचककर कहा—'तो फिर बताइए न मैं क्या करूं? कुछ समझ में नहीं आता।'

अधेड़ प्रोफेसर ने देखा और मन ही तन मुस्कराया। प्रोफेसर ने गम्भीरता से उत्तर दिया—'तो आपने क्या सोचा इस बारे में?'

'जी, मैं तो कुछ भी नहीं सोच सकी।'

प्रोफेसर चिन्तामग्न-से उठकर चलने लगे। लवंग भी उठ खड़ी हुई। उसने प्रोफेसर की ओर देखा।

दूसरे दिन। वीरेश्वर उठकर उत्तेजित-सा बोल उठा—'यह नहीं कामेश्वर! जहां तक मैं सोचता हूं, जब तक मैं पहुंचा था तब तक लवंग और प्रोफेसर···'

कामेश्वर ने बात काटकर कहा—'यह तुम्हारी प्यास है जो दूसरों पर दोष लगाने में तनिक भी नहीं हिचकिचाती।'

बाहर पगध्वनि सुनाई दी।

कामेश्वर ने कहा—'कौन?'

भीतर प्रवेश किया। देखा भगवती था। वीरेश्वर ने कहा—'आओ! बैठो।'

कामेश्वर ने उपेक्षा से मुंह फेर लिया। बात भी समाप्त हो गई, क्योंकि दोनों ही लवंग के बारे में भगवती के सामने बातें करने में हिचकिचा रहे थे। थोड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा। अन्त में भगवती ने कहा—'क्या मैंने तुम लोगों की बातों में विघ्न डाला?'

'नहीं तो!' वीरेश्वर ने कहा—'किसने कहा?'

भगवती ने कहा—'कहा तो किसीने नहीं। लेकिन मेरे आते ही तुम लोग चुप हो गए? लवंग के बारे में ही तो बातें कर रहे थे, फिर रोक क्यों दीं?'

दोनों ने एक बार आपस में आंखों की गति का अदला-बदला किया। उसमें विस्मय था।

'वह तुम्हारे भाई की बीवी है न ?' कामेश्वर ने व्यंग्य से कहा।

'ओह !' भगवती हंसा—'तो तुम भी मुझे सम्मानित व्यक्ति बना देना चाहते हो ? मैं एक नाजायज़ बेटा हूं, कभी भूलकर भी याद नहीं किया ? मेरे घर में यदि तुम उसे मेरा ही घर कहो, बताओ कौन-सी बात जायज़ है ? मैं स्वयं इस योग्य नहीं हूं कि किसी दूसरे को बुरा कहूं।'

कामेश्वर ने मुड़कर कहा—'भगवती ! धोखा दे रहे हो और वह भी अपने आपको ?'

भगवती ने तीक्ष्ण स्वर से कहा—'भगवती ने कभी अपने-आपको धोखा नहीं दिया।'

'इसका सबूत,' कामेश्वर ने आगे झुककर पूछा।

'इन्दिरा !' भगवती के निर्दोष नेत्र चमक उठे। वह शब्द एक था या अनेक तोपों के साथ धू-धड़ाम छूटने की भांति था, पर स्वर गर्जन बन गया और कामेश्वर ने चिल्लाकर कहा—'भगवती !'

'नहीं कामेश्वर ! भगवती इस बात से नहीं डरता कि तुम उसे आस्तीन का सांप कहोगे, या बहुत सम्भव है, क्रोध में उसपर वार भी कर बैठोगे। लेकिन वह सच बात सदा ही बार-बार दुहराएगा।' भगवती ने स्वर बदलकर कहा—'कामेश्वर ! कॉलेज में तुम पहले व्यक्ति थे जिसने मुझे अपना स्नेह दिया था, किन्तु जितनी सरलता से तुमने मुझे दूर कर दिया, उसे देखकर मैं तुम्हारे प्रति श्रद्धानंत हूं, क्योंकि यह तुम्हारी दृढ़ इच्छाशक्ति दिखाता है। लेकिन एक दिन इन्दिरा को मेरे सामने रोते देखकर जो तुमने अपने मन में अपने समाज के मापदण्डों से गलत धारणा बनाई है, उसीका मुझे दुःख है। मैं यह नहीं कहता कि इन्दिरा को मैंने बहिन के रूप में माना है। क्योंकि मुझे इस तरह के पर्दे खींचने में शर्म आती है। लेकिन इन्दिरा से कसम देकर पूछ सकते हो कि भगवती कभी भी तुम्हारा प्रेमी था क्या ? और तुम कामेश्वर, जो मुझे नादानी के घर ले गए थे और सब कुछ जानते थे, फिर भी तुमने सोचा कि हमारा कोई और सम्बन्ध नहीं हो सकता मेरी असह्य यंत्रणा में जिसने सबका भय त्यागकर एक मानवी के रूप में मुझे अपना हाथ पकड़ने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं दिखलाई, उसीके प्रति तुमने अविश्वास दिखाया ? तुमने अपने आत्मसम्मान को अपमानित किया, क्योंकि तुमने उस पर जमी हुई काई पर पैर रखा और तुम धड़ाम से फिसलकर मुंह के बल गिर गए।'

भगवती हांफ रहा था। कामेश्वर ने कुछ नहीं कहा। वीरेश्वर ने कहा—

'भगवती ! इतने उत्तेजित क्यों हो ?'

'नहीं तो,' भगवती ने कहा—और वह कृत्रिम रूप से मुस्करा उठा। उसने

रुककर कहा—'लवंग के बारे में मेरी कोई राय नहीं। मुझमें-उसमें कोई सम्बन्ध नहीं

है, ऐसा तो मैं नहीं सोचता। फिर तुम लोग अपनी बातें करो न ?'

'वीरेश्वर कहता था कि लवंग की हाजिरी कम हो गई थी, इससे वह इम्तहान

नहीं दे सकती। उसी शाम को प्रोफ़ेसर मिसरा के यहां गई कि वह शायद हाज़िरी बढ़वा दे। क्योंकि उसकी चलती है; और वह अनुचित कार्यों की सिद्धि अनुचित कार्यों की स्वार्थसिद्धि द्वारा करा दिया करता है।'

वीरेश्वर ने कहा—'ठीक कहा—बिल्कुल ठीक कहा। दोपहर में मुझसे में लवंग ने अपनी परेशानी सुनाई थी। उसके बाद ही मैं दफ्तर गया। मेरा मामला ठीक था, इसलिए मैं निश्चिन्त लौट आया। फिर भूल गया। शाम को जब घूमने निकला तो देखा, रीडर श्रीवास्तव के साथ मिसरा की एक लौंडिया मोटर में जा रही थी। मैंने कहा—साइकिल पर ही तो हो। चलो लुत्फ रहेगा। दौड़ा दी झट पीछे-पीछे। दिन कुछ-कुछ बाकी था! मोटर रुकी और लड़की उतरकर भीतर घुसी। रीडर श्रीवास्तव ने अपनी गाड़ी स्टार्ट कर दी और चला गया। मैंने लपककर उस लड़की को टोक दिया, कहा—सुनिए तो ज़रा। प्रोफ़ेसर मिसरा का घर यही है? लड़की क्या थी, बिलकुल डबल रोटी। बोली—जी हां। मैंने झट से उससे कहा—मैंने कहा कि क्या आप जरा उन्हें इत्तला देने की तकलीफ करेंगी?

'आइए न?—लड़की ने कहा—चलिए।

'अमां, घर घुसने की देर नहीं हुई कि एक हंगामा। बरामदे में से हमने सुना, मिसेज़ मिसरा गरज रही थीं—तुम्हें शर्म नहीं आती? अपनी बेटी की उम्र की लड़की के गले में हाथ डाले बैठे हो। वह तो कहीं भगवान् की दया से मैं वक्त पर आ पहुंची और वह भी एक विधवा से? तुम ब्राह्मण हो? अपनी दोनों लड़कियों का सत्यानास कर दिया। जवान-जवान गायों की तरह फिरती हैं, न बड़े का लिहाज़ न छोटे की शरम, सबके सामने बैलों की तरह मटकना...

'यह सुनना था कि मिस मिसरा तो चिक उठाकर दूसरे कमरे में यह गई वह गई। मैंने सुना, मिसेज़ मिसरा कह रही थीं—और क्यों री? कौन है तू जो घर में घुस आई? क्या काम था तुझे? तू तो बड़ी खानदानी बनती थी? निकल जा यहां से रंडी! ख़बरदार जो फिर कभी भीतर कदम भी रखा। चीर के फेंक दूंगी हां, धोखे में मत रहियो किसी के। एक को दो दिन में खा लिया और अब बूढ़ों पर नज़र फेंकी है, हाय री मंथरा डायन जवानी...

मैं समझ गया, बस अब लवंग बाहर आने ही वाली है। फौरन बरामदे से बाहर खंभे की आड़ में हो गया और मैंने देखा, मेरे सामने ही लवंग वहां से निकली। उसकी आंखें आंसुओं से भरी हुई थीं। ऐसा स्याह पड़ गया उसका चेहरा कि अगर ज़मीन फट जाती तो शायद उसे समा जाने में कम-से-कम उस वक्त तो तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती। लवंग ने जाकर मोटर में तशरीफ रखी और वह चली गई। बंदा अपनी जगह से निकलकर फिर बरामदे में जा खड़ा हुआ और जाकर घंटी बजाई। कोई उत्तर नहीं आया सो मैं बैठकर वहीं पर पड़ा 'इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया' खोलकर देखने लगा। उठकर थोड़ी देर बाद फिर घंटी बजा दी। लाचार एक नौकर आया। मैंने कहा—प्रोफ़ेसर साहब हैं?

'नौकर ने कहा—उनकी तबीयत बहुत खराब है, वह इस वक्त माफी चाहते हैं।

'ओह! कोई बात नहीं। एक बात कह देना उनसे। याद रहेगी? कहूं?

'जी हां हजूर, कह दूंगा।

'कहना मेरी हाजिरी कम हो गई है, प्रोफ़ेसर साहब चाहें तो वह पूरी कर सकते हैं। क्या वह ऐसा कर सकेंगे ?

'सरकार' यह तो अब कहने पर पता चलेगा। क्या नाम ले दूं ?

'कह देना, वही जिन्हें छोटी बीवी अभी बिठा गई हैं, वही रीडर श्रीवास्तव, रेवतीप्रसाद श्रीवास्तव। याद रहेगा ?.

'क्यों नहीं हजूर ? अभी लीजिए। वह भीतर गया और मैंने फौरन साइकिल ाली और चंपत।'

'शाबाश,' कामेश्वर ने हंसते हुए कहा।

'फिर क्या हुआ सो मैं कुछ नहीं जानता, लेकिन एक बात है। क्या लवंग को ा करना चाहिए था ?' वीरेश्वर का प्रश्न सुनकर कामेश्वर ने उत्तेजना से कहा—' ई, यह सब भूख है। इसका कोई इलाज भी तो नहीं है। अब तो बिचारी को जिन्दगी-सर यों ही तड़पना है। औरतों के साथ यही तो चोट है।'

वीरेश्वर ठठाकर हंसा—'और यहां बड़ी दावतें उड़ रही हैं ?'

भगवती एकाएक उठा। उसने आगे बढ़कर वीरेश्वर के कंधों पर अपने हाथ ... दिए और गम्भीर स्वर से कहा—'वीरेश्वर ! एक बात कहूं, मानोगे ?'

वीरेश्वर ने उत्सुकता से आंखें उठाईं।

भगवती ने कहा—'यौन-वासनाओं में ही मनुष्य का पूरा जीवन समाप्त नहीं हो जाता। उसे क्षमा करने का गर्व न करो। यदि तुम स्त्री होते तो और भी घृणित कार्य करते। मैं तुमसे एक ही प्रार्थना करता हूं। किसी और से यह बात कहकर अपने आपको नीचे न गिराना। स्वीकार है ?'

वीरेश्वर को विस्मय हुआ। उसने कहा—'तुम भी यह कहते हो ?'

भगवती ने धीरे से कहा—'तुम मुझ पर अविश्वास करते हो, तभी ऐसी बात कह सकते हो, अन्यथा कभी नहीं कहते। लेकिन मैं लाचार हूं, क्योंकि मैं अब बुरा नहीं मान सकता !'

भगवती कमरे में चला गया। वीरेश्वर ने हंसकर कहा—'अब तो खून एक हो गया है न ?'

किन्तु कामेश्वर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसे सुन्दर का मुख याद आ रहा था।

खबर जब अफवाह बन जाती है तब वह पैदल नहीं चलती, उड़ने लगती है। बात धीरे-धीरे लीला तक भी पहुंची। कॉलेज की फील्ड पर उसने भगवती को घेर लिया। उसने कहा—'भगवती, तुमने कुछ सुना ?'

भगवती ने उपेक्षा से कहा—'क्या ?'

'यही कि लवंग और प्रोफ़ेसर मिसरा को मिसेज मिसरा ने पकड़ लिया...'

भगवती ने सिर हिलाकर स्वीकार किया—'मुझे मालूम है।'

'फिर भी तुम्हें कोई दिलचस्पी नहीं ?'

'मुझे इन यौन-समस्याओं में अपनी विषमताओं का अन्त ढूंढ़े से भी नहीं

मिलता।'

'अच्छा!' लीला ने चिढ़ाकर कहा—'पहले ब्रह्मचारी थे, अब योगी हो गए हो?'

भगवती कुढ़ा। लीला ने फिर कहा—'तुम इतने मूर्ख हो, लेकिन मुझे जाने क्यों यह सब मूर्खता नहीं लगती। प्यार के कारण केवल बचपन का पागलपन प्रतीत होता है।'

कहकर देखा, भगवता के गालों पर लाज से लाली दौड़ गई। उसने झेंपकर कहा—'धन्यवाद!'

लीला ने धीरे से कहा—'भगवती! तुम जीवन-जीवन लिए फिरते हो। एक बार इस जीवन की कसौटी को ही परख लें। बोलो, साहस है?'

भगवती ने पूछा—'क्या?'

'मुझे अपमानित तो नहीं करोगे?'

'कभी किया है? कभी तुमसे कुछ कहा है?'

'नहीं। तुमने तो कुछ भी नहीं कहा। मैं कहती हूं, मेरी जगह कोइ और होती तो कभी की मर गई होती या तुमसे बात तक करना छोड़ देती।'

'अच्छा, खैर, असली बात कहो।'

'इन्दिरा से तो तुम्हारा वैसा कोई सम्बन्ध ही नहीं। ठीक है न?

'बिल्कुल।'

'तो चलो, हम-तुम कहीं भाग चलें। परदेश में दोनों कमाएंगे-खाएंगे। कोई बन्धन न होगा। नये सिरे से कोई जिन्दगी बसेगी। चारों तरफ सुख ही सुख होगा…'

भगवती ने हंसकर कहा—'मैं और आप अगर साथ-साथ अकेले रहेंगे तो चारों तरफ सुख ही सुख क्यों फैल जाएगा? कुछ आपके जाते ही वहां तपोवन तो बसेगा नहीं कि शेर और बकरी एक घाट पानी पीएंगे!'

'तुम शायद अब भी सोच रहे हो, मैं तुमसे मज़ाक कर रही हूं।'

'नहीं, तुम मज़ाक नहीं करतीं! तुम मुझपर बुरी तरह मोहित हो गई हो, इसलिए तुम्हें मेनिया हो गया है।'

लीला ने रुआंसी होकर कहा—'क्या तुम्हें कभी मेरी बात का यकीन नहीं होगा? तुम मुझसे इतनी घृणा क्यों करते हो?'

भगवती ने कहा—'मैं करता किससे नहीं?

'क्यों? इन्दिरा से भी?'

'नहीं। उसकी मैं इज़्ज़त करता हूं।'

'तभी लीला से घृणा करनी पड़ती है।'

'नहीं,' भगवती ने गम्भीर होकर कहा—'भाग चलना तो कठिन नहीं। अभी चल सकते हैं। लेकिन मैं एक कारण से डरता हूं।'

'वह क्या?' लीला ने शंकित होकर पूछा।

भगवती ने नीचे देखते हुए उत्तर दिया—'फिर हमारे बच्चों को दुनिया हरामजादे कहेगी। क्या तुम सुन सकोगी कि तुम्हारा प्रेमी भी एक हरामजादा है?

छिपी बात कितनी कठोर और घृणित होकर लौट आई, जैसे एक बार सुन्दरी

को देखा जाए और दूसरी वार भीतर से उसकी हड्डी का ढांचा निकालकर देख लिया जाए। लीला ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने कहा—'भगवती ! आज मैं तुमसे सदा के लिए विदा लेती हूं। आशा है, अब हम दोनों कभी एक-दूसरे से नहीं मिलेंगे। भगवती, मैं अब जीवन से घृणा करने लगी हूं।'

भगवती ने कहा—'लाचारी है लीला ! जीवन स्वयं ही कितना घृणित है।'

'तो मैं जाऊं ?' लीला ने व्याकुल होकर पूछा। इसी समय उसके कन्धे पर हाथ रखकर इन्दिरा ने कहा—'क्यों, जाने की क्या ज़रूरत क्या है ?' फिर भगवती से मुस्करा कर कहा—'अच्छा जी ! यह तो तुमने हमें कभी नहीं बताया।'

भगवती ने कुछ उत्तर नहीं दिया। लीला ने विस्मय से देखा। इन्दिरा उसे देखकर स्नेह से मुस्करा रही थी। इन्दिरा ने ही कहा—'पढ़ाई शुरू कर दी ?'

भगवती ने कहा—'बहुत पहले।'

'ठीक किया ! और तुमने लीला ?'

'इन्हें अभी प्रेम से ही फ़ुर्सत नहीं मिली।' भगवती ने परेशानी दिखलाते हुए कहा।

इंदिरा ने कहा—'मैं तुम्हारे ब्याह में मदद तो पूरी करती, लेकिन एक डर है। मुझे लगता है लीला ! तुममें असल में इतना साहस है नहीं। अगर तुम अब कुछ जोश में, जल्दीबाज़ी में, कर भी बैठीं, तो याद है कैप्टेन राय मारते-मारते चमड़ी उधेड़ देंगे।' इन्दिरा हंस दी। भगवती भी। लीला चुप हो गई। कुछ देर खड़ी रही, फिर इन्दिरा से कहा—'मैं जानती हूं, तुम क्या हो ? तुम भगवती को फंसाकर उस जायदाद की मालकिन बनना चाहती हो, ताकि तुम दोनों मिलकर लवंग को वहां विधवा करार देकर पन्द्रह रुपये महीने बांध दो।'

इन्दिरा चौंक गई। उसने कहा—'लेकिन लवंग तो आज गांव जा रही है। कॉलेज में अब उसकी रहने की तबीयत नहीं। इम्तहान वह दे नहीं सकती। मैं अभी मिलकर आई हूं।'

लीला ने उसकी ओर छाया-भरी आंखों से देखा। इन्दिरा ने कहा—'वह जानती है कि वह बदनाम हो गई है। इसी से चली जाना चाहती है।'

'कहां जाएगी ?' लीला ने पूछा।

'गांव। और कहां ?'

'गांव क्यों ?' लीला ने पूछा।

'गांव के अतिरिक्त और कहां जाएगी वह ?' इन्दिरा ने कहा—'इस घर में तो अब अधिक दिनों तक रह नहीं सकती। और फिर हिन्दू स्त्री के लिए पति का घर ही तो सबसे बड़ी चीज़ है। आखिर ज़मींदार के बाद सब कुछ उसी का तो है।' लीला ने भगवती की ओर देखा। वह निश्चल, निर्विकार खड़ा था। जो कुछ इन्दिरा ने कहा है, वह बिल्कुल ठीक है। भगवती वही तो सुनना चाहता था।

थोड़ी देर बाद लीला चली गई। इन्दिरा ने भगवती की ओर देखा। पूछा—'भैया मिले थे ?'

'हां,'—भगवती ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

'कोई बात हुई ?'

'यही इधर-उधर की। वे लोग लवंग को दोष दे रहे थे और चाहते थे कि मैं भी उसे बदनाम करने में शामिल हो जाऊं। मैंने अस्वीकार कर दिया।'

'यही मुझे तुमसे आशा थी।'

भगवती ने कहा—'इन्दिरा! जब से उन सब लोगों को मेरे जन्म के विषय में ये सब बातें ज्ञात हो गई हैं, वे मुझसे घृणा करने लगे हैं।'

'क्यों ? इसमें तुम्हारा क्या दोष है ?'

भगवती ने उसकी ओर कृतज्ञता से देखा और कहा—'मैं कहीं चला जाना चाहता हूं सबको छोड़कर। कहीं अलग जाकर रहना चाहता हूं, जहां न स्नेह हो, न कृतज्ञता से उत्पन्न घृणा हो। जाने की आज्ञा दोगी ?'

'क्यों नहीं ?' इन्दिरा ने कहा—'यदि तुम समझते हो कि तुम्हें उससे संतोष मिलेगा तो तुम्हें ऐसा करने का पूर्ण अधिकार है। क्या आज तक तुम्हें मैंने अपने मन की करने में कभी रोका है ?'

'नहीं, रोका तो नहीं।'

'तो फिर आज ऐसा प्रश्न पूछने का कारण ?'

'मुझे इन लोगों ने जर्जर करने का प्रयत्न किया था। तुमने सुना, लीला चलते-चलते तुमसे क्या कह गई है ?'

'सुना क्यों नहीं ? किन्तु लीला ही क्या हमारे-तुम्हारे सम्बन्ध का अन्तिम निर्णय देने की अधिकारिणी है ? मेरी दृष्टि में वह केवल विक्षुब्ध है। तुम्हें उसकी बात का कोई बुरा नहीं मानना चाहिए।'

'मैं तुम्हें प्यार करता हूं इन्दिरा, जब सारा संसार मुझसे घृणा करता है तब तुम्हीं मेरी एकमात्र सहायक हो। मैं सोच भी नहीं सकता कि उसका विक्षोभ मेरे हृदय को कभी भी विचलित कर सकेगा, जब उसके प्यार का वह वासनामय तूफान मैं पशु की भांति झेलकर जीत गया हूं।'

इन्दिरा ने कहा—'मुझसे कोई पूछे कि तुम किसे चाहती हो, तो मैं तुम्हारे अतिरिक्त किसी को नहीं बता सकती।'

'मैं नहीं जानता, हमारे इन सम्बन्धों का मूल क्या है ?'

परस्पर का स्वार्थ, या उसे कह लो प्यार।'

भगवती ने उत्तेजित होकर पूछा—'स्वार्थ! वह क्या है इन्दिरा ?'

'यही कि हम दोनों एक-दूसरे को सुखी देखना चाहते हैं, कि हम दोनों जीवन-भर एक-दूसरे को प्यार करते रहें, कि वह केवल एक ज्वार न हो जो भाटे के साथ उतर जाए और हमारे जहाज़ फिर सूखे में पड़े-पड़े अगले ज्वार की प्रतीक्षा किया करें।'

'तुम सचमुच नारी हो।'

'और तुम इतने कठोर दिखकर भी इतने कोमल हो, यह मेरे अतिरिक्त और कौन कह सकेगा ?'

38

रात हो गई। फिर चारों ओर अंधेरा छा गया। सुन्दर वहीं बैठी रही। ज़मींदार साहब आंखें मूंदकर पड़े थे। कंबल से उनका समस्त शरीर ढंका हुआ था। कमरे में फिर से दवाओं की तेज़ बू फैल गई थी। चारों तरफ़ सन्नाटा छाया रहता था। वह विशाल इमारत प्रायः सूनी पड़ी रहती थी। लवंग के आ जाने से भी कोई हलचल नहीं हुई। आज लवंग विधवा के रूप में लौटी थी। अब की बार उसके पास एक भी सुहागिन नहीं आई। जो मिलीं, वे बुढ़िया ही मिलीं। प्रत्येक ने दबी ज़बान से सुन्दर की दुश्चरित्रता को खोलने का प्रयत्न किया।

गांव-भर में बात बिजली की तरह फैल गई थी। राह पर गांव के छैले आपस में दिल्लगी करते। कुरमा हलवाई के यहां बहुत दिनों तक इसी विषय पर बातचीत चलती रही। लवंग ने सब कुछ सुना और एक कान से सुनकर दूसरे कान से सब निकाल दिया। उसकी आत्मा छटपटा उठी। कल तक बिना अंग्रेज़ी के वह एक भी बात नहीं कर पाती थी। यहां एक भी अंग्रेज़ी का शब्द प्रयुक्त हुआ नहीं कि गांववाली उसके दम नाम धरेंगी। कल तक राजेन्द्र था। उसकी ओट में सब कुछ हो सकता था। आज कुछ भी नहीं हो सकता। एकदम धुर पश्चिम से जो उसे धुर पूरब में लौटना पड़ा इससे मन ही मन उसपर एक घृणा-सी छा गई और उसने निश्चय कर लिया कि जो कुछ है इसी सबके लिए है। यह सोचते ही उसने अपनी रेशमी साड़ियां उतारकर आलमारियों में बन्द कर दीं और एक बिना किनारी की सफ़ेद साड़ी निकालकर पहन ली। हाथ में चार सोने की चूड़ियां और बस कुछ नहीं।

दिन पर दिन बीतते गए। जिस दिन वह आई थी, ज़मींदार साहब ने एक बार उसकी ओर आंखें खोलकर देखा और फिर जैसे अनुप्राणित असह्य वेदना से अपनी पलकों को गिरा लिया। लवंग वहीं बैठ गई। पिताजी आधे से अधिक मूर्छित थे। लवंग ने एक बार अविश्वास और उपेक्षा-भरी आंखों से सुन्दर की ओर देखा और पूछा—'कितने दिन से बीमार हैं?'

'आज एक हफ्ता हो गया।' सुन्दर ने धीरे से उत्तर दिया।

'और एक हफ्ते से मुझे कुछ खबर तक नहीं दी?'

सुन्दर ने उसकी ओर आंखें गड़ाकर कहा—'इन्होंने मना कर दिया था।'

'क्यों?'

'क्योंकि इन्हें अपने पाप का प्रायश्चित्त करने का भय हो गया है।'

लवंग ने अप्रत्याशित प्रश्न पूछा—'और तुम्हें नहीं?'

सुन्दर हंसी। उसने कहा—'जब तक किसी और को ज्ञात न था तब तक वह पाप न था। आज क्या ज्ञात होने से ही वह पाप हो गया? यदि पाप का ही प्रायश्चित्त करना था तो आज ही क्यों, आज से बहुत पहले से करना था। दुनिया क्या कहती है, क्या इसी की परवाह करनी चाहिए?'

लवंग ने कुढ़कर कहा—'और भी क्या पाप का कोई मापदंड है?'

'है क्यों नहीं ! मन की निर्बलता और अपने आपको धोखा देना ही तो पाप है। बाकी सब सम्बन्धों की छाया है। आज एक बात ठीक है, कल वह नहीं रहती, तो इस सबका माप कौन बनेगा ?'

लवंग को कोई उत्तर उपयुक्त नहीं.जंचा। वह उठ गई। सुबह-शाम वह नित्य जाकर पिताजी की रोग-शय्या के पास बैठ जाती और काम करने की चेष्टा करती, किन्तु सुन्दर ने उसे कभी भी ऐसा मौका खुलकर मिलने का नहीं दिया। वह जो कुछ करती, खुलकर करती। उसमें लगन होती और कभी भी किसी दूसरे के कहने की परवाह नहीं करती। उसका मन जो कहेगा, सुन्दर वही करेगी, किसी दूसरे के कहने-सुनने का कोई प्रभाव नहीं। वह जानती है, गांव आज उसको बदनाम कर रहा है, किन्तु वह कहती है—बीस बरस पहले भी तो संदेह था, तब कोई कुछ कहने की हिम्मत भी नहीं करता था। जानते हो, इसका कारण क्या है ? जिसके हाथ में कल उठी हुई तलवार थी आज सब उसी को रोग-शय्या पर पड़ा हुआ तड़पता देख रहे हैं। इसी से तो आज वे सब कुछ कह रहे हैं।

लवग को इस उत्तर से संतोष नहीं होता। वह सोचती—क्या उसे अपने पति के वृद्ध पिता की सेवा करने का भी अधिकार नहीं ? और फिर कल्पना के स्वर ख़ुलने लगते। एक समय सुन्दर युवती होगी। उस समय पिताजी भी युवक होंगे। और फिर प्रयत्न करती कि उस रूप को, अपनी सत्ता को, वास्तविकता में अवतरित करके उसके महत्त्व को समझती। क्या यह दुःख आज उसी उन्माद का परिणाम.है ? कुछ नहीं। यह सब कुछ नहीं। फिर विचारों के पत्ते कांपने लगते, जैसे अंधेरी रात में पेड़ हिल रहा हो।

क्या हो रहा है संसार में, कुछ ज्ञात नहीं। यह गांव है। इतना वैभव है। वह उसकी एकमात्र स्वामिनी होगी। किन्तु क्या होगा उस प्रभुत्व का ? न कोई सिर पर स्नेह से, वात्सल्य से हाथ फेरनेवाला है, न कोई प्यार करनेवाला, न ऐसा ही जो आज एक छोटा-सा तिनका होता जिस पर सब कुछ न्यौछावर कर देती कि वह एक पहाड़ बन जाए। फिर उसकी शक्ति देखकर लोग कांप उठें और वह शक्तिमान् आकर लवंग के चरणों पर 'मां' कहकर सिर टेक दे। उस समय लवंग को कितना हर्ष होता, कितना सुख होता ! किन्तु क्या होगा अब ? किसलिए चाहिए इतना सब कुछ ? कुछ भी तो करने का उसे अधिकार नहीं। उसी दिन लवंग ने आकर श्रीकृष्ण के अनुपम चित्र को हाथ जोड़े। पुरुष के उस सौन्दर्य ने लवंग के हृदय को सांत्वना दी। मस्तिष्क के निम्न स्तर में उस सांत्वना ने उसे कुछ आभा दिखाई ओर परम्परा ने उसे भक्ति का रूप देकर न्यायपूर्ण बना दिया।

इस व्यक्ति को अब समाज में कुछ नहीं करना है। वह एक भार है। उसे भी अपने जीवन के लिए कुछ करना है। समाज ने उसे धकेलकर बाहर कर दिया है। उसे चाहिए एक शराब जिसके छल में वह अपने जीवन को उबा देनेवाली नीरवता को काट जाए और लवंग ने उस दिन यही किया।

शरीर की भूख कल्पनाओं से नहीं बुझती, अतः लवंग का विक्षोभ दिन पर दिन प्रखर होता गया।

वह जाकर पिताजी की खाट के पास बैठ गई। वे उस समय चैतन्य थे। कराह उठे। लवंग ने झुककर कहा—'पिताजी ! कैसी तबीयत है ? पहले से तो अच्छी है ?'

ज़मींदार साहब ने सिर हिलाया। वह अधिक बोलना नहीं चाहते थे। शहर के दोनों डाक्टर अब गांव में बस गए थे। पांच-पांच सौ रुपये से कम नहीं फटकारते थे। लवंग देर तक उनके हाथ को अपने हाथ में लिए बैठी रही।

गांव पर सांझ उतर रही है। उस हल्के धुंधलके में धूल की सघनता है। स्तर पर स्तर जमता अंधकार धीरे-धीरे घना हो चला है। सामने ही कुछ छप्परों के ढेर हैं। उनमें भी मनुष्य रहते हैं। उनमें भी दुःख-सुख हैं, रागद्वेष हैं, वे भी परस्पर लड़ते हैं, मिलते हैं। उनका जीवन हमें पशु का-सा लगता है, किन्तु क्या वास्तव में वे पशु हैं ? यदि पशु ही हैं तो उनको मनुष्य के रूप में सोचना व्यर्थ है।

आज कोई पेड़ नहीं दीखता। विशाल पत्थर और ईंटों की इमारत अंधकार के समुद्र में चट्टान की तरह खड़ी है। एक दिन यहीं एक व्यक्ति आया था। उसके साथ उसकी प्रेम-पूरिता स्त्री होगी। उन्होंने ईंट-ईंट करके यह वैभव खड़ा किया होगा। उसके बाद यही परम्परा चल निकली। लोगों ने आकर उनके सामने सिर ही झुकाया। काश आज राजेन जीवित होता ! लवंग भी तूफान की तरह गरजती हुई इधर से उधर भागती। किन्तु कहां है वह सागरतीर जहां जाकर इन प्राणों को विश्राम मिलेगा ? क्या पति के बिना स्त्री की सत्ता व्यर्थ है ? कितना बद्ध है यह समाज ! कितना अंधा है यह संसार ! दम घुट रहा है, किन्तु पंजे फिर भी गर्दन छोड़ना नहीं चाहते। एक मनुष्य का जीवन केवल दूसरों की दया पर ठोकरें खाता फिरे। अपनी यौन-वासनाओं की उलझन में ही वह अपनी समस्त शक्ति का हनन कर दे। और फिर···और फिर···

यह सब भी कुछ नहीं। केवल उपहास।

पेड़ हरहरा रहे हैं। हरहराना इन्होंने न किसी से सीखा है, न ये छोड़ना जानते हैं। आकाश के गहन अंधकार में वे तारे ! जैसे किसी की काली पुतली में तारा कांप रहा हो।

अरे धमनियों में रुधिर है निष्ठुर ! वहां पानी होता तो व्याकुल होकर तुझे क्यों पुकार उठती ?

तेरी मृत्यु यदि तेरी-तेरी समाप्ति ही थी तो मेरे जीवन का आरम्भ उसमें क्यों उलझ गया कि छुड़ाना चाहती हूं, पर छुड़ा नहीं पाती।

इन आंखों में आशा की घोर प्रतारणा है निर्मोही ! जिस छवि की मुझे लालसा रही, क्या मेरे जीवन की गहन अंधियारी में एकमात्र तारा थी। बुझ जाए यह दीप। मैं लौ का अवसाद करूं कि इस धीरे-धीरे उठते हुए धुएं का।

पागल राही ! तू नहीं ठहरा, न ठहर। पर तुझे क्या मालूम, मैं कब से तेरी राह देख रही थी। तू समझा था कि वह मेरी उच्छृङ्खलता थी। अरे तू क्या समझता कि तेरे होने के कारण ही मैं अपने को स्वामिनी समझती थी, तेरी उपस्थिति का हर्ष, वह महोल्लास, जो मेरे रक्त में ऊष्मा बनकर छाया हुआ था, वह सब तेरा ही तो उन्माद था। आकर तो सभी चले जाते हैं। अपने पदचिह्न तक मिटा जाते हैं, किन्तु कभी तूने निर्जन में भटकते हुए प्यास से तड़पते की करुण पुकार भी सुनी है ?

कहां सुनता तू पाषाण ! तूने तो मुड़कर भी नहीं देखा। तेरी भी यदि यन्त्रणा असह्य थी तो ले मेरे हृदय का जाल, फेंक दे उसमें वह मछली, समय जिसे खींच लेगा और पानी से दूर वह तड़पा करेगी···

मैं देखा करूं कि मेरी पुकार पर स्वयं मेरा अभिमान हंस रहा है और मैं कुछ नहीं कर सकती, कुछ नहीं कर सकती···

की उस विह्वलता को देखकर सुन्दर ने कहा—'बेटी !'

लवग चौंक गई। कितना अच्छा है यह शब्द ! कितना अधिक प्यार है इसमें, एक-दूसरे के लिए सब कुछ समर्पित कर देने की आकांक्षा। कहां 'प्रिया' में यह सामर्थ्य जो केवल आलिंगन में समाप्त हो जाता है। यह तो युग-युग का अवलंबन है ! जीवन का गौरव ! और फिर लवंग को विस्मय हुआ। सुन्दर ने किस धन के बल पर यह इतनी बड़ी स्नेह की अट्टालिका खड़ी कर ली। संसार उसे पाप का भंडार कहता है, किन्तु वह किसी से भी भीत नहीं है। यदि यह उसकी आत्मा की शक्ति नहीं तो और क्या ?

फिर लवंग के मस्तिष्क में चोट हुई। यह समाज के अत्याचार के कारण विधवा है। अन्यथा वह अब सुहागिन है। मां है। जिसके प्रेम ने दोनों भुजाएं फैला रखी हैं, जो दो धाराओं को मिलाने की एकमात्र साधना है, शक्ति है, वह विधवा नहीं है।

फिर सुन्दर का वह चित्र आंखों के सामने खेल गया जब वह चक्की पीसती थी, अपने शरीर को ऐसे तोड़ती थी जैसे मज़दूर पत्थर को तोड़ देता है···

सुन्दर ने प्यार-भरी दृष्टि से देखकर कहा—'लवंग, इतनी उदास क्यों रहती है तू ?'

तो क्या सचमुच सुंदर उसकी उदासी का कोई कारण नहीं समझती ? किन्तु लवंग की आंखों में पानी भर आया। वह सुन्दर के वक्षस्थल पर सिर रखकर सिसक उठी। आज उसे जीवन में पहली बार लगा कि मां का स्पर्श जीवन की सबसे पवित्र अनुभूति है। जब प्रतीत होता है कि हे दीपक, मैं तेरी शिखा से निकली हुई क्षीण ज्योति हूं, मैं तुझमें अपना स्नेह घुलमिलकर लय कर देना चाहती हूं···।

क्यों है यह स्पर्श इतना भव्य ! क्यों नहीं गिर रही है यहां नीली छाया जो प्राणों पर ऐसे दाग छोड़ जाती है जैसे किसी ने लोहे का प्रहार किया हो ! एक विराट् पर्वत। उसके ऊपर जमा हुआ हिम। हिमनिःसृत यह नदी।

मां ! कौन-सा जीवन है जिसको तुम कुचलो और मैं हंस न सकूं ! तुम कुच-लोगी ! पर तुम्हारी कुचलन भी तो एक प्यार है। टूट जाएगा मां का हाथ; न उठेगा कभी करने घातक प्रहार। फूट जाएंगी आंखें, पर कभी द्वेष की छाया उनमें विष नहीं घोलेगी मां ! मां !!

वृद्ध ज़मींदार ने पुकारा—'सुन्दर !'

सुन्दर चली गई। लवंग फिर भी अकेली बैठी सोचती रही। दिन रातों में उलझे हुए हैं, रातें दिनों में उलझी हुई हैं, जैसे मेज़ में दराज़ होती है, जब जो चाहे खींच ले। वह तो मन का दिन है, मन की रात है और जीवन की वास्तविकता से क्या सम्बन्ध शेष रह गया है, जब अधिकार मांगने का भी अधिकार नहीं तो स्वामित्व का

कौन-कौन कर्तव्य है जो आकाश में अब भी गर्जन के बाद इन्द्रधनुष होकर निकला करे ? क्या होगा आकाश की वह रंगीनियां दिखाकर जब बिजलियों की तपिश को सहलाने की भी तृष्णा शेष नहीं ।

फूट रही है कोंपल । वसंत दहक रहा है । आ मेरे भौंरे ! मेरी कली का रस उफनकर बहने वाला है । पीले, नहीं तो पवन की झकोर में सारा यौवन ही लुटा दूंगी, कहकर कि यह न मेरा था, न मैं इसकी थी । ले जा इसे, यह मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं है…।

ज्वर दिन पर दिन बढ़ता जा रहा था । यातना असह्य होती जाती थी । दोनो डाक्टर घड़ों की तरह अपना दिमाग खाली पाकर ज़्यादा से ज़्यादा दोनों हाथों से धन खरोंचते जा रहे थे । पंडित और मगनराम ही की स्वामिभक्ति थी कि सारा काम चलता जा रहा था । वह व्यक्ति अभी था, जिनका नाम सुनकर दूर-दूर तक के गांव कांप उठते थे ।

उस दिन-भर ज़मींदार साहब मूर्छित पड़े रहे । कोई चेतना का लक्षण दिखलाई नहीं दिया । घर-भर में सबका दिल आज दहशत से भर गया था । लवंग और सुन्दर की आंखों में बार-बार पानी भर-भर आना था । डाक्टर सिरहाने बैठे इंजेक्शन लगा रहे थे । आज वह योद्धा जिसका नाम ब्रिटिश साम्राज्य का एक गौरव था, हताश-सा मूर्छित-सा पड़ा था । यदि टेनीसन जीवित होता तो वह 'गुलामों के राजा की मृत्यु' नाम की एक लंबी और शोकबद्ध कविता भी लिख देता । किन्तु सुन्दर वह सब नहीं कर सकती थी ।

क्या होगा अब ? बार-बार यही प्रश्न मस्तिष्क में बादल की तरह घिर-घिर आता है और आंखों की तरह बरस जाता है । इस समय तो यह 'सर' नहीं । इस समय तो यह केवल एक वृद्ध है, रोगी है, मनुष्य है, जिसका जीवन आज मौत का उतना ही मुहताज है, जितना अपने आपका ।

सुन्दर ने बाहर निकलकर कहा—'लवंग !'

लवंग ने सिर उठाकर देखा और दोनों रो पड़ीं । उस रुदन में कितना भीषण विषाद था ! कितनी अथाह कसक थी ! कोई भी कुछ नहीं कह सकता । और क्या कमी थी ? किन्तु लवंग जानती थी आदमी सब कुछ का अभिमान करके भी अभी तक मौत को नहीं जीत पाया ।

एकाएक डाक्टर ने आकर कहा—'ज़मींदार साहब बुला रहे हैं ।'

दोनों भीतर गईं । बैठीं और सुन्दर ने धीरे से कहा—'कैसी तबीयत है अब ?'

'अच्छी है,' ज़मींदार साहब ने धीरे से क्षीण स्वर में कहा । फिर सांस खींचने के लिए चुप हो गए । फिर कहा—'बेटी ! अपने वकील साहब को तो बुलवा ले ज़रा ।'

'क्या होगा पिताजी ?' लवंग ने उत्सुकता से प्रश्न किया । किन्तु मन ही मन वह कारण समझ गई थी । शायद वसीयतनामा लिखना चाहते हैं । फिर उसे विस्मय हुआ । मृत्य-शय्या पर भी व्यक्ति सरलता से अपने चारों ओर फैली समृद्धि और वैभव से अपना नाता नहीं तुड़ा पाता । कदाचित् यह पिता का स्नेह है । कौन नहीं सक्षम

लेता कि अब वह सदा के लिए जा रहा है ! फिर क्यों न उसकी सन्तान उसके बाद सुख भोगे !

ज़मींदार साहब ने कहा—'तू नहीं जानती बेटी ! तू अभी बच्ची है। मेरी हालत बिगड़ती जा रही है।'

उन्होंने अपने दोनों हाथों से निराशा का इंगित किया और उनके मुंह से एक दर्दनाक कराह निकली। एक लंबी सांस खींचते हुए उन्होंने कहा—'हाय ! अब तो सहा भी नहीं जाता !'

सुन्दर ! तेरे हृदय पर ये शब्द हथौड़े की चोट की तरह तेरे दिल को बिल्कुल पत्तर बना देना चाहते हैं। रो नहीं। लवंग को फिर कौन धीरज बंधाएगा ? कल ही तो बिचारी का सुहाग उजड़ा है और आज यह वज्रपात ! लेकिन आज तक तो कभी इस व्यक्ति के मुख से ऐसे शब्द नहीं निकले। आज इस सिंह के मुख से यह कराह निकली है।

सुन्दर कांप उठी। उसने लवंग से कहा—'बेटी !'

लवंग ने कहा—'मां !'

ज़मींदार साहब के मुख पर एक मुस्कराहट दौड़ गई। उन्होंने कहा—'लवंग !' अपनी मां को कभी छोड़ोगी तो नहीं ?'

लवंग रो पड़ी। उसने कहा—'यह आप क्या कह रहे हैं पिताजी !'

ज़मींदार साहब ने कहा—'तो बुलाओ वकील साहब को। समय अधिक नहीं है अब।'

लवंग ने आवाज़ दी—'मगन !'

मगन ने प्रवेश किया। उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं।

लवंग ने उसे भेज दिया। थोड़ी देर मौन रहकर उन्होंने कहा—'लवंग ! जो मैं करूंगा उसमें तुझे कोई आपत्ति तो नहीं होगी ?'

'नहीं पिताजी !' उसका गला रुंध गया।

'तू लड़की है। नादान है। नाराज़ तो नहीं होगी ? मेरी शपथ खा।'

लवंग ने पैरों पर हाथ रखकर कहा—'आप मेरे जीवन के अंतिम सहारे हैं, आप पर भी अविश्वास करके मैं किसलिए रहूंगी···'

सुन्दर ने उसे अपनी छाती से चिपका लिया। वकील साहब आ गए थे। सुन्दर और लवंग बाहर चली गईं। वकील साहब ने भीतर बैठकर वसीयतनामा लिखा। बाहर बैठे पंडित की आंखें बार-बार गीली हो जाती थीं। वे जब व्याकुल हो उठते थे तब उनके मुंह से फूट पड़ता था :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि,
नैनं दहति पावकः···।

नीचे लोग आ-आकर भारी-भारी चेहरे लिए इकट्ठे हो रहे थे। गांव के दक्षिण की ओर के मंदिर में आज तीन दिन से अखंड कीर्तन हो रहा था, जिसकी एक क्षीणतर ध्वनि सुनाई पड़ती थी :

हरे-हरे श्याम-श्याम,
श्याम-श्याम हरे-हरे……।

जब वकील साहब चले गए तब ज़मींदार साहब ने लवंग और सुन्दर को बुलवा लिया। लवंग आकर पास बैठ गई। उन्होंने कहा—'बेटी! वसीयत उस बक्स में रखी है। ले यह मेरे सिरहाने से चाबी निकाल ले।'

लवंग ने सिर झुका लिया। हाथ नहीं बढ़ाया। सुन्दर उठी और चाबी को निकालकर उसने आंचल में बांध लिया। लवंग भारी हृदय से बैठी रही।

ज़मींदार साहब ने एक बार कराहकर कहा—'सुन्दर! मैं अब जा रहा हूं। कोई लाभ नहीं है। मैं अपने करने के सब काम कर चुका हूं। कोई झगड़ा नहीं रहा। लेकिन एक बात से मेरा हृदय बार-बार व्याकुल हो उठता है…।'

लवंग ने पूछा—'वह क्या है पिताजी?'

'बेटी! मेरा दाह-कर्म कौन करेगा?'

लवंग कांप उठी। सुन्दर रो दी। किन्तु उन्होंने पुरुष-स्वर से कहा—'रोओ नहीं। तुम दोनों सचमुच पागल हो। अरे! रोने से क्या मैं बच जाऊंगा?'

फिर एक नीरवता कमरे में सांस घोटने लगी। डाक्टर ने घड़ी देखी और इंजेक्शन तैयार करने लगा। दूसरा डाक्टर बेग में से निकाल-निकालकर गर्म पानी के लिए 'गौज' रुई रखने लगा।

पंडितजी ने भीतर प्रवेश किया। उनका गला रुंधा हुआ था। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'मालिक! आपने तो जीवन में कोई पाप नहीं किया। पाप तो हमने किया है जो आपको इस हालत में देखकर भी हम लोग कुछ नहीं कर सकते।'

ज़मींदार साहब ने एक बार मुस्कराकर उसकी ओर देखा और उनकी आंखें झपकने लगीं। पंडित ने कहा—'मालिक! आप तो हमें ऐसे निष्ठुर बनकर छोड़ रहे हो, लेकिन इस नाव को अब और कौन खे सकेगा?'

पंडितजी बालकों की भांति रो उठे। ज़मींदार साहब बड़बड़ाने लगे—'सुन्दर… मैं निर्दोष हूं—तुमने कितना कष्ट सहा है…मेरे लिए…'

सुन्दर रो उठी। वह बोली—'किसने कहा, मैंने तुम्हारे लिए कष्ट सहा। झूठ है। मैंने कभी दुःख नहीं उठाया। इस जीवन में जितना सुख मैंने उठाया है उतना शायद ही किसी ने पाया हो…।'

लवंग ने विस्मय से सुना और श्रद्धा से उसका शीश झुक गया।

ज़मींदार साहब का अर्द्धस्वर फिर स्पष्ट हुआ—'भगवती बेटा…'

सब चौंक उठे।

पंडितजी ने कहा—'बहूरानी! सुना तुमने! मालिक ने क्या कहा? अब समझ में आया, इस निर्मोही के प्राण कहां अटक रहे हैं।'

लवंग ने उत्तर नहीं दिया।

पंडितजी ने कहा—'भूल जाओ सारे राग-द्वेष बहूरानी! यह समय इन बातों का नहीं। क्या तुम समझती हो, इस पुकार को टाल देना ठीक होगा? बाप अपने बेटे के लिए तड़प रहा है। क्या तुम चाहती हो, वह अपने मौत के बिस्तर पर इसी तरह

छटपटाता हुआ तड़प-तड़पकर मर जाए ? क्या तुम इसे अपना कर्त्तव्य नहीं समझतीं कि उसकी अंतिम इच्छा को पूरा किया जाए ?'

लवंग फिर भी नहीं बोली। पंडितजी ने फिर कहा—'बहूरानी, एक क्षण की भी देरी आज जीवन-भर की देर हो जाएगी। दीपक की अंतिम चमक झिलमिला रही है। यह जो अब बिस्तर पर पच्चों की तरह हाथ-पैर फेंक रहा है, आज तुम्हारी दया पर आश्रित है। कल यह मालिक था, आज तुम मालकिन हो जाओगी। देखो जरा इसकी ओर ! जीवन-भर जो समाज के बंधनों से डरकर अपने पुत्र को अपना पुत्र नहीं कह सका, आज उसे मौत के बिस्तर पर प्यार करना चाहता है। आज बेटे की ममता उसकी सांस में फांस बनकर अटक रही है। देखो, बाप अपने बेटे का मुंह देखने के लिए अंतिम समय तड़प रहा है···।'

लवंग ने हठात् कहा—'पंडितजी ! मोटर फौरन भेज दो, अगर वह नहीं आएगा तो उसके बाप को कोई दाह भी न देगा। अगर वह अपने बाप के लिए भी नहीं आएगा तो मैं गले में फांसी लगाकर मर जाऊंगी···।'

सुन्दर रोते-रोते चिल्ला उठी—'लवंग !'

और पण्डितजी आंखें पोंछते हुए बाहर चले गए।

39

आकाश स्वच्छ था। इसमें एक भी बादल क्यों नहीं आ जाता ? इतना शून्य भी किस काम का ? कहीं आंखों के रुकने के लिए स्थान तक नहीं।

इंदिरा ने कहा—'फिर ? बस बात खत्म हो गई ?'

भगवती चौंककर उठा। बोला—'ओह ! भूल ही गया, क्या कह रहा था मैं ?'

'तुम बता रहे थे कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का दिल उन रूढ़ियों से भरी मिक्षा-प्रणाली से ऊब उठता था।'

'हां तो उसमें धीरे-धीरे एक विद्रोह की भावना दिन-पर-दिन प्रखर होने लगी···'

तभी नौकर ने आकर कहा—'बीबीजी ! बाबू को कोई मोटरवाला बुला रहा।'

'कौन है ?' इंदिरा ने चौंककर पूछा।

'कोई ड्राइवर है।'

'ड्राइवर ?' भगवती ने चौंककर कहा।

'उसे यहीं ले आओ।' इंदिरा ने बात खत्म करने के लिए कहा—'तो जाइए आप। पढ़ा दिया हमें तो ! अब तीन दिन बाद इम्तहान है। इतनी खुशामद की, तब तो दो दिन से आपको एक घण्टा हमारे लिए बर्बाद करने की फुर्सत मिली है, अब फिर वही रोना।'—वह चिढ़ गई थी।

'लेकिन,' भगवती ने कहा—'यह हो कौन सकता है ?'

'मैंने तो सब मोटरवालों की खीर खाई है न ? इंदिरा ने व्यंग्य से कहा।

नौकर ने प्रवेश किया। उसके साथ लवंग का ड्राइवर था। उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। उसने छूटते ही कहा—'सरकार···मालिक···'

उसका गला रुंध गया। घबराहट के कारण वह कुछ भी नहीं कह सका।

'क्या हुआ कालीचरन ?' भगवती ने पूछा।

'सरकार! मालिक की हालत बहुत खराब है। आखिरी वक्त पर उन्होंने आपका नाम लिया है। आपको लवंग बीबी ने बुलाने के लिए मोटर भेजी है।'

'अभी ?' भगवती ने पूछा।

'जी हां!' कालीचरन ने नम्रता से कहा—'उन्होंने कहा है कि बेटे के बिना दाह देने का अधिकार किसी को भी नहीं है।'

भगवती हंस पड़ा। उसने कहा—'इंदिरा, सुना तुमने ?'

इंदिरा ने कहा—'कालीचरन! तुम बाहर बैठो। अभी जवाब मिलता है।'

दोनों नौकर जाने लगे। इंदिरा ने अपने नौकर से कहा—'जाओ, ज़रा भैया को तो भेज दो। कहना अभी एकदम बड़ा ज़रूरी काम है।'

नौकर चला गया। इन्दिरा ने कहा—'पिताजी बीमार थे ?'

भगवती ने कहा—'मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम।'

कामेश्वर के कमरे में घुसते ही इन्दिरा ने कहा—'तुमने सुना, भैया, ज़मींदार साहब मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। उन्होंने भगवती को बुलाया है। लवंग ने मोटर भेजी है।'

'लवंग ने ?' कामेश्वर ने चौंककर कहा।

'क्यों विस्मय हो रहा है ? क्या तुम समझते थे, लवंग सिर्फ अभिमान का पत्थर है ? स्वार्थ में पड़कर कौन क्या-क्या नहीं करता ? किन्तु यदि मनुष्य अपने पाप का प्रायश्चित्त अपने आप करता है तो क्या उसे उसका अधिकार नहीं है ?'

भगवती ने कहा—'तो तुम समझती हो, इसमें कोई चाल नहीं है ?'

'मैं क्या जानूं ?' इन्दिरा ने उत्तर दिया।

'तो फिर तुम कैसे कह सकती हो कि इसमें मुझे अपमानित करने का कोई नया षड्यन्त्र नहीं है ?'

कामेश्वर ने कहा—'लेकिन ज़मींदार साहब मृत्युशय्या पर हैं। उन्होंने तुम्हें याद किया है।'

'किसलिए ?' भगवती ने कठोर स्वर से पूछा।

'क्योंकि वे तुम्हारे पिता हैं।'

'पिता ?' भगवती ठठाकर हंसा। इन्दिरा ने उसकी ग्लानि को समझा।

उसके चुप रहने पर कामेश्वर ने कहा—'भगवती! एक कहना मानोगे ?'

भगवती ने शुष्क होकर कहा—'क्या ?'

'मुझे सन्देह है। पहले वायदा करो।'

'नहीं। पहले मैं जानना चाहता हूं कि तुम मुझसे क्या कहना चाहते हो।'

इन्दिरा ने बढ़कर कहा—'भगवती! क्या मुझपर भी अविश्वास करते हो ?'

'नहीं,' भगवती ने कहा—'अविश्वास मैं कामेश्वर पर भी नहीं करता। किन्तु जहां तुम लोगों के विचार थोथे हो जाते हैं, वहां मैं क्या कर सकता हूं ?'

कामेश्वर ने टोककर कहा—'यह समय इन बातों का नहीं है भगवती ! तुम्हें चलना ही होगा।'

भगवती चौंक उठा। उसने कहा—'मैं उन लोगों को सदा के लिए छोड़ आया हूं। मां से बढ़कर तो और कोई न था। जब उसे भी मैंने छोड़ दिया तो फिर बन्धनों की आवश्यकता ?'

'तब तो तुम्हारे बराबर कोई अकृतज्ञ नहीं।' इन्दिरा ने तीखे स्वर से कहा—'जिसने तुम्हारे लिए अपने आपको इस तरह घुलाया है, तुम्हारे सम्मान को जीवित रखने के लिए अपने आपकी बलि दी है, तुम उसे इतनी सरलता से नहीं टाल सकते। किसलिए उसने संसार का विरोध सहा ? किसलिए उसने खून के घूंट पीकर भी कभी तुम्हें आंखों में एक भी आंसू छलकाकर नहीं दिखाया ? किसलिए उसने अपने जीवन की सबसे बड़ी साधना को, अपने अरमानों को, निर्मलता की चट्टानों पर सिर पटक-पटककर चूर हो जाने दिया ? किसलिए उसने भूखे मरकर भी अपनी मर्यादा को नीचे नहीं गिराया ? किसलिए उसने ज़मींदार साहब से कभी भी अपने लिए धन नहीं लिया ? किसलिए उसने अन्तिम समय तक उनसे केवल उधार ही मांगा ? भीख तो नहीं ली ? तुम समाज के इन बन्धनों से घृणा करते हो ? और उन बन्धनों के परे कभी मनुष्य को मनुष्य के रूप में सोच नहीं पाते ? क्या यह सब इसीलिए था कि एक दिन तुम समर्थ होकर अपनी मां को, कठोर बनकर घृणा से ठोकर मार दोगे ? यदि तुम घृणा के पात्र नहीं हो तो वह कैसे हुई ? तुम्हारी इस निर्बलता से मां का तो कुछ नहीं बिगड़ता। जिस स्त्री के प्रेमी ने उसे धोखा दिया, समाज ने जिसके हृदय को पत्थर से कुचलकर उसे दूसरे व्यक्ति से बांधकर उससे व्यभिचार कराया, जिसने फिर भी सब कुछ सहा, उसका तुम क्या बिगाड़ सकोगे ? एक बात और होगी कि प्रेमी की जिस छाया के लिए उसने एक-एक करवट से अनेक-अनेक रातें जागकर बिता दीं, उसने भी उसका अपमान किया, उसी समाज का, जिसने स्वयं उसे घृणित करार दिया।'

भगवती ने व्याकुल होकर कहा—'लेकिन उस पिता की तो कोई बात नहीं, जिसने जीवन-भर अपने पुत्र को अपने पास नहीं बुलाया, आज वह इतना व्याकुल क्यों हो गया ? मृत्यु की याचना क्या जीवन के दान से अधिक है ? जिसने जीवन-भर अपने हृदय को छला है, आज वह यह क्या करना चाहता है ? यदि वह कुछ ही घड़ियों का अभिमान है तो उसे भी क्यों नहीं चूर हो जाने देतीं ?'

इंदिरा हंस दी। उसने कहा—'यह तो अभिमान की कोई बेला नहीं। आज तो तुम्हें जाना ही होगा।'

उसके स्वर में ऐसी आज्ञा थी कि भगवती सकपका गया। इसी समय कामेश्वर की माता ने प्रवेश किया। उन्हें देखकर तीनों खड़े हो गए। उन्होंने बैठते हुए कहा—क्या बात हो गई ? क्यों लड़ रहे हो तुम लोग ?'

इन्दिरा ने कहा—'देखो न ममी। इनके पिताजी मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं। लवंग ने इन्हें लेने को मोटर भेजी है। लेकिन ये जाने से इन्कार कर रहे हैं।'

मां ने कहा—'भगवती बेटा ! मैं सब जानती हूं। सब कुछ जानती हूं। लेकिन आज तो रूठने का कोई समय नहीं। फिर भी वे तुम्हारे मां-बाप हैं। इस बात को तुम आज नहीं सोच सकते, क्योंकि तुम पिता का हृदय नहीं समझ सकते।'

कामेश्वर कांप उठा। उसने अपने-आपको मुश्किल से संभाला।

भगवती ने कांपते स्वर में कहा—'तो क्या आप भी यही चाहती हैं कि मैं सचमुच वहां जाऊं ?'

'क्यों नहीं ?' मां ने कहा—'तुम न रहोगे तो वहां रहकर कोई भी क्या करेगा ? पिता पुत्र के काम न आया, न सही, लेकिन पुत्र अपना कर्त्तव्य क्यों छोड़ दे ? क्या तुम उनके खून और मांस से नहीं बने हो ? ये बंधन साधारण नहीं होते। तभी वे जीवन-भर के झूठ को आज तोड़ देना चाहते हैं, तभी तो मृत्यु-शय्या पर उनके प्राण तड़प रहे हैं कि वे अपने बेटे का मुख आज देख जाएं।'

उनकी आंखों में एक तरलता छा गई। उन्होंने फिर कहा—'उठो भैया ! आज नहीं, आज इस अभिमान की कोई आवश्यकता नहीं है। इन्दिरा, कामेश्वर जाओ ! तुम दोनों भाई-बहिन भी उसके साथ जाओ। बेचारा कितना अकेलापन अनुभव कर रहा है !'

मोटर वेग से भागी जा रही थी। तीनों स्तब्ध बैठे थे। जैसे आज बोलने को कुछ भी नहीं रहा था।

पहिये तेजी से घूम रहे थे। धूल के दीर्घ गुब्बार पीछे उड़ते चले आ रहे थे, जैसे आज भागते हुए जीवन का प्रबल वात्याचक्र पीछा कर रहा है, जैसे धूमकेतु के पीछे उसकी जगमगाती जलती पूंछ घिसट रही है।

इन्दिरा सोच रही थी, कामेश्वर सोच रहा था, भगवती सोच रहा था। एक गुत्थी, एक उलझन, एक गंभीर अतल में निस्तब्ध लहरों का अन्धकार। किसी का भी कोई अन्त नहीं। एक दिन ऐसे ही इस खेल का प्रारम्भ हुआ था, आज ऐसे ही अंत होनेवाला है।

सांझ, रात, उस तीव्र गति में फिसल रही है, जैसे मोटर अनेक देशों को पार किए जा रही है।

क्या हुआ यदि एक व्यक्ति मर रहा है। सैकड़ों आदमियों को उसके लिए जबर-दस्ती शोक मनाना पड़ेगा। परसों सगे-सम्बन्धी कुत्तों की तरह जायदाद पर टूट पड़ेंगे और तब लवंग क्या करेगी ?

भगवती ने फिर मन-ही-मन कहा—'जायदाद के लिए ही तो वह लौट कर गई है। क्या उसे छोड़ सकेगी ? कभी नहीं। परिणाम होगा—मुकदमेबाज़ी।'

हृदय की भावनाओं की ऊष्मा का कचहरी में अन्त देखकर भगवती मन ही मन हंसा। धनिक अपने धन के लिए रहते हैं। किसान मेहनत करते हैं और ये लोग मौज करते हैं, बुरे से बुरे प्रभाव समाज पर इनके अतिरिक्त और कोई नहीं डालता। जहां मनुष्य और मनुष्य समान नहीं हैं, जिनके वैभव के नीचे खेतिहर कभी भी पेट भर कर खाना नहीं खा सकते, कभी अपने आपको सीधा खड़ा हुआ नहीं देख सकते, सदा के

दास, सदा के गुलाम···

कितना अत्याचार! कितने पर्दों की आड़ में चलने वाला अनाचार! एक व्यक्ति के लिए कितने बड़े समूह का बलिदान, जैसे वह समूह उसके लिए और कोई राह नहीं है···

आपस में वे कहते रहें, मरते रहें, उनके अज्ञान पर ये अपनी होली जलाकर रंगों से फाग खेलें···

उनका अज्ञान बाप से बेटे तक पहुंचे, बेटे से बेटे के बेटे को पहुंचता रहे, जैसे इनकी यह ज़मींदारी पर पीढ़ी पीढ़ी उतारती रहे, क्योंकि यह ज़मीन उनकी है; जो यदि जान जाएगा, संगठित होकर मांग बैठेगा, तो यह ज़मीन वास्तविक अधिकारी के हाथ में पहुंच जाएगी।

लाखों आदमी युद्ध-क्षेत्र में मर रहे हैं। उनमें भी···

इन्दिरा ने कहा—'भगवती! वह देखो, दूर रोशनी दिखाई दे रही है। हम लोग करीब आ पहुंचे।'

आकाश में उजाला फूट निकला। ड्राइवर अब भी मशीन की तरह चिपका बैठा था। हवा के ठण्डे-ठण्डे झोंके आ-आकर मुंह पर बज रहे थे।

इन्दिरा ने पूछा—'ड्राइवर! अभी कितनी दूर है?'

'बस आ ही गए।' ड्राइवर ने रूखे स्वर से उत्तर दिया और फट से मोटर को मोड़ दिया।

गाड़ी रुकने का एक घर्र-घर्र-सा शब्द हुआ। तीनों उतर गए। चारों तरफ सन्नाटा छा रहा था। किसी ने ऊपर झांककर देखा और फिर वहां से हट गया।

नौकर-चाकर इधर से उधर पैर दबा कर चलते थे। ड्राइवर थक गया था। उसने कहा—'जाइए सरकार! ऊपर चले जाइए। आज भी कोई लेने आएगा तब ही जाएंगे क्या!'

भगवती ने कुछ नहीं कहा। तीनों आगे बढ़ गए।

भगवती हिचक रहा था। क्या कहेगा वह पिता से!! पिता!!!

इन्दिरा उसकी हिचकिचाहट को समझ गई। उसने कहा—'कितना सन्नाटा छा रहा है! चलो भगवती! जल्दी चलो,' और उसने उसका हाथ पकड़कर कहा—'हे भगवान्! तेरा ही भरोसा है।'

उस समय पूरी तरह से भोर हो गया था। एकाएक हृदय पर एक चोट-सी हुई और एक आहत छाया उनके नयनों पर डोल उठी।

भगवती के पैर ठिठक गए। इन्दिरा और कामेश्वर उसके पीछे स्तब्ध हो गए। ऊपर के कमरे में से रोने की ध्वनि आ रही थी। दीपक बुझ चुका था।

एकाएक सामने से आते पंडित जी ने देखा और रोते हुए पुकार उठे—'आ गए बेटा? यह देखो, यह कौन सो रहा है! अब जगा नहीं सकते इसे? कह नहीं सकते कि ले अभागे, आज तेरा बेटा लौट आया है। अब तो आंखें खोल दे। क्यों, ऐसी नींद क्यों आ गई? तू तो कभी भी इतना निठुर नहीं था!

भीतर कमरे में से 'हाय' करके रोने की आवाज़ आई, जैसे अब कुछ नहीं रहा।

सारा हृदय घुमड़कर बाहर निकल आना चाहता है। यह रुदन नहीं है। महीनों, सालों की स्मृतियों का आज भीषण हाहाकार मच रहा है, क्योंकि उनमें आग लग गई है। स्त्रियों के उस हृदय-वेधी क्रन्दन को सुनकर इन्दिरा रो दी।

भगवती ने भीतर जाकर देखा। वह यात्री अब सो रहा था। उसे जगाना नहीं क्योंकि वह बहुत दिन तक चलते-चलते थक गया था। जो आशाएं, जो अरमान उसने बनाये थे वे आज भी आकाश में निर्धूम लटके तारों की तरह जल रहे थे, भटक रहे थे; उनमें से कोई पृथ्वी पर आकर उसकी आंखों के द्वार से उसके मन में नहीं समा सका।

भगवती ने सुना। लवंग कह रही थी—'भगवती ! तुम्हारा नाम ले-लेकर रह गए किन्तु तुम जल्दी नहीं आ सके। अगर थोडी देर और पहले आते, तो वह साध भी पूरी हो जाती···' और वह फिर रोने लगी। भगवती निश्चल खड़ा रहा।

लवंग ने ही फिर कहा—'मुझे पहले से मालूम होता तो मैं तभी मोटर भेज देती। मां ने भी नहीं कहा। एक शाम, एक रात तो ऐसी तड़प-तड़पकर बिताई है—बेटा ! भगवती ! आया सुन्दर ? आया न लवंग ? नहीं आएगा वह कभी नहीं आएगा। मैंने एक ही पाप नहीं किया। वह बदला ले रहा है, लेने दो उसे बदला, हे परमात्मा, वह बालक है, उसे क्षमा कर देना···आ जाते एक बार बेटा···तो मैं सुख से मर जाता···

'चार बजे सुबह एक बार पूरी तरह से आंखें खोल दीं। इधर-उधर देखा। मां ने पानी पिलाया। ताकत आई, पूछा—सुन्दर, भगवती आ गया ?

'मां ने कहा—'मोटर लाने भेज दी है। आता ही होगा। निश्चय आएगा। ऐसा कठोर वह कभी नहीं है, अवश्य आएगा···

'पर उन्होंने सिर हिलाकर कहा—वह कभी नहीं आएगा ! मेरे पास अब वह कभी नहीं आएगा।

'और सचमुच तुम कभी नहीं आए अभागे। किसके पास आए हो अब ? वह तो नहीं रहा जिसके पास तुम आना चाहते थे। वह तो अब नहीं रहा, जिसकी आंखों में तुम्हें देखकर स्नेह से पानी भर आता। वहां क्या देख रहे हो ? अरे वह तो मिट्टी है। हाय···' और लवंग फिर ज़ार-ज़ार रो उठी।

गांव की स्त्रिया इकट्ठी होने लगी थीं। इन्दिरा ने लवंग को संभाल लिया। सुन्दर चुपचाप बैठी थी। रोएगी भी नहीं, ऐसा मन सूख गया था।

लवंग ने फिर रोते-रोते कहा—'अब वह कभी नहीं लौटेंगे पागल ! क्या देख रहे हो घूर-घूरकर। अन्तिम शब्द तुम्हारा ही नाम था। उस अवस्था में, उस बेहोशी में भी वे तुम्हें नहीं भूल सके। तब मां ने कान पर चिल्लाकर कहा—भगवती आ गया है, देखो।'

'एक बार अधखुली आंखों से देखा। मां ने आंखों के सामने कृष्ण की तस्वीर रख दी। देखा और मुस्कराए। बाहर सुनाई दिया, पण्डित जी ने कहा—सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।'

लवंग ने फिर धीरे से कहा—'और उसके बाद सब शेष हो गया।'

भगवती निश्चल खड़ा था। सुन्दर ने देखा और कहा—'भगवती !'

भगवती ने मुड़कर देखा।

सुन्दर ने कहा—'तेरे पिता मर गए।'

भगवती फूट-फूट कर रो दिया।

सारा गांव इकट्ठा हो गया था। चारों ओर भविष्य के विषय में कानाफूसी हो रही थी। नाजायज बेटा आग देगा? यह तो अधरम है। फिर भी मरे शेर को देखकर कुत्ता दूर ही दूर भूका करता है। सगे-सम्बन्धी इत्यादि अनेक लोग इकट्ठे हो गए थे। पण्डित जी ने बाहर जाकर ज़मींदार साहब की अन्तिम इच्छा बताई। भगवती को देखकर कुछ सगे-सम्बन्धी, जिनकी इच्छा थी कि अब तो औरत है, उसे बनाकर सब हथिया लेंगे, मन ही मन क्षुब्ध हुए। पंडितजी ने सब सुनकर यही फैसला दिया कि ज़मींदार साहब वसीयतनामा लिख गए हैं।

सब दाहक्रिया समाप्त होते-होते सांझ की छायाएं गिरने लगीं। तन और मन थक गए। आज जैसे घर काटने दौड़ रहा था। सब कुछ लुट चुका था। कितना लम्बा हो गया है रास्ता, मरघट से घर तक का!

घर पहुंचकर नहाने के बाद किसी ने कुछ भी नहीं खाया। लवंग और सुन्दर भी भूखी बैठी थीं। उसी कमरे में ज़मीन पर फर्श बिछ गया था।

लवंग ने कहा—'तुम आ गए भगवती, इससे मुझे एक सान्त्वना है। मैं समझती थी, तुम नहीं आओगे।

भगवती ने पूछा—'क्यों?'

'क्योंकि तुम मुझसे डरते थे, जैसे आदमी सांप के विष से डरता है।'

इंदिरा ने कहा—'भगवती? जीत मेरी हुई न? यदि मैं तुमको आज यहां आने पर मजबूर न करती, तो क्या सदा के लिए ही पराजित नहीं हो जाते?'

भगवती के उदास शोकातुर मुख पर क्षीण हंसी की एक चंचल रेखा कांप उठी और ऐसे ही लय हो गई जैसे आकाश में संध्या।

मगन ने लाकर उस स्थान पर दिया रख दिया जहां पर मृत्यु हुई थी और दीप की हल्की ज्योति विराट् प्रकाश बन गई, क्योंकि उन्हें लगा, वह जीवन के लिए मृत्यु का अंधकार दूर कर रही थी।

लवंग ने भगवती की ओर देखकर कहा—'भगवती! मैंने तुमसे आज तक कभी प्रेम नहीं किया और अब भी मैं नहीं सोचती कि मुझे तुमसे प्रेम करने का कोई कारण विशेष है। यदि तुम्हें यह गर्व हो कि तुमने जीवन-भर कष्ट उठाए हैं तो आज मेरे ऊपर वह भी नहीं चल सकता। जानते हो, क्यों? क्योंकि मैं एक विधवा हूं। विवाह मैं कर सकती हूं, किन्तु मेरे स्थान की मर्यादा इसे कभी भी स्वीकार नहीं करेगी। इसीसे मैं जीवन-भर अपने को धोखा देने का प्रयत्न करूंगी। आशा है कि परमात्मा मुझे अवश्य क्षमा कर देंगे।'

भगवती ने हंस कर कहा—'यह भी एक धोखा है। अध्यात्मवाद के चक्कर में अपने आपको मिटा देने का ढोंग किसलिए, जब जीवन रहने के लिए मिला है? लेकिन उस तप का भी क्या होगा जो दूसरों की मेहनत पर पलता है?'

इन्दिरा ने चौंककर देखा।

लवंग ने बक्स खोलकर कहा--'भगवती ! पिता जी ने सारी जायदाद मेरे नाम कर दी है। लेकिन मेरे लिए यह व्यर्थ है, लो इसे ! यह तुम्हारी है···।'

सुन्दर के मुंह से निकला--'लवंग !'

'मां !' लवंग ने हंसकर कहा—'मेरे पास तुम हो, तो मुझे और क्या चाहिए ?'

उसने भगवती के हाथ पर वसीयतनामा रख दिया। इन्दिरा ने खोलकर पढ़ा। उसके मुंह से निकला—'अरे !'

सब चौंक गए। कामेश्वर ने कहा—'क्या हुआ ?'

इन्दिरा सोचा, क्या ज़मींदार चाल खेल गए ? क्या यह भगवती की मां का षड्यन्त्र है ? उसने पूछा--'लवंग ! तुमने इसे पढ़ा है ?'

लवंग ने सरलता से उत्तर दिया—'नहीं तो। क्यों ?'

भगवती हंसा। उसने हंसकर कहा—'तुमने पढ़ा हो या नहीं। लेकिन मुझे इसमें से कुछ भी नहीं चाहिए। दुःख का अन्त व्यक्तिगत सुख नहीं है। दुःख के कारण का अन्त ही दुःख का अन्त है। मैं उस जीवन में नहीं पड़ता जहां मनुष्य मनुष्य नहीं रहता। जहां दूसरों की हड्डियों और खून पर हंसनेवाला, अपने दिल की सलाह को भी अपने झूठे अभिमान और ढोंग की भयानक छलना में भूल जाता है। मैं इस सबसे घृणा करता हूं। इसलिए नहीं कि मैं इसमें पशु बन जाऊंगा, इसलिए कि मेरे कारण कितने ही व्यक्तियों को पशु बन जाना पड़ेगा।'

'लेकिन,' कामेश्वर ने चिल्लाकर कहा--'जायदाद तो तुम्हारे नाम है।'

फिर एक बार वज्रपात हुआ। सबकी आशाओं के विपरीत लवंग मुस्करा दी। भगवती ठठाकर हंस पड़ा। उसने कहा—'तब तो त्याग करने का भी यश मिल गया !' उसने कहा—'लवंग, मेरा कुछ नहीं है। यह सब तुम्हारा है।'

लवंग ने सिर झुका लिया। सुन्दर ने बढ़कर कहा—'बेटा ! आज तूने मेरा सिर ऊंचा कर दिया। मैं अपना सुख किससे कहूं ?'

भगवती ने दोनों हाथ फैला दिए और गद्गद स्वर से कहा—'मां !'

वह छोटा-सा शब्द अपनी विराट् गरिमा के कारण दूर-दूर तक गूंज उठा, किन्तु देवताओं ने फिर भी आकाश से एक फूल नहीं गिराया।

●●●

MAHENDRA
२९५२८